श्री तीर्थंकर चरित्र

लेखक :

आचार्य श्रीमद्

विजय वीरेन्द्र सूरि

ग्रंथ प्रकाशक व प्राप्ति स्थान

श्री विजयानंद सूरि साहित्य प्रकाशन फाउंडेशन

श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर,
पावागढ़ तीर्थ, जि. पंचमहाल (गुजरात)

श्री जैन आत्मानंद सभा

खारगेट, भावनगर-354001 (गुजरात)

— आशीर्वाद एवं प्रेरणा —
जैन दिवाकर आचार्य
श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी महाराज

— मार्गदर्शक —
कार्यदक्ष आचार्य
श्रीमद् विजय जगच्चन्द्र सूरीश्वरजी महाराज

प्रतियां : **2000**
प्रकाशन वर्ष : **1998**

मूल्य : **225/-** रुपये

— मुद्रण एवं फोटो टाईपसेटिंग —
माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स,

म.गां. अस्पताल रोड, जोधपुर
फोन : 37838, 637839

समर्पण

पंजाब देशोद्धारक आचार्य श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वरजी
महाराज साहब के शताब्दी वर्ष में उन्हीं की
परंपरा के क्रमिक पट्टधर शासन शिरोमणि
परमार क्षत्रियोद्धारक चारित्र चूड़ामणी,
जैन दिवाकर, गच्छाधिपति आचार्य
श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी महाराज साहब
के अमृत महोत्सव के
शुभ अवसर पर
परमोपकारी
श्री गुरुदेव
के पावन चरण कमलों में
सादर समर्पित

अन्तेवासी
☐ वीरेन्द्र विजय

प्रकाशकीय

चौबीस तीर्थकरों का जीवन अनुपम है। अद्वितीय है। हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनका जीवन सागर के जैसा विशाल और अपार है। तीर्थकर प्रभु हमारी जीवन नौका के मालिक है।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचंद्र सूरीश्वरजी म. ने त्रिषष्टि शाला का पुरुष चरित्र की रचना की है। जिसमें चौबीस तीर्थकरों का जीवन प्रतिपादित है। इसी प्रकार आचार्य श्री अमरचन्द्र सूरीश्वरजी म. ने भी तीर्थकर चरित्र में चौबीस तीर्थकरों का वर्णन किया है। उसी के आधार से गुजराती भाषा में इस का प्रकाशन श्री आत्मानंद जैन सभा भावनगर की ओर से हुआ था।

हिन्दीभाषियों के लिए प्रकाशित करने की सभा ने वर्तमान गच्छाधिपति परमार क्षत्रियोद्धारक आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म. सा. को प्रार्थना की।

उनकी विनंति को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री ने उपाध्याय श्री वीरेन्द्र विजयजी म. साहब को १९९४ के गुजरात के पालीताणा चातुर्मास में उन्हें यह काम सौपा।

कार्यदक्ष आचार्य श्री जगच्चन्द्र सूरीश्वरजी ने भी प्रकाशन के लिए प्रेरणा दी। प्रस्तावना लेखक मुनिश्री नवीनचंद्र विजयजी ने भी संपूर्ण ग्रंथ का सार दे दिया है।

वर्तमान गच्छाधिपति आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी महाराज साहब के अमृत महोत्सव का वर्ष भी चल रहा है इस अवसर की पून्यवेला में प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन होने जा रहा है, यह भी एक शुभ संयोग है।

□ श्री आत्मानंद जैन सभा
भावनगर

स्वर्गारोहण शताब्दी के ज्योतिपुंज

नवयुग निर्माता, विश्व वंद्य विभूति, महान ज्योतिर्धर,
न्यायाम्भोनिधि आचार्य श्रीमद् विजयानंद (आत्माराम)
सूरीश्वरजी महाराज

हमारे प्राणाधार

श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वरजी महाराज के प्रथम पट्टधर
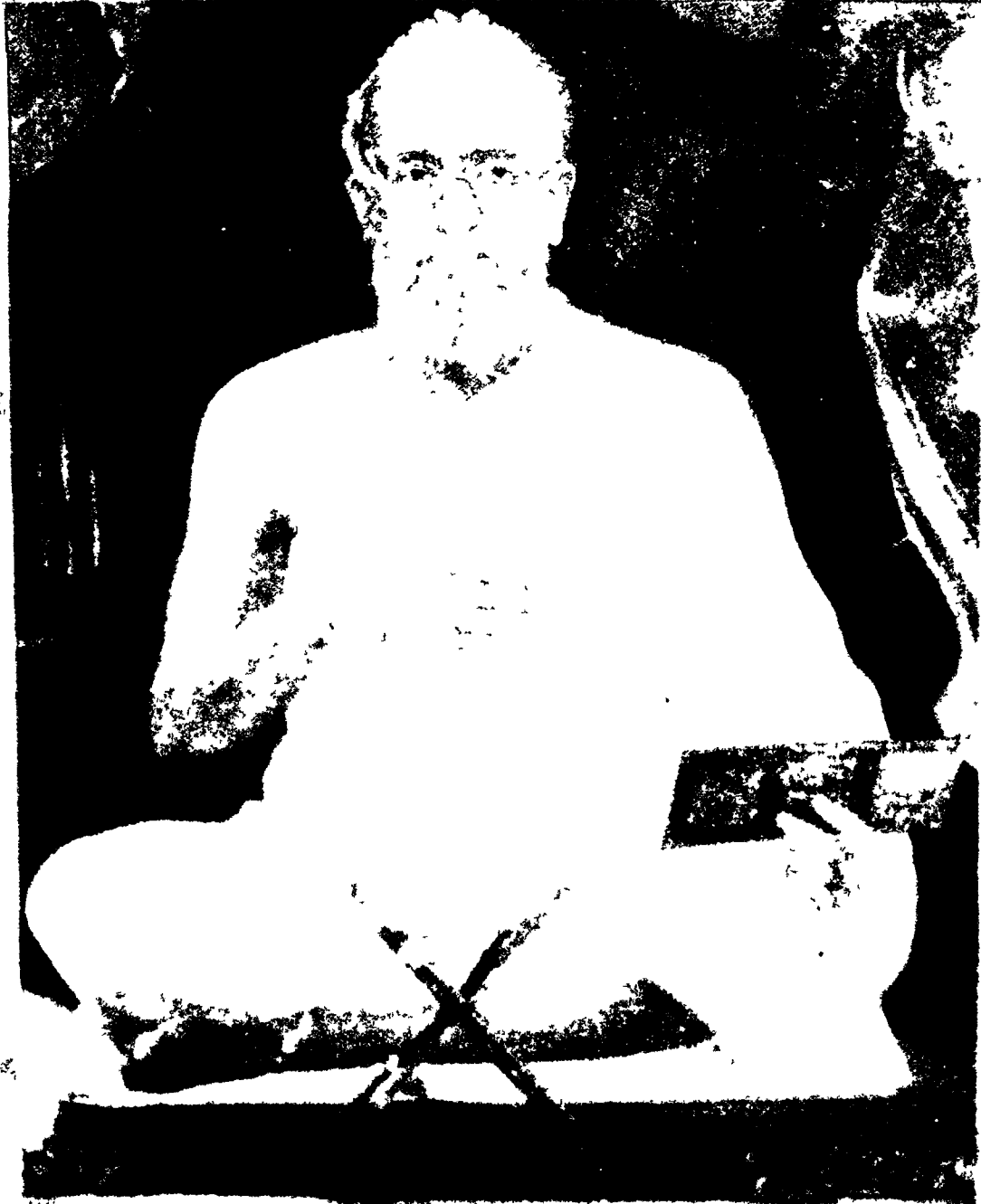
कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणी, पंजाब केसरी
युगवीर आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज

जिनकी समता हमारा आदर्श है

श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वरजी महाराज के द्वितीय पट्टधर

राष्ट्र संत, शान्तमूर्ति, समन्वय योगी
आचार्य श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज

शुभ आशीर्वाद

जैनधर्म अनादिकालीन है। इसके संवाहक तीर्थकर भगवान है।

जिनका जीवन प्राणीमात्र के उपकार के लिए होता है। एसे देवाधिदेव तीर्थकर प्रभु के चरित्र का वर्णन कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य जी ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में विस्तार से किया है।

इसी प्रकार वायदी गच्छ के आचार्य श्री अमरचन्द्र सूरीश्वरजी म. ने तीर्थकर चरित्र में चौबीस तीर्थकरों का संपूर्ण वर्णन किया है। उसी आधार पर प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया है।

तीर्थकरों के लिए कहा गया है- तिन्नाणं तारयाणं वे स्वयं भी तिरते है और दूसरों को भी तारते है। संसार समुद्र तिरने के लिए वे आलंबन रूप है।

धर्मतीर्थ की स्थापना कर वे भव्यजीवो का कल्याण करते है। प्राणीमात्र के महान उपकारी तीर्थकरों के चरित्र लेखने का कार्य १९९४ के पालीताना चातुर्मास में मेरी आज्ञा को शिरोधार्य कर उपाध्याय श्री वीरेन्द्र विजय जी म ने अल्पसमय में यह कार्य परिपूर्ण किया है।

शासन सेवा एवं स्वाध्यायरत उपाध्यायजी साहित्य आलेखन का काम करते रहते है। इससे पूर्व भी उनकी ९ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। यह उनकी १० वीं पुस्तक है।

साहित्य के कार्य में वे इसी प्रकार अहर्नीश सेवा देते रहें। ज्ञान की ज्योत प्रसारित करते रहे।

विजय इन्द्रदिन्न सूरि

८-१-९८

वोम्बे हॉस्पिटल
मुंवई

अर्थ सहयोगी

1. श्री दौलतराम व श्रीमति कमला देवी जैन
   की ओर से

   ह. श्री प्रवीण कुमार पाटनी

   श्री आत्मानन्द जैन सभा, लुधियाना, उपाध्यक्ष

2. श्री रोशनलाल जैन व श्रीमति तृप्ता देवी जैन
   की ओर से

   ह. संजीव कुमार जैन (राजू जैन)

   श्री आत्मानन्द जैन सभा, लुधियाना, उपाध्यक्ष

अनन्त लब्धि निधान श्री गौतम स्वामी
ANANTA LABDHI NIDHAN SRI GAUTAM SWAMI
सर्वरिष्टप्रणाशाय सर्वभिष्टार्थ दायिने
सर्वलब्धिनिधाय श्री गौतम स्वामिनं स्तुम. ।
SARAVARISHTAPRANASHAY
SARVABHISHTARTHADAYINE SARVALABDHINIDHANAY
SRI GAUTAM SWAMI NAM STUMAH

प्रस्तावना

तीर्थ अर्थात् संघ। जैन धर्म की सर्वोपरी सत्ता संघ है। इस संघ की स्थापना करते हैं तीर्थंकर। वे धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते है अत: उन्हें तीर्थंकर कहा जाता है। तीर्थ के कर्तव्य का भार ज़िनके ऊपर है वे तीर्थंकर है।

एक बहु प्रचलित सूत्र है- शक्रस्तव। शक्र अर्थात् इन्द्र। इन्द्र द्वारा की गई स्तुत्ति शक्रस्तव है। जब जब भी तीर्थंकर का अवतरण होता है तब तब इन्द्र तीर्थंकर परमात्मा की नमुत्थुणं के द्वारा स्तुति करता है। इस स्तुति में तीर्थंकर परमात्मा की समस्त विशिष्ठताएं संक्षिप्त में वर्णित हुई है। इस महिमा गान में कहा गया है- नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं...

ऐसे अरिहंत या तीर्थंकर भगवंत को नमस्कार हो जो धर्म का प्रारंभ करते हैं, तीर्थ की स्थापना करते है, जो स्वयं बुद्ध होते है, पुरुषों में उत्तम और सिंह के सदृश होते हैं, पुरुषों में उत्तम पुंडरीक-कमल तुल्य और गंधहस्ती के समान होते हैं, जो तीनों लोकों में उत्तम है, तीनों लोकों के नाथ हैं, तीनों लोकों का हित करनेवाले है, तीनो लोकों मे दीपक तुल्य है, जो तीनों लोकों में प्रकाश करने वाले हैं, प्राणिमात्र को अभयदान देते है, ज्ञान रूपी चक्षु प्रदान करते है मोक्षमार्ग देनेवाले हैं, शरण देनेवाले है और समकित देने वाले है।

जो धर्म के दाता है, धर्म के उपदेशक है, धर्म के नायक हैं, धर्म रथ के सारथी है, चारगति का अन्त करने वाले उत्तम धर्म चक्रवर्ती है। जो किसी से भी हण्यमान नहीं ऐसे उत्तम ज्ञान और दर्शन को धारण करनेवाले है, छद्मस्थ अवस्था से ही जो निवृत्त हो चुके है।

जो राग-द्वेष जितनेवाले और जितानेवाले है, संसार से तिरनेवाले और तिरानेवाले हैं, तत्त्व के जो ज्ञाता है और दूसरो को उसका ज्ञान करानेवाले है, कर्मो से जो मुक्त है और दूसरों को भी मुक्त करानेवाले है। कर्मो से जो मुक्त है और दूसरो को भी मुक्त करानेवाले हैं। जो सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, कल्याण रूप है, अचल है, रोग रहित है, अनंत है, अक्षय और अव्याबाध है, उस तीर्थंकर की मै स्तुति करता हूं।

तीर्थंकर परमात्मा के तीर्थंकरत्व की यह झांकी मात्र है। वे इस जगत के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होते है। समस्त पुण्यो का फल तीर्थंकरत्व है। उनसे सर्वोपरी, सर्वश्रेष्ठ और सर्वगुण सम्पन्न अन्य कोई नहीं होता।

तीर्थंकर परमात्मा बारह गुणो, चौंतीस अतिशयो और पैंतीस वाणी की विशिष्ठताओं से पहचाने जाते हैं। चार मूल अतिशय है जो चार गुण भी कहे जाते है–

१. अपायापगमातिशय।

२. ज्ञानातिशय।

३. पूजातिशय।

४. वचनातिशय।

आठ महाप्रातिहार्य हैं जो आठ गुण भी कहलाते हैं—

१. अशोकवृक्ष।

२. पुष्पवृष्टि।

३. दिव्यध्वनि।

४. चामर।

५. सिहासन।

६. भामंडल।

७. दुंदुभि।

८. तीन छत्र।

तीर्थकर परमात्मा के चौतीस अतिशयों में चार सहजातिशय ग्यारह कर्मक्षयज अतिशय और उन्नीस देवकृत अतिशय है—

चार सहज अतिशय—

१. अद्‌भुत रूप और सुगंधित शरीर।

२. कमल गंध सदृश सुरभित श्वासोच्छ्‌वास।

३. गाय के दूध की धारा के समान धवल और दुर्गंध रहित मांस और रुधिर।

४. स्थूल चर्म चक्षु से अदृश्य आहार और विहार।

धाती कर्मो का क्षय होने पर प्रकट होने वाले ग्यारह अतिशय—

१. एक योजन की भूमि में देवों द्वारा रचित समवसरण में मनुष्यों, देवों और तिर्यचों की कोडाकोडी संख्या में सुखरूप समावेश।

२. उनकी देशना अर्धमागधी होने पर भी प्रत्येक प्राणी अपनी भाषा में उसे समझता है और वह देशना समग्र दिशाओं मे एक योजन तक सुनाई देती है।

३. भामंडल।

४. रोग रहित विचरण भूमि ।

५. प्राणियों में परस्पर वैर-विरोध की समाप्ति ।

६. धान्य का जीव-जंतुओं से मुक्त होना ।

७. महामारी और अकाल मृत्यु का अभाव ।

८. अतिवृष्टि का अभाव ।

९. पर्याप्त बरसात ।

१०. दुष्काल का अभाव ।

११. स्वराष्ट्र-पर राष्ट्र के भय का अभाव ।

देवकृत उन्नीस अतिशय–

१. आकाश में धर्मचक्र ।

२. आकाश में चामर ।

३. आकाश में पादपीठ सहित सिंहासन ।

४. आकाश में तीन छत्र ।

५. आकाश में रत्नजटित ध्वज ।

६. चरण रखने केलिए स्वर्ण-कमल ।

७. समवसरण के तीन गढ (१) रत्न (२) स्वर्ण और (३) रजत के ।

८. समवसरण में चतुर्मुखांगता ।

९. अशोकवृक्ष की रचना ।

१०. कांटो का उलट जाना ।

११. वृक्षो का नमस्कार ।

१२. दुंदुभिनाद ।

१३. अनुकूल वायु ।

१४. पक्षियो की प्रदक्षिणा ।

१५. सुगधित जल की वृष्टि ।

१६. पांच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि ।

१७. दीक्षा से निर्वाण तक केश, रोम, दाढ़ी और नख की वृद्धि का रुक जाना।

१८. कम से कम एक क्रोड़ देवों की सेवा केलिए उपस्थिति।

१९. सभी ऋतुओं और इन्द्रियों के विषय की अनुकूलता।

वाणी और पैंतीस गुण

१. **संस्कारत्व**–सभ्यता से युक्त और व्याकरण आदि से परिमार्जित।

२. **औदात्त्व**–उच्चस्वर से उच्चरित।

३. **उपचार परीतता**–ग्राम्यता रहित।

४. **मेघगंभीर घोषत्व**–मेघ की भांति गंभीर।

५. **प्रतिनाद विधायिता**–मधुर और कर्णप्रिय प्रतिध्वनि उत्पन्न करनेवाली

६. **दक्षिणत्व**–सभी के अनुकूल।

७. **उपनीत रायत्व**–मालकोश आदि रागों से युक्त।

८. **महार्थता**–व्यापक और गंभीर अर्थो से पूर्ण।

९. **अव्याहतत्त्व**–पूर्वापर वाक्यों और अर्थों से सुसंगत।

१०. **शिष्टत्व**–शिष्टता से परिपूर्ण अथवा सिद्धान्तों के अर्थो को प्रागट्य करने वाली।

११. **संशयरहित**–संदेह-शंका से मुक्त।

१२. **निराकृतान्योत्तरत्व**–किसी भी प्रकार के दोष-दूषण से रहित।

१३. **हृदयंगमता**–हृदय को प्रसन्नता प्रदान करनेवाली।

१४. **मिथःसाकांक्षता**–पद और वाक्यों से सापेक्ष।

१५. **प्रस्तावौचित्य**–देश और काल के अनुरूप।

१६. **तत्त्वनिष्ठा**–तत्त्व से युक्त।

१७. **अप्रकीर्ण प्रसृतत्त्व**–सुसंगत और विषयांतर रहित।

१८. **अस्वश्लाघान्यनिंदता**–स्वप्रशंसा और परनिदा से रहित।

१९. **आभिजात्य**–उच्चकुलों में व्यवहृत भाषा के अनुरूप, पांडित्यपूर्ण अथवा प्रतिपाद्य विषय की भूमिका का अनुगमन करनेवाली।

२०. **अतिस्निग्ध मधुरत्व**–प्रगाढ़ स्नेह के कारण माधुर्य से ओतप्रोत।

२१. **प्रशस्यता**–अनेक गुणों की विशेषता के कारण प्रशंसनीय।

२२. **अमर्मवेधिता**–दूसरों के गुप्त रहस्य को प्रगट न करनेवाली अथवा दूसरों के हृदय को आहत न करनेवाली।

२३. **औदार्य**–उदारता से पूर्ण और तुच्छता से रहित।

२४. **धर्मार्थप्रतिबद्धता**–धर्म के अनुरूप अथवा धर्मार्थयुक्त।

२५. **कारकादि अविपर्यास**–कारक, काल, वचन, विभक्ति और संधि आदि व्याकरण की अशुद्धियों से रहित।

२६. **विभ्रमादिवियुक्तता**–विभ्रम, विक्षेप आदि चित्त के दोषों से रहित।

२७. **चित्रकृत्त्व**–श्रोताओं में जिज्ञासा जागृत करनेवाली अथवा श्रोताओं को बांध देनेवाली।

२८. **अद्‌भुत**–श्रोताओं को विस्मित करनेवाली।

२९. **अनतिविलंबिता**–दो शब्द, दो वाक्य, दो पद आदि के मध्य विलंबितता रहित।

३०. **अनेकजाति वैचित्र्य**–वर्णित विषय वस्तु की सर्व पक्षीय विविधता, विचित्रता और सुंदरता प्रकट करनेवाली।

३१. **आरोपित विशेषता**–अन्य वचनों की अपेक्षा से विशिष्ट।

३२. **सत्त्वप्रधानता**–जिसमें सारतत्त्व की प्रधानता या आधिक्य हो।

३३. **वर्णपद वाक्य विविक्तता**–वर्ण, पद और वाक्य के उच्चारण में योग्य पृथ्थकरण से युक्त।

३४. **अव्युच्छिति**–धाराप्रवाह और विवक्षित या अभिप्रेत या शाब्दिक अर्थ से परिपूर्ण।

३५. **अखेदित्व**–खिन्नता, ऊब या श्रम से रहित।

प्रत्येक तीर्थंकर की माता चौदह स्वप्न देखती है।

इन स्वप्नो से यह पूर्वाभाष हो जाता है कि किसी तीर्थंकर का जन्म होनेवाला है।

प्रत्येक तीर्थंकर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते है। उन्हें वैराग्य के उपदेश की आवश्यकता नही होती। संसार की असारता से वे परिज्ञात होते हैं। वे स्वयं दीक्षित होते हैं और दीक्षा लेते ही उन्हें मन: पर्यवज्ञान उत्पन्न हो जाता है। दीक्षा लेकर वे शेष कर्मो को निर्जरित कर केवलज्ञानी बनते हैं। केवलज्ञान होते ही वे देव रचित समवसरण में बैठकर देशना देते हैं और संघ या तीर्थ की स्थापना करते है।

तीर्थंकरो के पांचो कल्याणक च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण कल्याणक संसार के

के लिए होते है अत: उन्हें कल्याणक कहा जाता है ।

भरत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थकर होते हैं। चौबीस की संख्या नियत है । अवसर्पिणी के तीसरे आरे में एक तीर्थकर और चौथे आरे में तेईस तीर्थकर होते है। तीसरे आरे के जब ८९ पक्ष शेष रहते है तब प्रथम तीर्थकर मोक्ष में जाते है और चौथे आरे के जब ८९ पक्ष शेष रहते है तब चौबीसवे तीर्थकर मोक्ष में जाते है । इसी क्रम से उत्सर्पिणी काल में तीर्थकर परमात्मा होते है और मोक्ष में जाते हैं ।

महाविदेह क्षेत्र मे सदाकाल चौथा आरा रहता है और वहां हमेशा बीस तीर्थकरो का विचरण होता रहता है, परंतु वे कभी भी एक दूसरे से मिलते नहीं है ।

भरत क्षेत्र में वर्तमान चौबीसी में प्रथम तीर्थकर श्रीआदिनाथ या ऋषभदेव हुए। वे इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्त मे हुए। उनके बाद श्रीअजितनाथ से श्रीमहावीर स्वामी तक चौथे आरे मे हुए।

इन चौबीस तीर्थकरों के जीवन परिचयात्मक प्रेरक पुण्य चरित्रो का हमारे आगमों में विशद वर्णन हुआ है । अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी द्वारा विरचित कल्पसूत्र के माध्यम से प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व मे इन तीर्थकर चरित्रों को सुनाया जाता है। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी के 'त्रिषष्ठी शलाका पुरुष चरित्र' में इनका बडे विस्तार से वर्णन है ।

ऐसा ही एक तीर्थकर चरित्र ग्रन्थ वि.सं. १३३९ में वायदी गच्छ के आचार्य श्रीमद् अमर चन्द्र सूरीश्वरजी महाराज ने रचा था यह ग्रन्थ संक्षिप्त होने पर भी चौबीस तीर्थकरो के जीवन विषयक सम्पूर्ण तथ्यों को समावेशित किए हुए है । यही इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता है । अत्यन्त सरल संस्कृत में १७२६ श्लोकों में ही चौबीस तीर्थकरों का सम्पूर्ण सांगोपांग वर्णन इसके अन्तर्गत है । चरित्र ग्रन्थो में इस प्रकार का संक्षिप्त, रोचक और अनुपम ग्रन्थ अन्य उपलब्ध नही है ।

इस जन उपयोगी कृति का भावनगर की सुप्रसिद्ध सम्यग् ज्ञान उपासक और प्रचारक संस्था 'श्री जैन आत्मानंद सभा' ने वि.सं. २००८ में संस्कृत का गुजराती अनुवाद करवाया और उसी वर्ष उसका प्रकाशन करवाया गया ।

अनुदित गुजराती पुस्तक भी अपने तरह की एक अनोखी पुस्तक है। इसके अन्तर्गत चौबीस तीर्थकरो के रंगीन चित्र दिए गए है । प्रत्येक चित्र में तीर्थकर के वर्ण, लांछन, यक्ष और यक्षिणी तथा एक ओर निर्वाण भूमि का रेखा चित्र है । नीचे इन्द्र महाराजा को पुष्प लेकर स्तुति करते हुए दिखाया गया है । आज से आधी शताब्दी पूर्व इस तरह की रंगीन सचित्र पुस्तक प्रकाशित होना अपने आप में एक विशेष घटना है । जैन साहित्य के क्षेत्र मे जन उपयोगी, सुपाठ्य, उत्तम और दुर्लभ साहित्य प्रकाशन के लिए श्री जैन आत्मानंद सभा का सर्वोपरी स्थान रहा है । सभा विगत सौ वर्षो से यह कार्य करती आ रही है ।

प्रस्तुत तीर्थकर चरित्र (सचित्र) कृति पिछले कई वर्षो से अप्राप्य हो गई थी । इस केलिए पाठको की निरंतर मांग हो रही थी । पाठकोंकी मांग को दृष्टिगत रखते हुए सभा के वर्तमान पदाधिकारियों ने इसे नये रूपरंग और साज-सज्जा के साथ नवीन संस्करण निकालने का निर्णय किया ।

कई सुधी पाठकों की मांग थी कि इस दुर्लभ कृति का हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित किया जाए ताकि अधिक से अधिक लोग इससे लाभान्वित हो सके । सभा ने इसका हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती इस तरह तीनों भाषाओ में इसे प्रकाशित करने का निर्णय किया ।

यह एक संयोग ही था कि जिस समय यह निर्णय लिया गया उस समय ई. सन् १९९३ मे जैन दिवाकर, परमार क्षत्रियोद्धारक आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी महाराज, कार्यदक्ष आचार्य श्रीमद् विजय जगच्चन्द्र सूरीश्वरजी महाराज एवं साहित्य मनीषी उपाध्याय श्री वीरेन्द्र विजयजी महाराज आदि ठाणा चातुर्मास के लिए पालीताणा में बिराजमान थे । सभा के पदाधिकारी पूज्य गुरूदेव के चरणों में उपस्थित हुए और तीर्थकर चरित्र के त्रिभाषा मे प्रकाशन की अपनी योजना से उन्हें अवगत कराया तथा इस कार्य मे उनके आशीर्वाद की याचना की । साथ ही उन्होने कृति के हिन्दी अनुवाद का कार्य किसी विद्वान और योग्यतम व्यक्ति से कराने की भी विनती की ।

पूज्य गुरूदेव ने यह कार्य साहित्य मनीषी, विद्वान् लेखक एवं कवि उपाध्याय श्री वीरेन्द्र विजयजी महाराज को सौपा । इस कार्य केलिए उनसे बढकर कोई योग्य हो भी नही सकता था । पूज्य उपाध्याय श्रीजी महाराज ने बडी लगन, परिश्रम, सूक्ष्म सूझबूझ के साथ और बडी तत्परता से यह कार्य पूर्ण किया । स्वतत्र लेखन से भी अनुवाद का कार्य कठिन होता है, क्योकि मूल रचनाकार के अन्तःस्थ भावो को अन्य भाषा मे मूर्त रूप देना होता है जो अनुवादक केलिए कसौटी का कार्य होता है । अन्य महती जिम्मेवारियो के रहते उन्होंने बखूबी यह कार्य पूर्ण किया । वे संस्कृत, हिन्दी और गुजराती तीनों भाषाओं मे समान अधिकार रखते है । वे एक उच्चकोटि के कवि, चितक, साधक और रचनाकार है । उनके स्वभाव की ऋजुता हर किसी केलिए चुंवकीय आकर्षण उत्पन्न करती है। उनका अन्तर-बाह्य मृदु-निर्मल-सहज-स्नेहिल व्यक्तित्व हर किसी केलिए श्रद्धेय वन जाता है। जिन शासन प्रभावना के अनेक ऐतिहासिक और यशस्वी कार्य उनके हाथों से हो रहे है । वे साहित्य साधना में अहर्निश लीन रहते हैं । अब तक उनकी गद्य-पद्य छह रचनाएं प्रकाशित हो चुकी है । संस्कृत—गुजराती से हिन्दी में अनुदित उनकी यह प्रथम कृति है । इसकी भाषा अत्यन्त सरल, सुगम, सरस और सुपाठ्य हैं । निश्चित ही यह हिन्दी भाषी जनता केलिए अत्यन्त उपयोगी कृति सिद्ध होगी ।

इन तीर्थकर परमात्माओ के विषय मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है । यह कृति स्वयं उनके विषय मे सबकुछ बता देगी । अन्त मे केवल इतना ही लिखना- कहना चाहेगे कि यह कृति कथा-कहानियो की तरह पढने केलिए नही है । यह अन्य सांसारिक मनुष्यो का जीवन चरित्र नही है । यह हमारे परम उपकारी, देवाधिदेव, परम वंदनीय, प्रात स्मरणीय, त्रिकाल ज्ञान के धारक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी

अरिहंत परमात्मा का चरित्र है। वे हमारे आदर्श पुरुष हैं। उनके माध्यम से उनकी पूजा, अर्चा, स्तुति, स्तवन-वंदन से हमारे कर्म क्षय होते हैं। उनके कल्याणकों की आराधना हमारा कल्याण करती है। उनका पुण्य स्मरण हमें सर्व संकटों से मुक्त करता है। उनका चरित्र हमें उद्बोध देता है कि वे भी एक समय हमारे जैसे ही सामान्य संसारी जीव थे। एक समय हम भी उनके साथ हंसे-खेले होंगे जैसा एक कवि ने कहा है—

बालपणे आपण ससनेही, रमता नवनव वेशे।
आज तुमे पाम्या प्रभुताई, अमे तो संसार निवेशे ॥

उन्होंने पा लिया और हम अभी तक अनंत संसार सागर में गोते लगा रहे हैं। किस तरह उन्होंने आत्मसाधना का उपक्रम-उत्क्रम करते हुए वीतरागत्व पा लिया। यह हम उनके पुनीत चरित्र से भलीभांति जान सकते हैं और उन्ही का अनुगमन- अनुसरण कर भव अंत ला सकते हैं।

लोगस्स सूत्र में इन चौबीस तीर्थकरों की स्तुति है। उसके अन्त में एक याचना की गई है— आरुग्ग बोहिलाभं समाहिवर मुत्तमम् दिंतु— हे जिनेश्वर परमात्मा। मुझे आप आरोग्य, सम्यग् दर्शन और समाधि प्रदान करें ताकि आपकी तरह मेरा भी शीघ्र ही इस संसार से निस्तार हो जाए।

जिनेश्वर परमात्माओं के पूजन का फल बताते हुए कहा गया है—

उपसर्गाः क्षयं यांति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्य माने जिनेश्वरे ॥

अर्थात्—श्री जिनेश्वर परमात्मा के पूजन से उपसर्गो का नाश होता है, विघ्न रूपी लताओं का छेदन होता है और मन प्रसन्न होता है।

जिनेश्वर परमात्माओं की असीम महिमा जो कागद में कतई समा नहीं सकती उसका कोई अंत नहीं है।

□ मुनि नवीन चन्द्र विजय

आर्थिक सहयोग

श्री महावीर जैन विद्यालय, मुंबई

□

श्री कल्याण पार्श्वनाथ चोपाटी जैन संघ,
मुंबई

□

श्री विजय देवसूर जैन संघ पायधुनी,
मुंबई

□

श्री हरसोल यंग ग्रुप, मुंबई

अनुक्रमणिका

।। श्री. ऋषभदेव ।। SHRI RISHABDEV

ADIMAM PRITHIVINATHAM ADIMAM NISHPARI GRAHAM
ADIMAMTIRTHANATHAMCHA RISHABHA SWAMINAM STUMAH

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभस्वामिनं स्तुमः ।।१।।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् उनके तेरह भव निम्न प्रकार से है।

जंबुद्वीप में अनेकों क्षेत्र है। इसी द्वीप में पवित्र पश्चिम महाविदेह क्षेत्र है। वह अत्यंत रमणीय और नयनरम्य है।

वहां क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर है। उस नगर के राजा का नाम प्रसन्न चंद्र था। वह न्यायी प्रजापालक था। उस नगर में धन नामक एक व्यापारी रहता था। वह राजा का कृपापात्र था। राजा उस पर प्रसन्न था।

वह परोपकारी और दानवीर था। ईमानदारी और पवित्र हृदय वाला था।

एक बार व्यापार करने के लिए हजारों लोगों के साथ उसने वसंतपुर नगर की ओर प्रस्थान किया।

श्री धर्मघोष नाम के आचार्य भगवंत ने भी उनसे अनुमति ली और उनके साथ ही विहार करने लगे।

धन सार्थवाह हजारों लोगों एवं आचार्य जी के साथ आगे बढ़ने लगा।

रास्ते में पड़ाव डालते हुए, भोजन-पानी ग्रहण कर विश्राम करते हुए वे प्रतिदिन आगे बढ़ते थे। जंगलों, पहाड़ों और नदी-नालों को पार करते हुए कई दिन निकल गए।

चलते-चलते वर्षा ऋतु आ गई। मेघ गर्जना करने लगे। मूसलाधार पानी बरसने लगा। चारो ओर पानी ही पानी हो गया। नदी नाले भर गए। जंगल में आगे बढ़ना मुश्किल हो गया।

यह देखकर सार्थवाह ने वर्षावास के अनुकूल जगह तैयार करवा दी। छोटी-छोटी झोपडियो मे सभी रहने लगें। आचार्य महाराज भी उनके साथ एक झोंपड़ी में रुक गए।

महीनों तक पानी गिरता रहा। रास्ते बन्द हो गए। आवागमन भी बन्द हो गया। सार्थ को बहुत दिन रुकना पड़ा। उनकी भोजन सामग्री भी समाप्त हो गई। भूखे यात्री जंगल में कंद मूल खाकर गुजारा करने लगे।

धन सार्थवाह आचार्य भगवान को भूल ही गया था। किन्तु एक दिन सहसा उसे गुरुमहाराज और मुनियों की याद आई।

वह सोचने लगा—मेरे साथ जो आचार्य महाराज और मुनि आए है, उनकी क्या हालत हुई होगी। मैने इतने दिन कभी उनका ध्यान नही रखा। आहार-पानी की बात नहीं पूछी।

वे कन्दमूल भी नही खाते। नियम उनके कठोर है। उनका गुजारा कैसे हुआ होगा ?

धन सार्थवाह जल्दी ही उनके पास गया। आचार्य महाराज से उसने क्षमा मांगी। आहार की व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूछा।

आचार्य महाराज और मुनियों को महीनों से आहार नही मिला था । फिर भी उनके चेहरे पर कोई ग्लानि नही है ।

आचार्य महाराज ने प्रसन्नता से कहा आप कोई चिता न करें । साधु का जीवन ही संयममय है । उसे भोजन-पानी न मिले तो भी सहन करना पड़ता है । साधु को अनुकूल भोजन मिले तो ग्राह्य है, अन्यथा उसे उपवास करना होता है ।

सार्थवाह धन को यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि जब से वर्षा हुई आचार्य आदि ने आहार ग्रहण नही किया है ।

धन ने भाव भरी विनती की । जब उसने अत्यन्त प्रार्थना की गुरु.महाराज उसके रसोई स्थान में आये । उस समय वहां घी के सिवाय कोई सामग्री नहीं थी । उसने अत्यन्त अहोभाव से घी का दान किया ।

भावना शुद्धि से किए सुपात्रदान से धन सार्थवाह को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई । दान के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार के सुख प्राप्त हुए ।

वर्षा समाप्त होने पर धन सार्थवाह लोगो के साथ वसन्तपुर की ओर चला । वहां पहुंचकर उसने अपार धनार्जन किया । आचार्य महाराज भी धर्म का प्रचार करने लगा ।

गुरु महाराज के समागम से धन के जीवन की दिशा वदल गई । वह सांसारिक कर्त्तव्यों को निभाने के साथ देव गुरु धर्म की भक्ति भी करने लगा ।

कुछ समय बाद वह वसंतपुर से पुनः अपने क्षितिप्रतिष्ठित नगर मे गया । वहां धर्मध्यान मे जीवन यापन करने लगा ।

धन सार्थवाह की आयु परिपूर्ण होने पर वह उत्तरकुरु मे जंबूवृक्ष की पूर्वदिशा मे सीता नदी के उत्तर किनारे पर दान के प्रभाव से युगलिक पुरुष रूप में पैदा हुआ ।

युगलिक जीवन मे आयु समाप्त होने पर वह सौधर्म नामक देवलोक मे देव वना ।

देवभव की आयु पूर्ण होने पर धन सार्थवाह का जीव वहां से च्यव करके पश्चिम महाविदेह क्षेत्र मे गधिलावली नाम की श्रेष्ठ विजय है, उस क्षेत्र मे वैताढ़यगिरि पर गांधार देश मे गंधसमृद्ध नामक नगर है, उस नगर मे शतबल नामक राजा राज करता है । उसकी पत्नी का नाम है चन्द्रकांता, उसके गर्भ मे वह पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ ।

युवावस्था होने पर वे राजा बने । न्याय नीति से वे राज्य का संचालन करने लगे ।

उनके अनेक मंत्रियो मे एक स्वयंबुद्ध नामक मंत्री था । एक बार प्रातःकाल वह नंदनवन मे भ्रमण करने हेतु गया । उसने दो लब्धिधारी मुनियो को निर्मल शिला पर बैठे हुए देखा ।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् उनके तेरह भव निम्न प्रकार से हैं।

जंबुद्वीप में अनेकों क्षेत्र हैं। इसी द्वीप में पवित्र पश्चिम महाविदेह क्षेत्र है। वह अत्यंत रमणीय और नयनरम्य है।

वहां क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर है। उस नगर के राजा का नाम प्रसन्न चंद्र था। वह न्यायी प्रजापालक था। उस नगर में धन नामक एक व्यापारी रहता था। वह राजा का कृपापात्र था। राजा उस पर प्रसन्न था।

वह परोपकारी और दानवीर था। ईमानदारी और पवित्र हृदय वाला था।

एक बार व्यापार करने के लिए हजारों लोगों के साथ उसने वसंतपुर नगर की ओर प्रस्थान किया। श्री धर्मघोष नाम के आचार्य भगवंत ने भी उनसे अनुमति ली और उनके साथ ही विहार करने लगे।

धन सार्थवाह हजारों लोगों एवं आचार्य जी के साथ आगे बढ़ने लगा।

रास्ते मे पड़ाव डालते हुए, भोजन-पानी ग्रहण कर विश्राम करते हुए वे प्रतिदिन आगे बढते थे। जंगलो, पहाड़ों और नदी-नालों को पार करते हुए कई दिन निकल गए।

चलते-चलते वर्षा ऋतु आ गई। मेघ गर्जना करने लगे। मूसलाधार पानी बरसने लगा। चारो ओर पानी ही पानी हो गया। नदी नाले भर गए। जंगल में आगे बढ़ना मुश्किल हो गया।

यह देखकर सार्थवाह ने वर्षावास के अनुकूल जगह तैयार करवा दी। छोटी-छोटी झोपडियो मे सभी रहने लगें। आचार्य महाराज भी उनके साथ एक झोंपड़ी में रुक गए।

महीनों तक पानी गिरता रहा। रास्ते बन्द हो गए। आवागमन भी बन्द हो गया। सार्थ को बहुत दिन रुकना पड़ा। उनकी भोजन सामग्री भी समाप्त हो गई। भूखे यात्री जंगल में कंद मूल खाकर गुजारा करने लगे।

धन सार्थवाह आचार्य भगवान को भूल ही गया था। किन्तु एक दिन सहसा उसे गुरुमहाराज और मुनियों की याद आई।

वह सोचने लगा—मेरे साथ जो आचार्य महाराज और मुनि आए है, उनकी क्या हालत हुई होगी। मैने इतने दिन कभी उनका ध्यान नही रखा। आहार-पानी की बात नहीं पूछी।

वे कन्दमूल भी नहीं खाते। नियम उनके कठोर हैं। उनका गुजारा कैसे हुआ होगा ?

धन सार्थवाह जल्दी ही उनके पास गया। आचार्य महाराज से उसने क्षमा मांगी। आहार की व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूछा।

आचार्य महाराज और मुनियों को महीनों से आहार नहीं मिला था। फिर भी उनके चेहरे पर कोई ग्लानि नही है।

आचार्य महाराज ने प्रसन्नता से कहा आप कोई चिता न करें। साधु का जीवन ही संयममय है। उसे भोजन-पानी न मिले तो भी सहन करना पड़ता है। साधु को अनुकूल भोजन मिले तो ग्राह्य है, अन्यथा उसे उपवास करना होता है।

सार्थवाह धन को यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि जब से वर्षा हुई आचार्य आदि ने आहार ग्रहण नही किया है।

धन ने भाव भरी विनती की। जब उसने अत्यन्त प्रार्थना की गुरु.महाराज उसके रसोई स्थान में आये। उस समय वहां घी के सिवाय कोई सामग्री नहीं थी। उसने अत्यन्त अहोभाव से घी का दान किया।

भावना शुद्धि से किए सुपात्रदान से धन सार्थवाह को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। दान के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार के सुख प्राप्त हुए।

वर्षा समाप्त होने पर धन सार्थवाह लोगों के साथ वसन्तपुर की ओर चला। वहां पहुंचकर उसने अपार धनार्जन किया। आचार्य महाराज भी धर्म का प्रचार करने लगा।

गुरु महाराज के समागम से धन के जीवन की दिशा बदल गई। वह सांसारिक कर्त्तव्यों को निभाने के साथ देव गुरु धर्म की भक्ति भी करने लगा।

कुछ समय बाद वह वसंतपुर से पुनः अपने क्षितिप्रतिष्ठित नगर में गया। वहां धर्मध्यान मे जीवन यापन करने लगा।

धन सार्थवाह की आयु परिपूर्ण होने पर वह उत्तरकुरु मे जंबूवृक्ष की पूर्वदिशा मे सीता नदी के उत्तर किनारे पर दान के प्रभाव से युगलिक पुरुष रूप में पैदा हुआ।

युगलिक जीवन मे आयु समाप्त होने पर वह सौधर्म नामक देवलोक में देव बना।

देवभव की आयु पूर्ण होने पर धन सार्थवाह का जीव वहां से च्यव करके पश्चिम महाविदेह क्षेत्र मे गंधिलावती नाम की श्रेष्ठ विजय है. उस क्षेत्र में वैताढ्यगिरि पर गांधार देश मे गंधसमृद्ध नामक नगर है, उस नगर मे शतबल नामक राजा राज करता है। उसकी पत्नी का नाम है चन्द्रकांता, उसके गर्भ मे वह पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ।

युवावस्था होने पर वे राजा बने। न्याय नीति से वे राज्य का संचालन करने लगे।

उनके अनेक मंत्रियो मे एक स्वयंबुद्ध नामक मंत्री था। एक बार प्रातःकाल वह नंदनवन मे भ्रमण करने हेतु गया। उसने दो लब्धिधारी मुनियों को निर्मल शिला पर बैठे हुए देखा।

प्रातःकाल मे मुनियो के दर्शन से उसे परम आनंद हुआ । साधुओ को नमस्कार कर वह बैठा। उपदेश श्रवण करने के लिए विनती की । मुनियों ने धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर मंत्री को अपार आनंद हुआ । धर्मप्रति रस पैदा हुआ ।

मंत्री राजा का परम सेवक था । वह राजा के हित की सतत चिता करता था । उसने जिज्ञासा से पूछा—'गुरुदेव ! मेरे स्वामी राजा का कितना आयु शेष है ?'

प्रत्युत्तर में मुनि ने कहा—'केवल एक मास !'

मात्र एक मास की बात सुनकर मंत्रीविचार मग्न हो गया । मंत्री सोचने लगा—आयु अति अल्प है और राजा भोग सुखों में मग्न है । उसकी आत्मा का कल्याण कैसे होगा ?

मुनियों को वंदना कर वह नगर में वापिस चला आया । राजा को समझाने का कार्य कठिन था। राजा के मन को मोडना सहज बात नही थी ।

शाम के समय अवसर देखकर उसने राजा को बताया आज प्रातःकाल परिभ्रमण के लिए मै नंदनवन में गया । वहां मैने दो लब्धिधारी मुनियों के दर्शन किए। मैंने उनसे आपकी आयु के बारे मे पूछा ।

राजा ने अपनी आयु जानने के लिए उत्सुकता से पूछा कि—'मुनि ने क्या कहा ।'

महामंत्री ने प्रत्युत्तर दिया कि मुनि ने आपकी आयु एक मास की शेष बताई है ।

राजा अपनी आयु अत्यल्प जानकर चिता में पड़ गया । उसका सुख विलीन हो गया । वह सोचने लगा—धर्माराधना के बिना सारा जीवन निरर्थक चला गया । शेष अल्प जीवन में आराधना कैसे होगी ? राजा अति उदास हो गया ।

राजा को चिता मे घिरा हुआ देखकर, मंत्री ने कहा—राजन ! अभी भी कुछ बिगड़ा नही है । जब जागे तभी सवेरा । आप सब चिता छोड़कर आत्मसाधना में लग जायें । जीवन का कल्याण अवश्य होगा ।

राजा ने निराशा में कहा—मंत्री जी ! इतने अल्प समय में क्या हो सकता है ?

मंत्री ने कहा—राजन् ! लाखों टन घास को आग की छोटी सी चिगारी भस्म कर देती है । शरीर पर लगा हुआ मैल एक बार के स्नान से धुल जाता है । आप हिम्मत न हारें ।

संयम का रास्ता परम मंगलकारी है । आप दीक्षा ग्रहण कर लें । भविष्य का रास्ता स्वत· प्रशस्त हो जायेगा ।

मंत्री की प्रेरणा से राजा का मन बदला । उसने दीक्षा स्वीकार कर ली ।

बाईस दिन का अनशन किया। नमस्कार महामंत्र का ध्यान करते हुए शरीर त्याग किया। समाधिमरण को प्राप्त कर वे ईशान नामक देवलोक में ललितांग नामक देव हुए।

महामंत्री स्वयं बुद्ध ने भी दीक्षा ग्रहण की। वह भी अनशन कर उसी देवलोक मे इन्द्र का दृढ़धर्मा नामक देव हुआ।

ईशान देवलोक के श्री प्रभ विमान मे स्वयं प्रभा नामक देवी थी। ललितांग को वह अत्यंत प्रिय थी। वह उसके साथ सुख से रहने लगा। देवी की आयु पूर्ण होने पर च्यवित हो गई। देवी के अवसान से वह दु:खी हो गया।

उस समय पूर्वभव का स्नेही मित्र दृढ धर्म नाम का देव उसके पास आया। मित्र वही होता है, जो दुःख मे सहभागी बनता है। मित्रदेव ललिनांग के दुःख को हल्का करने के लिए उसने कहा 'तुम शोक न करो। चिता को छोडो। तुम्हारी पत्नी के जन्म-स्थान को अवधिज्ञानसे मैंने जान लिया है।'

ललितांग ने उत्सुकता से पूछा—'वह कहां पैदा हुई है। मित्रदेव ने ज्ञान से बताया।'

धातकी खड द्वीप में पूर्वमहाविदेह क्षेत्र मे नंदि नाम का एक गांव है। वहां अति गरीब दुःखी नागिल नाम का सेठ है। वह दिनभर काम करता है, किन्तु फिर भी उसके परिवार की उदरपूर्ति नही हो पाती है।

उसकी पत्नी नागश्री ने ६ कुरूप पुत्रियो को जन्म दिया है। माता पिता उन्हें बोझ मानते है। नागश्री पुन गर्भवती हुई। नागिल ने विचार किया—अब की बार भी यदि कन्या हुई तो मै मुंह भी नही देखूंगा। सब को छोड़कर चला जाऊंगा।

कितना बुरा मानते है माता-पिता लडकी को। नागश्री ने दैवयोग से सातवी बार भी पुत्री को ही जन्म दिया।

गरीब और दु खी पिता यह सुन घर छोड़कर भाग गया। दुःखी माता ने भी उसका कोई नाम नही रखा। उसका नाम निर्नामिका पड़ गया।

दुर्भागी निर्नामिका के साथ किसी ने शादी नही की। एक दिन माता ने उसे अबर तिलक नामक पहाड़ पर लकड़िया लेने भेजा।

पर्वत पर उसने युगंधर नामक केवली के दर्शन किए। केवली धर्मदेशना दे रहे थे। उसने भी केवली की अमृतवाणी सुनी। उसके मन मे वैराग्य उत्पन्न हुआ।

अब वह अनशन कर रही है। उसने आहार-पानी का परित्याग कर दिया है। वह धर्मध्यान मे लीन है।

दृढ़ धर्मदेव ललितांग को कहता है—वह निर्नामिका ही तुम्हारे अनुराग में मरकर वह तुम्हारी पत्नी बनेगी।

देव की कांति और रूप देखकर वह मुग्ध हो गई। मरकर वह पुनः स्वयं प्रभा देवी हुई। दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बार ललितांग देव ईशानेन्द्र आदि के साथ नंदीश्वर तीर्थ मे प्रभुभक्ति के लिए जा रहा था। यात्रा करते हुए उसका च्यवन हो गया। उसकी मौत हो गई।

ललितांग देव मरकर इसी जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे पुष्कलावती नामक विजय में लोहार्गल नामक नगर-में सुवर्णजंघ राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था लक्ष्मी, उसकी कुक्षी में उत्पन्न हुआ।

जन्म होने पर उसका नाम रखा गया वज्रजंघ। उसकी पत्नि स्वयं प्रभा देवी भी उसी विजय में पुंडरीकिणी नामक नगरी मे वज्रीसेन नामक चक्रवर्ती की श्रीमति नामक पुत्री हुई।

श्रीमति जब युवावस्था को प्राप्त हुई उसके पिता ने स्वयंवर का आयोजन किया। अनेक देशों के राजकुमार आए।

लाहार्गल नगर का वज्रजंघ कुमार भी युवा हो गया था। वह भी स्वयंवर में आया।

उस समय नगर के समीप किसी केवलज्ञानी मुनि का महोत्सव करने के लिए देव जा रहे थे। देवों को देखकर श्रीमति को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। अपना पूर्वभव उसके माता-पिता को बताया, और अपनी सहेलियो के द्वारा यह समाचार कहलवाया कि ललितांग को छोड़कर अन्य वर उसे मान्य नहीं है।

ललितांग के आत्मा की खोज के लिए श्रीमति का चित्रपट बनाकर राजमार्ग में स्थापन किया। उसे देखकर वज्रजंघ कुमार-को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

सच्चाई की प्रतीति होने पर श्रीमति ने वज्रजंघ के गले में वरमाला डाल दी। दोनो की शादी हो गई। उसके साथ वज्रजंघ अपने नगर में आया। सुखमय जीवन यापन करने लगे। उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई।

कुछ समय पश्चात सुवर्णजंघ ने वज्रजंघ को राज्य सौप दिया और दीक्षा स्वीकार कर ली।

एक बार वह वज्रजंघ श्रीमति का भाई पुष्कालपाल के शत्रुओं को जीतने के लिए पत्नी सहित पुंडरीकिणी नगर गया। सभी शत्रुओं को परास्त कर वह अपने नगर की ओर चला।

रास्ते में एक शखण नामक जंगल आया। वहां रात्रि विश्राम किया। वहां उन्हें दो केवल ज्ञानी

मुनियो के दर्शन हुए। उन्होने केवली की वाणी सुनी।

दोनों को वैराग्य हुआ। संयम स्वीकार करने का विचार किया। निश्चय किया कि नगर जाकर पुत्र को राज्यभार सौप देगे और दीक्षा अंगीकार कर लेगे।

नगर मे पहुंचने के बाद सोचा प्रातःकाल प्रवज्या ग्रहण करेंगे। वे अपने शयनागार मे सो गए।

उनके पवित्र विचार का पुत्र को पता नहीं था। राज्य लोभी पुत्र ने शयनगृह के चारो ओर विषाक्त धुआ कराया। उनका दम घुटने लगा। मरकर वे उत्तरकुरू भोगभूमि में युगलिक हुए। उत्तरकुरू में युगलिक भव का आयु परिपूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देव हुए।

सौधर्म देवलोक का आयु पूर्ण होने पर इस जंबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर में वज्रजंघ की आत्मा सुविधि नामक वैद्य के घर उत्पन्न हुई। उसका नाम रखा गया जीवानंद।

श्रीमति भी देवभव का आयु पूर्ण कर उसी नगर में एक सेठ के घर पुत्र रूप मे पैदा हुई। उसका नाम रखा गया केशव।

पूर्वभव के संबंध के कारण दोनो प्रियमित्र बने। गहरा मैत्री संबंध हुआ। उनके अन्य भी चार मित्र निम्न प्रकार से थे।

मंत्री का पुत्र सुबुद्धि, ईशानचन्द्र राजा का पुत्र महीधर, सार्थवाह का पुत्र पूर्णभद्र और श्रेष्ठिपुत्र गुणाकर।

एक बार वे पाचो मित्र जीवानंद के घर गए। उस समय तपस्वी गुणाकर नाम के मुनि भिक्षा के लिए आए। मुनि कुष्ठ रोग से ग्रस्त थे। उन्हें वेदना हो रही थी। शरीर से मवाद झर रहा था। मुनि की कारूणदशा देखकर छहो मित्रो का दिल द्रवित हो गया। उनका हृदय भर आया।

मित्रो ने जीवानन्द को कहा—मित्र ! तुम कुशल वैद्यराज हो लोगो को स्वस्थ करते हो। मुनि की भी सेवा करो ! स्वस्थ करो। तुम्हारी सेवा और विद्या तभी सार्थक बनेगी।"

जीवानन्द ने कहा—मुनि को देखकर मेरे मन मे भी यह भावना जगी है। उसने तैयारी बताई और कहा—मुनि की चिकित्सा के लिए हमे तीन चीजे जुटानी पडेगी। रत्नकंबल, गोशीर्षचन्दन और लक्षपाक तैल।

लक्षपाक तैल मेरे पास है। आप रत्नकंबल और गोशीर्षचन्दन की तलाश करे।

तत्पश्चात सभी मित्र नगर के जीर्ण नामक श्रेष्ठि के पास गए।

श्रेष्ठि से उन्होंने कीमत से गोशीर्षचंदन और रत्नकंबल मांगे।

श्रेष्ठि ने बिना मूल्य मुनि सेवा के लिए दोनो चीजें दे। दोनों का मूल्य [illegible]

छहों मित्र तीन वस्तु लेकर जंगल में मुनि के पास गए। मुनि कायोत्सर्ग ध्यान में थे। उन्होंने मुनि को काउसग्ग पारने की विनती की। मुनि ने काउसग्ग पारा। उन्होंने मुनि से कहा—हम आप के शरीर को रोग मुक्त करना चाहते है। अतः हमें अनुमति प्रदान करें।"

मुनि ने अनुमति प्रदान की। मुनि के शरीर में रोग के कीड़ों की रक्षा के लिए मित्र तुरंत एक मृत गाय ले आए।

तत्पश्चात् जीवानंद ने मुनि के शरीर की लक्षपाक तैल से मालिश की। तैल की गर्मी से व्याकुल कीड़े मुनि शरीर से बाहर आ गए। फिर पूरे शरीर को रत्नकंबल से ढक दिया। रोग के सारे कीड़े शीतल रत्नकंबल से लिपट गए।

दयालु वैद्यराज ने रत्नकंबल मुनि शरीर से उठाया और मृतगाय के कलेवर में उसे झाड़ा, सारे कीडे गाय के कलेवर में समा गए।

जीवानंद ने तीन बार यह प्रयोग कर मुनि के शरीर को रोग रहित कर दिया।

अन्त में मुनि के देह की शान्ति के लिए गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। मुनि पूर्णरूप से स्वस्थ हो गए।

मुनि के स्वस्थ होने से सभी मित्र प्रसन्न हुए। जीवानंद को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मुनि की सेवा का लाभ प्राप्त होने से उसका हृदय आनंद से भर गया

मुनि को उन्होंने वंदना की। मुनि ने धर्म का बोध दिया। उन्हें समकित की प्राप्ति हुई।

चिकित्सा करते बचा हुआ गोशीर्षचन्दन और रत्नकंबल उन्होंने बेच दिया। भाग्यशाली ही गुरू की सेवा कर सकता है।

उस धन से अपनी लक्ष्मी से भव्य जिनमंदिर का निर्माण कराया। नयन रम्य मनोहर जिन प्रतिमा की स्थापना कराई। वे प्रतिदिन परमात्मा की पूजा करते थे। गुरू की भक्ति भी निरंतर करते थे।

देव एवं गुरू की भक्ति करते हुए उनका मन पावन बना। मनशुद्धिसे उन्हें संवेग और वैराग्य हुआ। मन की धारा मे परिवर्तन आया। मन बदलते ही जीवन बदला।

फलतः सभी मित्रों ने संयम ग्रहण किया। संयम की निर्मल आराधना की। समाधिमरण को पाकर बारहवे अच्युत नामक देवलोक में उत्पन्न हुए। इन्द्र के सामानिक देव बने।

सुकृत की अनुमोदना दुष्कृत की निन्दा आलोचना परम कल्याणकारी मार्ग है पंचपरमेष्ठि की आराधना करने वाला एवं सुकृत के मार्ग में चलने वाला सद्गति का भागी बनता है।

बारहवें अच्युत देवलोक की आयु परिपूर्ण कर वे इस जंबूद्वीप के पूर्वमहाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती

नामक विजय है, उस विजय में पुंडरीकिणी नामक नगरी में वज्रसेन नामक राजा था। उसकी रानी का नाम था धारिणी।

उस रानी के गर्भ मे वे पांचो पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। उसमें सर्वप्रथम वैद्य का जीव गर्भ में आया। माता ने चक्रवर्ती के सूचक चौदह स्वप्न देखे। जीवानन्द चक्रवर्ती रूप में उत्पन्न हुए। उनका नाम वज्रनाभ रखा गया।

दूसरे चार मित्र सुबुद्धि, महिधर, पूर्णभद्र और गुणाकर भी रानी धारिणी की कुक्षी में उत्पन्न हुए। जन्म होने पर उनके नाम क्रमशः बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ नाम रखे गए।

छठा मित्र केशव अन्य राजा का पुत्र हुआ।

सभी परस्पर प्रीति से रहने लगे। विद्याभ्यास करने लगे। सुयश भी वज्रनाभ के पास रहने लगा।

सभी विद्याओ मे वे पारंगत हो गए। वज्रनाभ आदि सभी यौवन अवस्था को प्राप्त हुए, नव देवो ने आकर वज्रसेन राजा को प्रार्थना की कि भगवन जगहित के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना करो।

वज्रसेन राजा ने वज्रनाभ को राज्यसिहासन पर स्थापित किया।

उन्होने वर्षीदान देकर दीक्षा स्वीकार की। तपाराधना एवं आत्मसाधना करते हुए उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

वज्रनाभ के लिए आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। चक्ररत्न की सहायता से उन्होंने छः खण्ड पर विजय पाया।

चौदह रत्न और नवनिधान भी चक्रवर्ती के लिए प्रकट हुए। स्वबल एवं बुद्धि से राजा ने प्रजा का पालन एव रक्षण किया।

उसके राज्य मे कोई दु:खी नही था। प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। [illegible] केशव मित्र जो [illegible] राजकुमार हुआ। उसे सारथि बनाया।

एक बार श्री तीर्थंकर भगवान विचरण करते हुए [illegible] सिंहासन पर विराजमान हुए।

प्रभु ने उसे दीक्षा प्रदान की। बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ ने भी उनके साथ दीक्षा ले ली। सुयश सारथि ने भी दीक्षा ले ली।

महाराजा चक्रवर्ती वज्रनाभ ने छः खण्ड की महान ऋद्धि सिद्धि का परित्याग कर दिया।

जो छोडता है वही आत्मसुख पाता है। छोडने में सुख है। जोड़ने में दुःख है।

जो स्वेच्छा से त्याग नही करता है मौत के सामने उसे सब कुछ त्यागना पड़ता है।

वज्रनाभ राजर्षि ने द्वादशांगी का अध्ययन किया। विविध प्रकार की तपस्या करने लगे। आत्मसाधना कर निरतिचार चरित्र का पालन करने लगे।

उन्होने वीशस्थानक महानतप की आराधना की और तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया।

बाहु नामक मुनि ने सैकड़ों मुनियो को आहार लाकर प्रदान किया। जिससे चक्रवर्ती पद के योग्य भोगकर्म का उपार्जन किया।

सुबाहु मुनि ने तपस्वी मुनियों की सेवा की। सेवा से महान बाहुबल प्राप्ति योग्य कर्म का उपार्जन किया।

एक दिन वज्रनाभ राजर्षि ने दोनो बाहु और सुबाहु मुनि की प्रशंसा की। उन्होने कहा कि—"ये दोनो मुनि धन्य है, जो सैकड़ो साधुओं की सेवाभक्ति कर रहे है। इनका जीवन कृतार्थ है। सार्थक है।"

पीठ और महापीठ को प्रशंसा सहन नही हुई। वे दोनों बाहु और सुबाहु की ईर्ष्या करने लगे। निंदा करने लगे।

माया एव ईर्ष्यावृत्ति से उन्होंने नारीपन प्राप्ति का कर्म उपार्जन किया।

जीवन की अंतिम वेला में छहों मुनियों ने अनशन किया। समाधिमरण को प्राप्तकर वे सभी स्वार्थसिद्ध नामक विमान में देव हुए।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में नाभि नाम के सातवें कुलकर हुए। मरुदेवा उनकी धर्मपत्नी थी।

उस समय तीसरे आरे के चौरासी लाख कुछ न्यून वर्ष बीत जाने पर सर्वार्थसिद्ध विमान की तीस सागरोपम की आयु पूर्ण होने पर आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी के दिन उत्तम योग में वज्रनाभ का जीव मरुदेवा के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

प्रभु के गर्भ में आगमन से शयनगृह मे निद्राधीन माता मरुदेवा ने उसी रात्रि में वृषभ-१ हाथी-२ सिह-३ लक्ष्मी-४ पुष्पमाला-५ चंद्र-६ सूर्य-७ ध्वज-८ कुंभ-९ सरोवर-१० समुद्र-११ विमान-१२ रत्नराशि-१३ और अग्नि-१४ ये चौदह महास्वप्न देखे।

नवमास और साढ़े सात दिन के पश्चात् चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन उत्तराषाढा

नक्षत्र और धन राशि में चंद्र का योग होने पर मरुदेवा ने पुत्र को जन्म दिया।

प्रभु स्वर्ण वर्ण वाले और वृषभ लांछन युक्त थे।

जन्मोत्सव

प्रभु का जब जन्म हुआ। उस समय छप्पन दिक्कुमारिकाओं ने आकर सूतिकर्म किया। चौसठ इन्द्रो ने प्रभु को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक महोत्सव किया।

माता ने स्वप्न मे प्रथम बैल देखा था एवं प्रभु की जंघा में बैल का चिन्ह था, अतः उनका नाम वृषभ रखा। प्रभु के साथ जो युगलिक पुत्री पैदा हुई, उसका नाम सुमंगला रखा।

किसी युगल को उसके माता ने तालवृक्ष के नीचे रखा था। उस समय तालवृक्ष का फल बच्चे पर गिरा, बच्चा मर गया। उस युग मे यह पहली अकाल मृत्यु थी। कन्या बच गई। उसे प्रभु के पिता ने अपने पास रखा।

जब प्रभु की आयु एक वर्ष से कुछ कम थी। उस समय इन्द्र महाराज ने सोचा-प्रभु के वश की स्थापना करना मेरा आचार है यह सोचकर वे हाथ मे इक्षु (गन्ना) लेकर प्रभु के पास आए।

गन्ने को देखकर प्रभु प्रसन्न हुए और लेने के लिए हाथ लंबा किया। इन्द्र ने उन्हे दे दिया। "इक्षु की अभिलाषा वाले प्रभु का वंश इक्ष्वाकु हो" यो कहकर इन्द्र ने वंश की स्थापना की।

प्रभु जब युवावस्था को प्राप्त हुए, तब इन्द्र प्रभु के विवाह का अपना कर्त्तव्य जानकर उनके पास आए। प्रभु के विवाह का कार्य स्वयं किया। सुनन्दा और सुमंगला के साथ उनका विवाह कराया।

ससार मे रहते हुए सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी युगल को जन्म दिया। ये पूर्वभव में बाहु और पीठ के जीव थे।

सुबाहु और महापीठ का जन्म सुनदा की कुक्षि से हुआ। उनका नाम बाहुबली और सुंदरी रखा गया।

फिर क्रम से सुमंगला ने उनचास युगलो को जन्म दिया। इन्द्र ने कुबेर को नगरी के निर्माण की आज्ञा दी। उसने आज्ञा का पालन करते हुए, बारह योजन विशाल और नौ योजन चौड़ी विनीता नगरी की स्थापना की।

गृह कर्म की शिक्षा

[illegible] काल की हानि से कल्पवृक्ष के फल लोगो को मिलने बंद हो गए तो उन्होंने गन्ने और पत्र फूल आदि खाने शुरू कर दिए।

अग्नि भी उस समय प्रकट नहीं हुई थी अतः लोग कच्चे ही चावल आदि धान्य खाने लगे। फिर भी पचता नही था। प्रभु ने उन्हें छिलके उतारकर व मसलकर खाने को कहा। इस तरह खाने पर भी न पचने से प्रभु ने पानी में भिगोकर खाने को कहा। वे वैसा ही करने लगे।

एक दिन वृक्षों के घर्षण से आग पैदा हुई। आग की ज्वाला घास की लकड़ी को जलाने लगी।

युगलिक लोगों ने सोचा—"यह कोई नवीन रत्न है उसे रखने की बुद्धि से हाथ मे लेने लगे। तब उनके हाथ जल गए। भयभीत होकर उन्होंने प्रभु को अग्नि की घटना बताई।

प्रभु ने जान लिया कि आग उत्पन्न हुई है। उन्होंने बताया कि तुम चावल आदि उससे भूनकर खाओ। जिससे अनाज पच जायगा।

पकाने का अनुभव नहीं था अतः अनाज वे आग मे डालने लगे और कल्पवृक्ष से जैसे फल मांगते थे वैसे फल मांगने लगे। किन्तु आग सब कुछ जला देती थी।

उन्होंने सोचा यह राक्षस जैसा है, सब कुछ स्वयं ही भक्षण कर जाता है, हमें तो कुछ भी वापस नहीं देता। इसे प्रभु से अपराध का दंड दिलाना है। यह सोचकर वे प्रभु के पास जा रहे थे। प्रभु हाथी पर बैठकर रास्ते मे ही सन्मुख आते हुए उन्हें दिखाई दिए।

उन्होंने सारी घटना प्रभु को बताई। प्रभु ने उन्हें आग में पकाकर खाने को कहा। जानकारी देने के लिए प्रभु ने मिट्टी का पिड मंगवाया। उसे हाथी के गंडस्थल पर स्थापित कर बरतन बनाया और लोगों को दिया प्रभु ने कुंभकार की पहली कला प्रकट की।

प्रभु ने उन्हें कहा—इस प्रकार के बरतन बनाकर उन्हें अग्नि में पका देना चाहिए। फिर उसमे धान्य पकाकर खाने से वह पच जाएगा। प्रभु की बनाई विधि अनुसार वे भोजनादि का व्यवहार करने लगे।

त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक प्रभु ने राज्य का पालन किया। तत्पश्चात् चैत्र मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन उत्तराषाढा नक्षत्र में सुदर्शना नामक शिविका में बैठकर सिद्धार्थ वन में गए। अशोक वृक्ष के नीचे प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की।

उस समय निर्मल हृदय वाले कच्छ और महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं ने प्रभु के साथ दीक्षा स्वीकार की।

दीक्षा लेकर प्रभु घोर अभिग्रह धारण कर ग्रामानुग्राम विचरने लगे। उस समय लोग भिक्षा देना जानते नही थे अतः भगवान को कोई भिक्षा नही देते थे।

प्रभु जब भिक्षा के लिए जाते थे तब लोग उन्हें वस्त्र, हीरे-मोती, आभूषण और कन्याएं देते थे। भिक्षा न मिलने पर भी अदीन मन वाले प्रभु विचरते हुए हस्तिनापुर तीर्थ (गजपुर) में पधारे।

नगर मे बाहुबलि का प्रपौत्र श्रेयांस कुमार था। पूर्वभव में वह सुयश नामक प्रभु का सारथि था। सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यव कर वह जन्मा था।

प्रभु के दर्शन से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने ज्ञान से जान लिया कि अनजान लोग प्रभु को भिक्षा नही दे रहे थे। प्रभु को भिक्षा की, आहार की आवश्यकता है। प्रभु को एक वर्ष के उपवास हो गए है।

श्रेयांस ने ताजे १०८ घडे गन्ने के रस के जो आए थे, उसने उसी ईक्षु रस से भगवान को पारना कराया।

एक हजार वर्ष तक प्रभु ने तपस्या की। विहार करते हुए प्रभु अयोध्या नगरी के बाहर पधारे। पुरिमताल के शकट नामक उद्यान मे वट वृक्ष के नीचे चौविहार अट्ठम तप किया।

फाल्गुन मास की कृष्णा एकादशी के दिन प्रात.काल के समय उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्र का योग प्राप्त होने पर प्रभु को अनन्त केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

दिव्य आलोकमय धर्मचक्र भी प्रभु के समीप उत्पन्न हुआ। उसी समय भरत राजा के लिए भी चक्ररत्न प्रकट हुआ। उन्होने चक्ररत्न को गौण कर सबसे पहले भगवान का महोत्सव किया, पूजा की।

देवो ने समवसरण की रचना की। उसमे ऋषभसेन आदि चौरासी गणधर हुए। प्रभु के समय मे तीन कोस ऊचा चैत्य वृक्ष था।

प्रभु के शासन मे गोमुख नामक, रक्षक देव था। हाथी उसका वाहनथा। उसके चार हाथ थे। दाए हाथ मे एक माला थी, दूसरे मे आशीर्वाद मुद्रा। बाए एक हाथ मे बीजोरा फल और दूसरे मे पाश था। स्वर्णवर्णमय उसका शरीर था।

उनकी शासनदेवी अप्रतिचक्रा थी। उसके आठ हाथ थे। उसके दाये तीन हाथ मे चक्र पाश और बाण थे। चौथा वरद हस्त था। बाए चार हाथ मे चक्र, अंकुश धनुप और वस्त्र थे। उस का गरुड़ वाहन था। वह स्वर्णमय था। वह निरतर प्रभु की सेवा मे रहती थी।

प्रभु का परिवार इस प्रकार से था। चौरासी हजार साधु, तीन लाख साध्विया व चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वी थे।

नव हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी बीस हजार छ सौ वैक्रिय लब्धिधारक मुनि, बारह हजार [illegible] छ सौ वादी मुनि और इतने मन पर्यवज्ञानी मुनि थे। बाईस हजार साधु अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए।

[illegible] पचास हजार श्रावक थे, पांच लाख चौवन हजार श्राविकाएं थी।

दीक्षा पर्याय में एक लाख पूर्व वर्ष की आयु पूर्ण हुई, तब भगवान दस हजार साधुओं के साथ अष्टापद पर्वत पर आए। छः दिन के उपवास सभी ने किए और पद्मासन अवस्था में मुनियों सहित ऋषभदेव प्रभु ने इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के नवासी सप्ताह जब बाकी थे, तब माघ मास की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी के दिन मे अभिजित् नक्षत्र में चंद्र के योग में मोक्ष पद प्राप्त किया।

कुमारावस्था मे वीश लाख पूर्व, राज्य अवस्था मे त्रेसठ लाख पूर्व और चरित्र पर्याय मे एक लाख पूर्व, इस प्रकार संपूर्ण आयु आदिनाथ भगवान की चौरासी लाख पूर्व वर्ष की थी।

जो ऋषभप्रभु अर्थ दंड, अनर्थदंड आदि तेरह क्रियाओं से रहित होकर, तेरहवें भव मे तीर्थकर हुए एवं तेरहवें गुणस्थान के पश्चात् चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए, वे प्रभु कल्याण करें।

श्री आदिनाथ स्तवन

(तर्ज :- जगजीवन जगवाल)

जग चितामणि जग गुरू
जग वल्लभ जग देव लाल रे।

उज्जल गुणी कर्पुर समा,
विबुध करे नित्य सेव लाल रे.. ॥जग १ ॥

ज्ञानी सर्व विद्यातणा,
समुद्र सरिखा उदार लाल रे
शिब मार्ग विशुद्धता,
पूर्णानन्द विचार लाल रे.. ॥जग २ ॥

विशारद स्याद्वादना,
इन्द्र करे नमोकार लाल रे
तीर्थ प्रकाशन कारणे
तीर्थ जनक संघ चार लाल रे.. ॥जग३ ॥

त्रैलोक्य दीपक देहरो,
राणकपुर मनोहर लाल रे।
यात्रा कारण आवते,
भविजन पाप निवार लाल रे.. ॥जग ४ ॥

चौमुख प्रभुजी शोभते,

मानो चार प्रकार लाल रे ।
आदिश्वर आदिनाथ जी,
आदि धर्म अवतार लाल रे.. ॥जग ५ ॥

नय निक्षेपे विचारणा,
सर्व पदारथ सार लाल रे ।
सप्तभङ्गी षड्द्रव्यना,
भेदो नो विस्तार लाल रे.. ॥जग ६ ॥

वाण गगन नभ हस्तना,
वर्षे देव जुहार लाल रे ।
माघ सुदिनी त्रयोदशी,
सुन्दर भार्गव वार लाल रे.. ॥जग ७ ॥

आतम रूप निहारता,
आतमराम आधार लाल रे ।
आतम लक्ष्मी पामिये,
वल्लभ हर्ष अपार लाल रे.. ॥जग ८ ॥

स्तुति

आदिमं पृथिवीनाथमादिम निष्परिग्रहम् ।
आदिम तीर्थनाथं च, ऋषभ-स्वामिनं स्तुमः ॥

प्रार्थना

धर्म संस्कृति के स्थापक श्री आदिनाथ थे वीतरागी
जंगलों में जा ध्यान लगाया सुख-संपत्ति सारी त्यागी ।
नाभिनन्दन थे वो माता मरुदेवी के दुलारे,
प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को वंदन नित्य हमारे ॥

परिचय

१ माता का नाम	मरुदेवा
२ पिता का नाम	नाभिकुलकर
३ च्यवन कल्याणक	आषाढ कृष्णा ४/अयोध्या
४ जन्म कल्याणक	चैत्र कृष्णा ८/ अयोध्या
५ दीक्षा कल्याणक	चैत्र कृष्णा ८/अयोध्या (विनीतानगरी)
६ केवलज्ञान कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ११/पुरिमताल
७ निर्वाण कल्याणक	माघ कृष्णा १३/अष्टापद पर्वत
८ गणधर	सख्या ८४/प्रमुख पुडरीक
९ साधु	सख्या ८४०००/प्रमुख ऋषभसेन
१० साध्वी	संख्या ३ लाख/प्रमुख ब्राह्मी
११ श्रावक	सख्या ३ लाख ५ हजार/प्रमुख श्रेयास
१२ श्राविका	सख्या ५ लाख ५४ हजार/प्रमुख सुभद्रा
१३ ज्ञानवृक्ष	वटवृक्ष
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	गोमुख
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	चक्रेश्वरी
१६ आयुष्य	८४ लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न-**Mark**)	वृषभ-बैल
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सर्वार्थसिद्धविमान (अनुत्तर देवलोक)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	वज्रनाभ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	१३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१ हजार बरस
२२ गृहस्थ अवस्था	८३ लाख पूर्व
२३ शरीर-वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	सुदर्शना
२५ नाम-अर्थ	प्रथम स्वप्न मे माता के द्वारा वृषभ देखने के कारण

। श्री अजितनाथ ।।

श्री अजितनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—अजितनाथ प्रभु अवतर्या, विनीता नो स्वामी,
जितशत्रु विजया तणो, नंदन शिवगामी ॥१ ॥

बहोतेर लाख पूर्वतणुं, पाल्युं जिणे आय,
गजलछन लंछन नहीं, प्रणमे सुरराय ॥२ ॥

साडा चारशे धनुष ए, जिनवर उत्तम देह,
पाद पद्म तस प्रणमीये, जिम लहीये शिवगेह ॥३ ॥
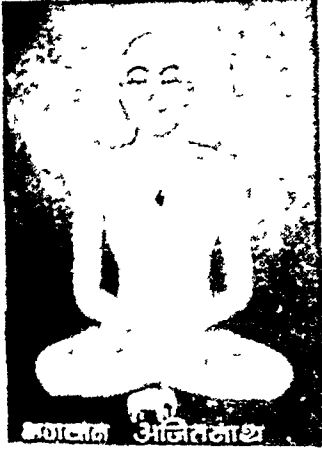
श्री अजितनाथ चरित्र

इस जबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय है, उस विजय में सुशीमा नामक नगरी है। वहा विमलभवाहन राजा राज्य करता था। वह धर्मनिष्ठ और प्रजापालक था।

सार-असार को जानने वाला राजा तत्वज्ञ था। विवेकी था। एक बार वह बैठा हुआ विचार ने लगा- यह ससार असार है। संसार परिवर्तनशील है, अतः संसार के पदार्थ भी नश्वर है। लक्ष्मी भी चंचल है। मानव शरीर भी समय आने पर नष्ट हो जाता है। जीवन भी अस्थिर है।

'ससार की अस्थिरता मे मानव स्थिर रहना चाहता है। वह अपने अस्तित्व को अमिट रखना चाहता है। लेकिन यह असंभव है।'

'मानव लक्ष्मी का, पुत्र परिवार का विस्तार करता है। फिर उसकी आसक्ति मे जीवन लीला समाप्त करता है। मोह माया मे अमूल्य जीवन गंवा देता है।'

'मकडी जाल का निर्माण करती है। दूसरों को फंसाने के लिए वह जाल बनाती है किन्तु वह स्वयं ही उसमे फस जाती है और मर जाती है। वैसा ही मानव का जीवन है। वह भी संसार मे मायाजाल फैलाता है फिर उसी मे समाप्त हो जाता है।'

संसार का संबंध पेड पर बैठे पक्षी जैसा है। जैसे शाम होते ही पेड पर पक्षी इकट्ठे हो जाते है। प्रातःकाल होते ही वे सब विभिन्न दिशाओ मे चले जाते है वैसे ही माता-पिता भाई-बहन पुत्र आदि [illegible] है। वे भी आयु समाप्त होने पर विविध गतियो मे चले जाते है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है अतः धर्म की आराधना कर लेनी चाहिए। राजा इस प्रकार शुभ चिन्तन कर रहा था इतने मे [illegible] आचार्य महाराज पधारे।

आचार्य भगवान के आगमन की सूचना मिलने पर उसे अपार आनंद हुआ। वह उनके दर्शन एवं वाणी श्रवण करने के लिए गया। आचार्य भगवान की पवित्र वाणी से उसकी वैराग्य भावना में वृद्धि हुई। दीक्षा ग्रहण करने की भावना भी प्रकट हुई। संयम की तैयारी के लिए वह नगर मे गया। पुत्र को राज्य सिंहासन पर स्थापित किया। तत्पश्चात् राजा ने अरिंदम आचार्य जी के पास दीक्षा ग्रहण की। वे पंचमहाव्रत, पांच ईर्यासमिति एवं तीन गुप्ति का मन वचन काया से परिपालन करने लगे। अरिहंत प्रभु का ध्यान और विविध प्रकार की तपस्याएं करने लगे। जीवन की अंतिम वेला मे उन्होंने अनशन किया और समाधिमरण को प्राप्त हुए। वहां से वे विजय नामक अनुत्तर विमान में देव बने।

इस जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र मे विनिता नामक नगरी है। वहां इक्ष्वाकु वंश का जितशत्रु नामक राजा था। विजया नामक उसे महारानी थी। विमल वाहन का जीव विजय नामक अनुत्तर विमान से च्यवित होकर वैशाख सुदि-त्रयोदशी के दिन रोहिणी नक्षत्र मे चंद्र के योग में विजया के गर्भ मे पैदा हुआ।

माघ शुक्ला अष्टमी के दिन रोहिणी नक्षत्र एवं वृषभ राशि के चंद्र योग मे रानी ने प्रभु को जन्म दिया। प्रभु की जांघ में हस्ति का लंछन था। प्रभु जब गर्भ में थे। उस समय एक बार जुआ खेलते हुए राजा प्रभु की माता को जीत नही पाया। प्रभु का यह प्रभाव है यह सोचकर उसने जन्म होने पर उनका अजित नाम रखा। प्रभु जब युवावस्था को प्राप्त हुए उनका सैकड़ों कन्याओं के साथ पिता ने विवाह किया। साढ़े चार सौ धनुष प्रमाण उनकी काया थी। वे स्वर्ण वर्ण के थे।

त्रेपन लाख पूर्व वर्ष तक प्रभु ने राज्य का पालन किया। अठारह लाख पूर्व की जब प्रभुकी आयु थी, उस समय पिता जितशत्रु ने उन्हें राजसिहासन पर स्थापित किया। पिता ने दीक्षा ग्रहण की। प्रभु ने अनासक्त भाव से, न्याय नीति से राज्य का संचालन किया।

दीक्षा ग्रहण

त्रेपन लाख पूर्व वर्ष संसार में व्यतीत करने के पश्चात् प्रभु ने माघ सुदि-९ के दिन रोहिणी नक्षत्र में चंद्रयोग होने पर सुप्रभा पालखी में बैठकर नगर बाहर पधारे। वहां सहस्राम नाम का अतिविशाल रमणीय वन था। उसमें सप्तछद नामक एक हजार राजाओ के साथ छट्ठ की तपस्या कर प्रभु ने दीक्षा स्वीकार की। दूसरे दिन ब्रह्मदत्त राजा के घर अजितनाथ प्रभु ने पारणा किया।

तत्पश्चात् प्रभु ने छ अस्थ पर्याय में बारह वर्ष तक घोर साधना की। अनेक प्रकार के परिषह सहन किए। अनेक प्रकार के अभिग्रह एवं तपस्याएं की। जंगलों में, श्मशानों मे निर्जन स्थानो में प्रभु निरंतर आत्मध्यान करते थे। वन नगर एवं ग्राम आदि में विहार करते हुए प्रभु सहस्राम्र वन मे सप्तछद वृक्ष के नीचे काउसग्ग ध्यान मे खड़े रहे। उस समय पोष शुक्ला एकादशी का दिन था। ध्यानमग्न प्रभु ने चार धाती कर्मो का क्षय कर रोहिणी नक्षत्र में चंद्र के योग में इस दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय प्रभु

ने छठ्ठ (वेला) तप किया था। प्रभु को सिंहसेन आदि ९४ गणधर हुए। दो कोश और चौदह सौ धनुष उंचा चैत्यवृक्ष था। प्रभु के शासन मे आठ हाथवाला, चार मुखवाला, श्याम वर्ण और हाथी के वाहन वाला महायक्ष नामक यक्ष था। उसके दाएं चार हाथ में क्रम से पाश, माला और मुद्गर थे। चोथा वरद हस्त था। वाएं चार हाथ मे क्रम से शक्ति अंकुश, वीजपुर था चोथे में अभयदान मुद्रा थी।

अजितबेला नामक शासनदेवी थी। उसके चार हाथ थे। दाएं दो हाथों मे एक में पाश और दूसरा वरदान युक्त था। वाएं दो हाथों में एक में बीजपुर दूसरे मे अंकुश था। वर्ण स्वर्णमय था। प्रभु का परिवार निम्नप्रकार से था। एक लाख साधु, तीन लाख और तीस हजार साध्वियां, सात सौ चौदह पूर्वी, वारह हजार चार सौ पचास मन-पर्यवज्ञानी, नव हजार चार सौ अवधिज्ञानी, मतांतर से वीस हजार, वावीस हजार केवलज्ञानी, वारह हजार चार सौ वादी, वीस हजार चार सौ वैक्रिय लब्धिधारी, दो लाख अठ्ठानवे हजार श्रावक और पांच लाख पैंतालीस हजार श्राविकाएं थी।

दीक्षा के दिन से एक लाख पूर्व मे एक पूर्वांग वर्ष पूर्ण हुए। तब चैत्र मास की शुक्ल पंचमी के दिन के पूर्व भाग में मृगशीर्ष नक्षत्र जब चंद्र का योग था। उस समय श्री अजितनाथ भगवान समेत शिखर गिरि पर एक हजार मुनि के साथ मोक्ष पधारे। कुमार अवस्था मे प्रभु अठारह लाख पूर्व रहे। राज्य अवस्था में एक पूर्वांग कम त्रेपन लाख पूर्व व्यतीत किए। और चारित्र पर्याय मे एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व वर्ष तक रहे। इस प्रकार अजितनाथ प्रभु की सपूर्ण आयु वहत्तर लाख पूर्व की थी। श्री आदिनाथ प्रभु के निर्वाण से पचास लाख करोड सागरोपम के पश्चात् अजितनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ।

मोहरूपी अंधकार का नाश करने वाले, अनत पदार्थों की समूह की स्थिति को प्रकट करने वाले और केवलज्ञान की ज्योति से असख्यात द्वीप-समुद्रों के सूर्यों की कांति निस्तेज हो गई है वे अजितनाथ प्रभु हमारे पापो का जड से नाश करे।

श्री अजितनाथ स्तवन

(तर्ज :- शांति जिनेश्वर साचो साहिब)

तू मेरे मन में तू मेरे दिल में,

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अनन्त गुणी अनन्त बली तुम,
आतम रूप न आवे अकल में... ॥तू मेरे ॥३ ॥

जब आवे चिदरूप अकल मे,
वो भी होवे तब तुमरी शकल में... ॥तू मेरे ॥४ ॥

निर्मल शशधर तेजे दिनकर
अधिक-अधिक जिम मेरू अंचल मे... ॥तू मेरे ॥५ ॥

शांत वदन प्रभु तुम दर्शन से,
मोद होवे शशी निकसे बादल में... ॥तू मेरे ॥६ ॥

तुम मूर्ति मुझ मन कैमरा,
फोटो राम स्थिर एक विपल में... ॥तू मेरे ॥७ ॥

आतम लक्ष्मी निज गुण पावे,
वल्लभ नर-भव हर्ष सफल में... ॥तू मेरे ॥८ ॥

बगवाडा मंडन प्रभु नामे,
आनंद मंगल संघ अखिल में... ॥तू मेरे ॥९ ॥

स्तुति

अर्हन्तमजितं विश्व—कमलाकर—भास्करम् ।
अम्लान-केवलादर्श-सङ्क्रान्त-जगतं स्तुवे ॥

प्रार्थना

जितशत्रु नंदन तुमने सब आंतर शत्रु जीत लिए
ओ विजयासुत ! विश्व विजेता ! त्रिभुवन तुम से प्रीत किये ।
अजितनाथ अविनाशी जिनवर ! वास्तव में तुम अजित हुए
सृष्टि के सब जीव तुम्हारे श्रीचरणों में नमित हुए ॥

परिचय

१ माता का नाम	विजयारानी
२ पिता का नाम	जितशत्रु राजा
३ च्यवन कल्याणक	वैशाख सुद १३/अयोध्या
४ जन्म कल्याणक	माघ शुक्ल, ८/अयोध्या
५ दीक्षा कल्याणक	माघ शुक्ला ९/अयोध्या
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष शुक्ला ११/अयोध्या
७ निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ५/सम्मेत शिखर
८ गणधर	सख्या 95 १०२ प्रमुख सिहसेन
९ साधु	सख्या १ लाख प्रमुख सिंहसेन
१० साध्वी	सख्या ३ लाख ३०हजार प्रमुख फाल्गुनी
११ श्रावक	सख्या २ लाख ९८ हजार प्रमुख सगर चक्रवर्ती
१२ श्राविका	सख्या ५ लाख ४५ हजार प्रमुख
१३ ज्ञानवृक्ष	सप्तपर्ण
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	महायक्ष
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	अजितबला
१६ आयुष्य	७२ लाख पूर्व
१७ लंछन (चिह्न-Mark)	हाथी
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	विजय (अनुत्तर विमान)
१९ तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन	विमलवाहन के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थावस्था	१२ वर्ष

॥ श्री संभवनाथ ॥

॥ श्री संभवनाथ ॥

श्री संभवनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन–सावत्थी नयरी धणी, श्री संभवनाथ,
जितारि, नृप नंदनो, चलवे शिव साथ ॥१ ॥

सेनानंदन चंदने, पूजो नव अंगे, चौराशी
धनुषनु देहमान, प्रणमो मन रंगे ॥२ ॥

सात लाख पूर्वतणुं अे, जिनवर उत्तम आय,
तुरग लंछन पद पद्मने, नमतां शिव सुख थाय ॥३ ॥

श्री संभवनाथ चरित्र

धातकी खंड के ऐरावत क्षेत्र में क्षेमपुरी नामक नगरी है वहां विमल वाहन नामक राजा राज्य करता था।

वह दयालु, प्रजा प्रेमी और न्यायी राजा था। एक बार उसके राज्य में दुष्काल पड़ा।

प्रजा भूख से मरने लगी। लोग अन्न के लिए भटकने लगे। भोजन के अभाव मे लोग कीडो मकोडो की तरह मरने लगे। दयालु राजा का हृदय द्रवित हो गया। प्रजा के कष्ट को वह देख नही पाया।

प्रजा एवं साधर्मियों की सेवा के लिए उसने राज्य के अन्न भंडार खोल दिए। सभी की नि:शुल्क सेवा होने लगी।

गृहस्थो और श्रमणो की भी उदार भावना से भक्ति की। अत्यन्त निर्मल उदार भावना द्वारा श्री संघ और मुनियो की सेवा से उन्होने तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

प्रजा की सेवा करते हुए जब राजा वृद्ध हो गया, तब उसने दीक्षा ग्रहण की। विविध प्रकार की तपस्या करके कर्मो का क्षय किया। समाधि मरण प्राप्त कर वह आनत नामक देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ।

देवभव से भटक कर वह इस जबूद्वीप के भरत क्षेत्र मे श्रावस्ती नामक नगरी [illegible] जितारी नामक राजा था। सेना नामक उसकी महारानी थी।

[illegible] मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन मृगशिर्ष नक्षत्र मे [illegible] सेना रानी के गर्भ मे उत्पन्न हुआ।

श्री संभवनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—सावत्थी नयरी धणी, श्री संभवनाथ,
जितारि, नृप नंदनो, चलवे शिव साथ ॥१ ॥
सेनानंदन चंदने, पूजो नव अंगे, चौराशी
धनुषनु देहमान, प्रणमो मन रंगे ॥२ ॥
सात लाख पूर्वतणुं अे, जिनवर उत्तम आय,
तुरग लंछन पद पद्मने, नमतां शिव सुख थाय ॥३ ॥

श्री संभवनाथ चरित्र

धातकी खड के ऐरावत क्षेत्र में क्षेमपुरी नामक नगरी है वहां विमल वाहन नामक राजा राज्य करता था।

वह दयालु, प्रजा प्रेमी और न्यायी राजा था। एक बार उसके राज्य में दुष्काल पड़ा।

प्रजा भूख से मरने लगी। लोग अन्न के लिए भटकने लगे। भोजन के अभाव में लोग कीड़ो मकोडो की तरह मरने लगे। दयालु राजा का हृदय द्रवित हो गया। प्रजा के कष्ट को वह देख नही पाया।

प्रजा एवं साधर्मियों की सेवा के लिए उसने राज्य के अन्न भंडार खोल दिए। सभी की निःशुल्क सेवा होने लगी।

गृहस्थो और श्रमणों की भी उदार भावना से भक्ति की। अत्यन्त निर्मल उदार भावना द्वारा श्री सघ और मुनियों की सेवा से उन्होने तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

प्रजा की सेवा करते हुए जब राजा वृद्ध हो गया, तब उसने दीक्षा ग्रहण की। विविध प्रकार की तपस्या करके कर्मो का क्षय किया। समाधि मरण प्राप्त कर वह आनत नामक देवलोक में देव रूप मे उत्पन्न हुआ।

देवभव से भटक कर वह इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र मे श्रावस्ती नामक नगरी है उस नगरी का जितारी नामक राजा था। सेना नामक उसकी महारानी थी।

फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन मृगशिर्ष नक्षत्र में जव चन्द्र का योग था, तव वह देवभव से च्यव कर सेना रानी के गर्भ मे उत्पन्न हुआ।

प्रभु अश्व लंछन सहित और स्वर्णमय कांति वाले थे। प्रभु जब गर्भ में आये, उस समय राज्य के अन्नभंडार खाली थे, अनाज का अभाव हो गया था, वह अभाव दूर हो गया। असंभव कार्य भी संभव हो गए। अतः प्रभु का जब जन्म हुआ, तब उनका नाम संभव कुमार रखा गया।

संभवकुमार अत्यंत तेजस्वी और प्रतापी थे। युवावस्था प्रप्त होने पर राजा ने अनेक सुंदर कन्याओं के साथ उनका विवाह किया।

तत्पश्चात् पिता ने उन्हें राज्य सिहासन पर स्थापित किया एवं दीक्षा स्वीकार कर आत्मसाधना मे लग गये। प्रभु की काया चार सौ धनुप की थी। चार पूर्वांग अधिक चवालीस लाख पूर्व वर्ष तक राज्य का परिपालन किया।

अपार धन वैभव के बीच भी प्रभु निर्लिप्त रहे। एक वर्ष तक प्रभु ने वर्षीदान दिया।

तत्पश्चात् मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन मृगशीर्ष नक्षत्र मे जब चंद्र का योग था, प्रभु सिद्धार्थ नाम की पालकी मे विराजित होकर सहस्राम्र वन में गए। बेले की तपस्या करके दिन के उत्तरार्ध में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। दीक्षा लेते ही प्रभु को मनः पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ।

दीक्षा के दूसरे दिन सुरेन्द्रदत्त नामक राजा के यहां खीर से पारणा किया। उन्होने चौदह वर्ष तक उग्र साधना की। विचरण करते हुए प्रभु पुनः सहस्राम्र वन मे पधारे। वहां शाल नामक वृक्ष के नीचे काउसग्ग ध्यान में रहे। तब कार्तिक मास की कृष्ण पंचमी के दिन मृगशीर्ष नक्षत्र मे चन्द्र का योग था। उन्होंने बेले की तपस्या की थी।

उस समय दिन के पूर्वार्ध में भगवान ने केवलज्ञान पाया।

प्रभु के श्री चारु स्वामी आदि एक सौ दो गणधर हुए। चैत्यवृक्ष दो कोश और आठ धनु का था। भगवान का शासनरक्षक देव त्रिमुख यक्ष था। वह तीन सुख, तीन क्षेत्र और छः हाथ वाला था। वह श्याम वर्ण वाला और मयूर वाहन युक्त था।

उनकी शासनदेवी चार भुजावाली दूरितारी देवी थी। वह गौर वर्णवाली एवं बकरा वाहन युक्त थी।

भगवान का परिवार निम्न प्रकार से था—दो लाख साधु, तीन लाख छत्तीस हजार साध्वियां, इक्कीस सौ पचास, चौदह पूर्वी, नौ हजार छः सौ ~~वैक्रिय लब्धि वाले~~ अवधि ज्ञानी, बारह हजार एक सौ पचास मन: पर्यवज्ञानी, पन्द्रह हजार केवल ज्ञानी, अठारह सौ वैक्रिय लब्धि वाले, बारह हजार वाद लब्धि वाले, दो लाख तिरानवे हजार श्रावक एवं छः लाख छत्तीस हजार श्राविकाएं थी।

दीक्षा पर्याय में चार पूर्वांग कम एक लाख पूर्व वर्ष पूर्ण करने पर चैत्र मास की शुक्ल पचमी के

दिन मृगशीर्ष नक्षत्र में चन्द्र के योग में प्रभु को एक मास के उपवास थे। काउसग्ग ध्यान में खड़े हुए उन्होंने अनशन किया। तब एक हजार मुनियों के साथ समेतशिखर पर भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया।

कुमार अवस्था मे प्रभु पन्द्रह लाख पूर्व वर्ष रहे। राज्यावस्था में चवालीस लाख पूर्व वर्ष तक रहे। चारित्र पर्याय में चार पूर्वांग कम एक लाख पूर्व तक रहे। कुल मिलाकर संभवनाथ भगवान की आयु साठ लाख पूर्व की थी।

श्री संभव नाथ स्तवन

(तर्ज .- तुम को लाखों प्रणाम)

संभव जिननाथ जी सुखकारी रे
करे दर्शन धन्य नर-नारी संभव...
नृप जितारी कुल चंदा रे
माता सेना राणी ना नंदा रे
सेवे सुर नर मुनिपति वृंदा... ॥संभव ॥१ ॥

प्रभु चोत्रीस अतिशय धारी रे
गुण पांत्रिस वाणी सारी रे
दिए दोष अठार निवारी... ॥संभव ॥२ ॥

प्रभु रागी नही ने हूं रागी रे
मारी पाछल माया लागी रे
तुम दर्शन थी मति जागी... ॥संभव ॥३ ॥

नरभव सामग्री पामी रे
पाम्यो दर्शन पून्ये स्वामी रे
करू विनती प्रभु शिरनामी... ॥संभव ॥४ ॥

हवे रागी थयो तुम केरो रे
हुं छुं तुम चरणानो चेरो रे
मारो टालो प्रभु भव फेरो... ॥संभव ॥५ ॥

तमे परमातम पद सीधुं रे
निज आतम कारज कीधु रे
चित्त मे पण तेम छे दीधुं... ॥संभव ॥६ ॥

प्रभु संभव नाथजी मलिया रे
दुःख रोग शोग सहु टलिया रे
मारा मनना मनोरथ फलिया... ॥संभव ॥७ ॥

ओगणीसो इकोतेर सारा रे
सुदि वैशाख छट्ठ गुरूवारा रे
थयो करचलिया जयकारा... ॥संभव ॥८ ॥

प्रभु दर्शन आनंदकारी रे
आतम लक्ष्मी उर धारी रे
मांगे हरषे वल्लभ भवपारी... ॥संभव ॥९ ॥

श्री संभवनाथ भगवंत

स्तुति

विश्व-भव्य-जनाराम-कुल्या-तुल्या-जयन्ति ताः ।
देशना—समये—वाचः, श्री संभव—जगत्पतेः ॥

प्रार्थना

सेनानदन सुखदायक ओ संभव जिनवर वंदन हो,
कर्मताप से दग्ध हुए—जीवों के लिए तुम चंदन हो ।
राजा जितारी के कुल दीपक, शुद्ध बुद्ध और सिद्ध हुए
त्रिभुवनतिलक हे तीर्थंकर ! सारे जग में प्रसिद्ध हुए ॥

परिचय

१ माता का नाम	सेना रानी
२ पिता का नाम	जितारी राजा
३ च्यवन कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला ८/श्रावस्ती
४ जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला १४/श्रावस्ती
५ दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला १५/श्रावस्ती
६ केवलज्ञान कल्याणक	कार्तिक कृष्णा ५/श्रावस्ती
७ निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ५/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या १०२ प्रमुख चारु
९ साधु	सख्या २ लाख प्रमुख चारु
१० साध्वी	सख्या ३ लाख ३६ हजार प्रमुखा श्यामा
११ श्रावक	सख्या २ लाख ९३ हजार
१२ श्राविका	सख्या ६ लाख ३६ हजार प्रमुख
१३ ज्ञानवृक्ष	शाल
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	त्रिमुख
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	दुरितारी
१६ आयुष्य	६० लाख पूर्व
१७ लंछन (चिह्न-Mark)	अश्व
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	ग्रैवेयक
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपाजन	विपुलबल के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१४ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	५९ लाख पूर्व एव ४ पूर्वांग
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दिक्षा दिन की शिविका का नाम	सिद्धार्था
२५ नाम-अर्थ	जन्म होने पर धरती पर अनाज काफी बढने लगा।

અરિહંતપદ
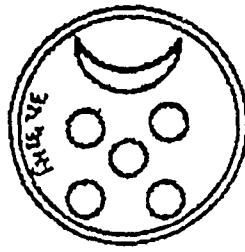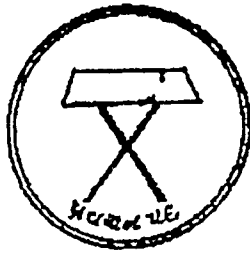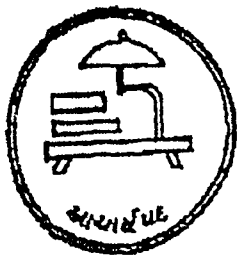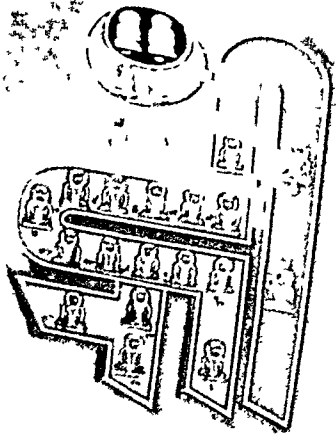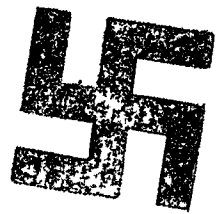
॥ श्री अभिनंदनस्वामी ॥
॥ श्री अभिनंदनस्वामी ॥
ANEKATA MATAMBHODHI SAMMULASAN CHANDRAMAHA
DADHYAD MAND MANANADM BHAGAVANA BHINANDANAH
अनेकान्तमताम्भोधि-समुल्लासनचन्द्रमा: ।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दन: ॥४॥

श्री अभिनंदन जिन स्तवन
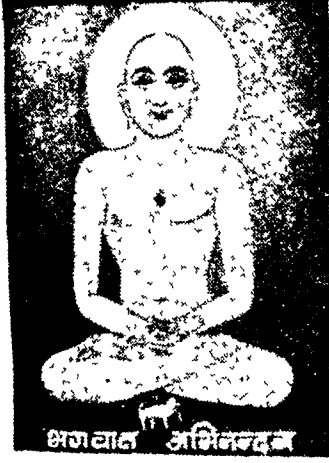
चैत्यवंदन—नदन संवर, रायनो, चोथा अभिनदन, कपि
लंछन वंदन करो, भव दुःख निकंदन ॥१ ॥

सिद्धारथा जस मावडी, सिद्धारथ जिन राया,
साडा-त्रणशे धनुषमान, सुंदर जस काय ॥२ ॥

विनीता-वासी वंदीये अे, आयु लख पचास,
पुरव तस पद पद्मने, नमतां शिवपुर वास ॥३ ॥

श्री अभिनंदन स्वामी चरित्र

इस जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में मंगलावती नामक विजय है। जिसमे रत्न सचया नामक नगरी है। उस नगरी का महाबल नामक राजा था। वह न्याय नीति से प्रजा का पालन करता था।

एक दिन चिंतन करते हुए उसे जीवन एवं जगत नश्वर दिखाई दिया। फलतः मन में वैराग्य हुआ। श्री विमल सूरि जी म. के चरणों में उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

ग्राम, नगरो एवं जंगलों में परिभ्रमण करते हुए वे साधना करने लगे। कठिन तपस्या करते हुए उनका शरीर भी सूख गया। वीश स्थानक तप की आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया।

समाधि मरण से मर कर विजय विमान में वे महर्द्रिक देव बने।

इस जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नामक नगरी है। संवर नामक उसका राजा था। सिद्धार्था नामक उसकी रानी थी। महाबल राजा का जीव देव विमान से च्यवित होकर सिद्धार्था रानी की कुक्षी में उत्पन्न हुआ। उस समय वैशाख शुक्ला चतुर्थी को अभिजित् नक्षत्र में चंद्र का योग था।

परिपूर्ण समय होने पर माघ शुक्ला द्वितीया के दिन अभिजित नक्षत्र में चन्द्र का योग होने पर सिद्धार्था माता ने प्रभु को जन्म दिया। प्रभु स्वर्ण कान्तिवाले एव बंदर लंछन युक्त थे।

वे जब गर्भ में थे तब राज परिवार, नगर जन एवं राज्य मे चारो ओर आनन्द हुआ था। अतः माता पिता ने उनका नाम अभिनंदन रखा।

इन्द्र द्वारा संचारित अमृत का पान करते हुए प्रभु धीरे-धीरे बढने लगे। देवो के साथ खेलते हुए उनका वचपन व्यतीत होने लगा।

युवावस्था में अभिनंदन कुमार का अनेक सुन्दर राज-पुत्रियों के साथ विवाह किया। अपार वैभव और सुन्दर रमणियों के बीच भी प्रभु निर्लिप्त रहे।

पिता संवर राजा ने प्रभु को राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। पिता ने उन्हे राज्य सिंहासन पर बिराजमान किया। तत्पश्चात् राजा संवर ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

प्रभु समुचित रूप से प्रजा का पालन करने लगे। आठ पूर्वांग सह साढे छत्तीस लाख पूर्व तक प्रभु ने राज्य का पालन किया।

तत्पश्चात् प्रभु की दीक्षा लेने की भावना हुई। माघ शुक्ला द्वादशी के दिन अभिजित् नक्षत्र मे चन्द्र के योग में दीक्षा लेने के लिये नगर से बाहर निकले। अर्थसिद्धा नाम की पालकी मे बैठकर प्रभु सहस्राम्र वन में पधारे। वहां उन्होंने सभी वस्त्राभूषण उतार दिए। इन्द्र ने उनके कंधे पर देवदूष्य रखा। माघ शुक्ला द्वादशी के दिन के उत्तरार्द्ध में पंचमुष्ठि लोच किया और दीक्षा स्वीकार की। प्रभु ने बेला किया। एक हजार राजाओं ने भी प्रभु के साथ दीक्षा ग्रहण की।

बेले की तपस्या का पारणा प्रभु ने अयोध्या नगरी के राजा इन्द्रदत्त के घर पर खीर से किया।

ग्राम, नगर एवं वनों में अत्यन्त तपस्या की। इस प्रकार अठारह वर्षो तक प्रभु ने मौन रहकर साधना की।

एक बार विहार करते हुए प्रभु सहस्राम्र वन में पधारे। बेले की तपस्या करके वहां रायणवृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे।

पौष मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने वैराग्यमय पावन वाणी का प्रकाश किया।

आत्मा की अशरण अवस्था पर विवेचन करते हुए प्रभु ने कहा—आत्मा अकेला ही जन्मता है मरता है। सुख-दुःख भोगता है।

दुःख के समय माता-पिता, स्वजन-परिजन कोई भी हिस्सा बांटने में असमर्थ है। मौत के मुख मे जाते हुए को भी कोई बचा नही सकते हैं। उन्होंने एक रूपक दिया कि जंगल में हरिणों मे अनेक झुंड रहते थे। एक बार उस जंगल में भयंकर आग लगी। चारों और ज्वालाएं निकलने लगी। हरिणो के सभी झुंड जान बचाने के लिये भाग निकले।

एक हरिणी ने उसी समय एक बच्चे को जन्म दिया। आग की लपटें निकट आने पर वह अत्यंत दुःखी होने लगी। उसकी आंखों में आंसू निकलने लगे। आग से बचने के लिये हरिणी भी भाग खडी हुई। अपनी जान बचाने के लिए हरिणी ने बच्चे को भी छोड़ दिया।

हरिणी का असहाय बच्चा अकेला पडा रहा। दावानल से वह बच नहीं सका। कोई उसे बचा नही सका।

संसार में आत्मा की भी यही दशा है। परिवार जन सब साथ में सुख से रहते है। किन्तु जब रोग, जरा और मृत्यु का दावानल आत्मा को घेरता है तो कोई भी उसे बचा नही सकता।

संसार के प्रत्येक प्राणी की यही स्थिति है। संसार में एक धर्म ही रक्षक है, तारणहार है।

धर्म का आचरण करने वाला दुःख ज्वालाओं से बच जाता है।

प्रभु की वैराग्यमयी वाणी से उसी समय अनेकों नर-नारियो ने दीक्षा स्वीकार की।

वज्रनाभ आदि एक सौ सोलह उनके गणधर हुए।

समवसरण में प्रभु का चैत्यवृक्ष दो कोश और दो सौ धनुष ऊंचा था।

प्रभु का शासन रक्षक देव यक्षेश्वर नामक था। वह श्याम वर्ण वाला और हाथी के वाहन वाला था।

कलिका उनकी शासनदेवी थी। वहभी श्याम वर्ण वाली और कमल के आसन वाली थी।

प्रभु का परिवार इस प्रकार से था—तीन लाख साधु थे। छः लाख तीन हजार साध्वियां थी। पन्द्रह सौ चौदह पूर्वी थे। नौ हजार आठ सौ अवधि ज्ञानी थे। ग्यारह हजार साढे छः सौ मनः पर्यव ज्ञानी थे। चौदह हजार केवल ज्ञानी थे।

ग्यारह हजार वैक्रिय लब्धि वाले एवं ग्यारह हजार वाद लब्धि वाले थे।

दो लाख अठासी हजार श्रावक एवं पांच लाख सत्ताइस हजार श्राविकाएं थी।

केवली पर्याय में अठारह वर्ष और आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व पूर्ण होने पर प्रभु एक हजार मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे। वहां वैशाख मास की शुक्ला अष्टमी के दिन संध्या समय जब पुष्य नक्षत्र में चन्द्र का योग था तब एक मास का अनशन कर प्रतिमा ध्यान में खड़े प्रभु ने परम पद प्राप्त किया।

साढे बारह लाख वर्ष प्रभु कुमार अवस्था में रहे। आठ पूर्वांग सहित साढे छत्तीस लाख पूर्व राज्यावस्था मे रहे। आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व दीक्षापर्याय में रहे। इस प्रकार श्री अभिनंदन प्रभु की पचास लाख पूर्व की आयु थी।

स्तुति

अनेकान्त-मताम्भोधि-समुल्लासन-चन्द्रमाः ।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दनः ॥

प्रार्थना

अभिनंदन स्वामी को वंदन, करते है शुद्ध भाव से,
आधि व्याधि और उपाधि मिटती प्रभु के प्रभाव से,
संवर राजा के जाये सिद्धार्था के सुत सुखकारी
दर्शन-पूजन अभिनंदन का पापविनाशी दुःखहारी ॥

श्री अभिनन्दन स्वामी स्तवन

(राग· मालकोश)

नवण करो जिन चंद आनन्दभर
पूजन करो अभिनन्दन आनन्द भर ।

पूजन अंचली ॥

संवर नंदन वंदन पूजन,
काटे कलिमल फंद ॥आनन्द ॥१ ॥

जगदभिनन्दन जगहितकारी,
भव दुरित निकंद ॥आनन्द ॥२ ॥

लोकालोक प्रकाशक जिनवर,
जिम गगने रविचन्द ॥आनन्द ॥३ ॥

वांछित पूरण अन्तर्यामी,
चिदधन आनन्द कंद ॥आनन्द ॥४ ॥

आतम लक्ष्मी वीर वचन से,
वल्लभ हर्ष अमंद ॥आनन्द ॥५ ॥

परिचय

१ माता का नाम	सिद्धार्था रानी
२ पिता का नाम	सवर राजा
३ च्यवन कल्याणक	वैशाख शुक्ला ४/अयोध्या
४ जन्म कल्याणक	माघ शुक्ला २/अयोध्या
५ दीक्षा कल्याणक	माघ शुक्ला १२/अयोध्या
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष शुक्ला १४/अयोध्या
७ निर्वाण कल्याणक	
८ गणधर	सख्या ११६ प्रमुख वज्रनाभ
९ साधु	सख्या ३ लाख प्रमुख वज्रनाभ
१० साध्वी	सख्या ६ लाख ३० हजार प्रमुख अजिता
११ श्रावक	सख्या २ लाख ८८ हजार
१२ श्राविका	सख्या ५ लाख २७ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	प्रियाल
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	यक्षेश
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	काली
१६ आयुष्य	५० लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न)	बंदर
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	जयंत (अनुत्तर विमान)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	महाबल के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१८ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	४९ लाख पूर्व एव ८ पूर्वांग
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	अर्थसिद्धा
२५ नाम-अर्थ	गर्भरूप में भी हमेशा इन्द्र ने जिनका अभिनदन किया।
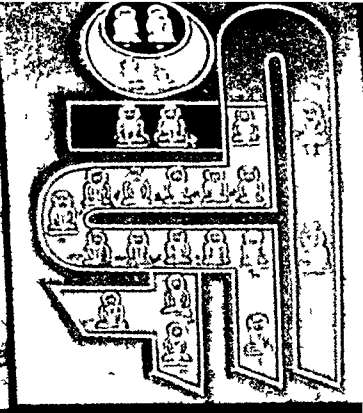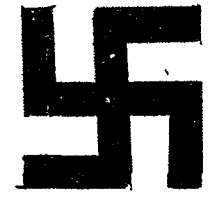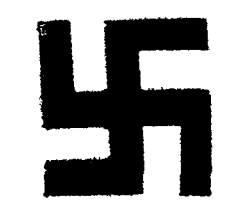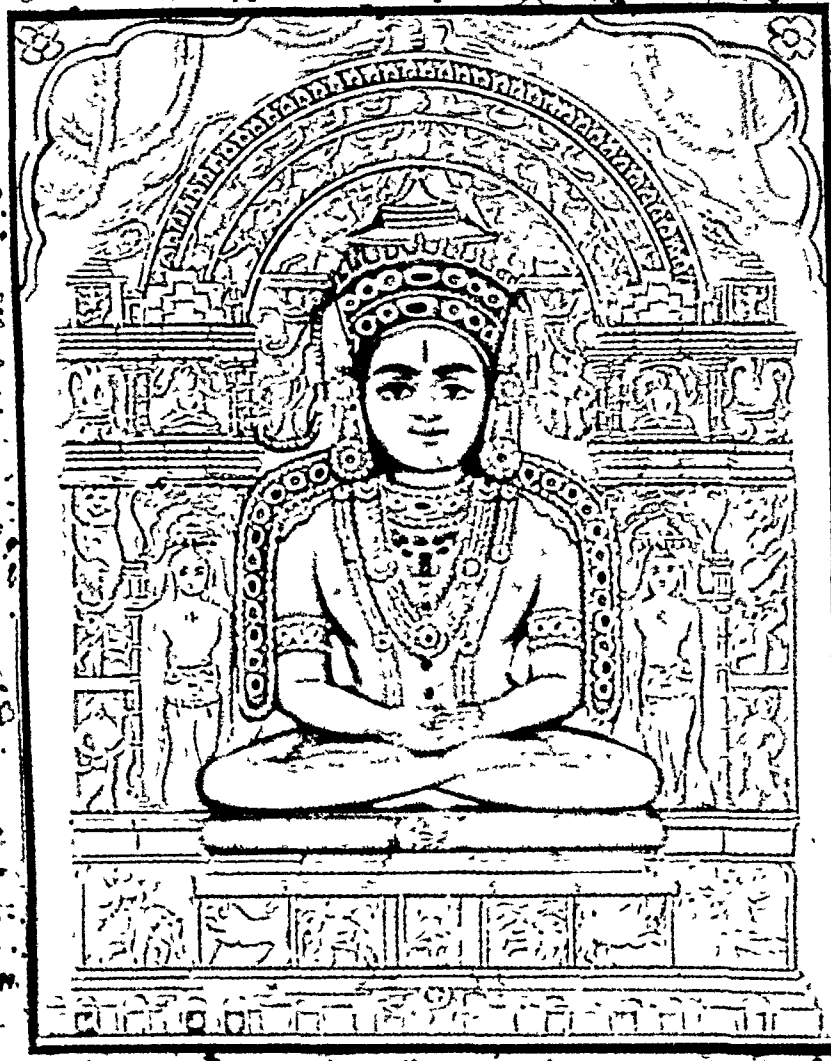
॥ श्री सुमतिनाथ ॥

DYUSATKIRIT SHANAGRO TTEJITANDHRI NAKHAVALIHI
BHAGVAN SUMATI SWAMI TANOTVBHI MATANIVAHA

द्युसत्किरीटशाणाग्रो, त्तेजिताङ्घ्रिनखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ॥५॥

श्री सुमतिनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—सुमतिनाथ सुहंकरु, कोसल्ला जस नयरी,
मेघराय मंगला तणो, नंदन जितवयरी ॥१ ॥

कौच लंछन जिन राजियो, त्रणशें धनुषनी देह,
चालीस लाख पुरवतणुं, आयु अति गुणगेह ॥२ ॥

सुमति गुणे करी जे भर्या अे, तर्या संसार अगाध,
तस पद पद्म सेवा थकी, लहो सुख अव्याबाध ॥३ ॥
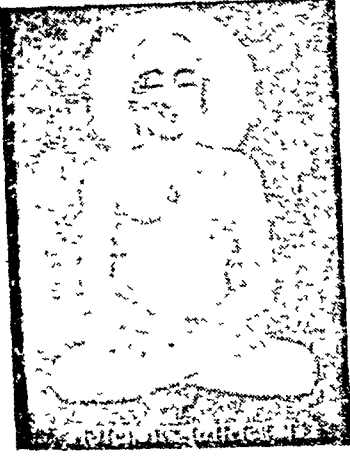
श्री सुमतिनाथ चरित्र

इस जबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम की विजय है। वहां शंखपुर नामक नगरी में जयसेन नामक राजा था। सुदर्शना नामक उसकी पट्टरानी थी।

उन्हे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। जिसका नाम रखा पुरुष सिह। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, वह क्रीडा करने के लिए उद्यान मे गया।

वहां उसे विजयनंदन सूरि का समागम हुआ। उंनकी पवित्र वाणी से उसे वैराग्य हुआ। उसने उनके पास दीक्षा ग्रहण की। उग्र तपस्या की। मरकर वह देव बना।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में अयोध्या नामक नगरी में मेघ नामक राजा था। उसे मंगला नामक रानी थी।

देवभव का आयुष्य पूर्ण होने पर पुरुष सिह की आत्मा सावन शुक्ला-दूज के दिन मघा नक्षत्र में चन्द्र के योग मे मंगाला माता के गर्भ में उत्पन्न हुई।

गर्भकाल पूर्ण होने पर वैशाख मास की शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन मघा नक्षत्र में चन्द्र के योग में मंगला माता ने प्रभु को जन्म दिया। प्रभु को क्रोचपक्ष के लंछन वाले एवं स्वर्णमय कांतिवाले थे।

प्रभु जब गर्भ मे थे, तब माता ने उनके दिव्य प्रभाव से राजा की समस्या का समाधान किया। समुचित न्याय किया।

एक आदमी को दो पत्नियां थी। पति की जब मौत हो गई। तो पुत्र एवं धन केलिए दोनों मे झगड़ा हो गया।

एक औरत के पुत्र था। दूसरी को पुत्र नही था। पुत्र रहित स्त्री दूसरी से झगड़ा करने लगी उसने धन

और पुत्र पर अपना दावा किया। उसने पुत्र पर अधिकार जमा लिया। जिससे दोनो में भारी झगडा हो गया।

दोनो स्त्रियां झगडती हुई राजदरबार में पहुंची। दोनो ने राजा से शिकायत की। पहली स्त्री ने कहा यह पुत्र जो आपके सामने खडा है वह मेरा है। यह मेरी सोत है। इसके कोई पुत्र नही था। मैंने इसे पाला है, एवं बड़ा किया है।

हम दोनों मे बडा प्रेम था। दुर्भाग्यवश हमारे पतिदेव का परदेश मे ही स्वर्गवास हो गया है। अब यह पुत्र पर अधिकार कर रही है और झगड़ा करते हुए कहती है कि यह पुत्र तेरा नही है। यह तो मेरा ही लड़का है।

महाराजा आप उचित न्याय कीजिए, पुत्र मुझे दिला दीजिए।

राजा ने दूसरी स्त्री से पूछा—तो उसने भी यही कहा कि यह मेरा पुत्र है। मैंने इसे जन्म दिया है। इसकी बात बिलकुल झूठी है, मै ही इसकी असली मां हूं।

राजा दोनो की बात सुनकर आश्चर्य में गिर गया। बालक अभी छोटा था। बोल भी नही सकता था। उसके लिए दोनों ही समान थी।

दोनो माताओं की आकृति उम्र और वर्ण समान था। बालक का मुख दोनों से मिलता था। न्यायाधीश और मंत्री भी कोई निर्णय नही कर सके।

राजा सोच में पड़ गया। दोनों मे सच कौन है। राजा ने राजसभा समाप्त की। निर्णय कल पर छोड कर अपने महल में गया। भोजन के लिए बैठा। किन्तु राजा उन्हीं विचारो मे मग्न था।

रानी ने राजा के चेहरे को देखकर पूछा—"स्वामिनाथ ! लगता है आज आपके मन में कोई चिता है। भोजन में आपका मन नही है।

राजा ने दोनों औरतों की घटना सुनाई। उसने कहा—आज तक हजारों न्याय मैने किए है। किन्तु यह मामला बडा उलझन भरा है।

रानी ने राजा से कहा—स्त्रियों का न्याय पुरुषों से नही, स्त्रियों से ही हो सकता है। इन दोनों का विवाद मै समाप्त करूंगी।

उलझन भरा केस राजा ने रानी को सौप दिया। दूसरे दिन राजा रानी को लेकर राजसभा में आया। दोनो स्त्रियो को वहां बुलाया गया।

रानी ने क्रम से दोनों को विवाद का कारण पूछा। दोनो ने अपनी वही कहानी सुनाई।

दोनों के मनोभाव जानकर एवं अनुमान लगाकर रानी ने कहा—देखो बहनों ! मेरे गर्भ मे एक

महान पुत्र मेरे गर्भ मे आया है । जन्म के बाद वही तुम्हारे विवाद का निर्णय करेगा । तब तक तुम इंतजार करो और शान्ति से रहो ।

रानी की यह बात सुनकर नकली मां खुश हो गई । उसने रानी की बात स्वीकार कर ली । किन्तु असली माता अत्यंत उदास हो गई । उसने कहा—रानी जी ! मै क्षणमात्र भी पुत्र के बिना रह नही सकती । प्रिय पुत्र को मैं सोत के अधीन नही कर सकती ।

आप तीर्थकर की माता है अतः विवाद का निर्णय आज ही करें ।

रानी ने दोनो के चेहरो के भाव देखे । वात्सल्य भाव को जाना ।

रानी ने निर्णय देते हुए कहा—महाराज ! इनमें जो समय मर्यादा को सहन नही कर रही है । जो क्षणभर भी पुत्र वियोग के लिए तैयार नहीं है, जो अत्यंत विह्वल हो गई है वही असली मां है ।

दूसरी मा झूठी है । नकली है । उसको पुत्र रखने का अधिकार नही है ।

रानी ने अद्‌भुत न्याय किया। सच्ची माता को पुत्र का अधिकार दिलवा दिया। दोनो सौत अपने-अपने घर चली गई ।

गर्भकाल मे मंगला माता को सद्बुद्धि प्राप्त होने के कारण उनका नाम सुमति रखा गया ।

यौवन अवस्था को जब वे प्राप्त हुए। माता-पिता ने विवाह के लिए आग्रह किया । भोग कर्म का उदय जानकर प्रभु ने भी विवाह किया ।

प्रभु की काया तीन सौ धनुष ऊंची थी । बारह पूर्वांग सहित उन्होने उनतीस लाख पूर्व वर्षो तक राज्य का पालन किया ।

तत्पश्चात् उन्होने दीक्षा की तैयारी की । दुःख, दारिद्रय को मिटाने के लिए वर्षीदान देना प्रारंभ किया ।

वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन मघा नक्षत्र मे जब चन्द्र का योग था । तब अभय करा नामक पालकी मे बैठकर प्रभु नगर बाहर पधारे ।

सहस्राम्र वन में पालकी स्थगित की । प्रभु पालकी से नीचे उतरे । एक हजार राजाओ के साथ बिना कोई तप किए उन्होने दीक्षा ग्रहण की ।

दूसरे दिन विजय नामक नगर के राजा पद्म के घर खीर से प्रभु ने पारना किया ।

छद्मस्थावस्था मे प्रभु ने कठोर साधना की । उग्र तपस्या करके कर्मो का विनाश किया ।

प्रभु विहार करते हुए सहस्राम्र वन मे पुनः पधारे । वहा प्रियंगु वृक्ष के नीचे बेले की तपस्या करके प्रतिमा ध्यान मे वे खडे हो गए ।

उस समय चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तब दिन का पूर्वार्ध का समय था।

प्रभु की पहली देशना कर्तव्य का बोध कराने वाली थी। कर्तव्य को जानकर मानव को आत्महित के लिए पुरूषार्थ करना चाहिए।

सच्चा सुख त्याग में है। त्याग के विना मुक्ति नही है। संसार का सुख नश्वर है। मुक्ति का सुख शाश्वत है। नित्य है।

प्रभु की वाणी श्रवण कर अनेक आत्माओ को वैराग्य हुआ। फलस्वरूप अनेकों स्त्री पुरुषो ने दीक्षा स्वीकार की।

श्री चमर स्वामी आदि एक सौ गणधर प्रभु के हुए। तुंबरू नामक यक्ष प्रभु का शासनरक्षक देव था। वह श्वेतवर्ण वाला एवं गरूड़ वाहन वाला था। चार हाथो से युक्त था।

स्वर्णमय कांतिवाली महाकाली उनकी शासन देवी थी। वह चार हाथो वाली और कमल आसन पर बिराजित थी।

उनका चैत्यवृक्ष एक कोशऔर सात सौ धनुष ऊंचा था।

श्री सुमतिनाथ प्रभु का परिवार इस प्रकार से था। तीन लाख एवं बीश हजार उनके साधु थे। पाच लाख तीस हजार साध्वियां थी। दो हजार चार सौ चौदह पूर्वी साधु थे। ग्यारह हजार अवधिज्ञानी थे। दश हजार साढ़े चार सौ मनःपर्यवज्ञानी थे। तेरह हजार केवलज्ञानी थे। अठारह हजार चार सौ वैक्रिय लब्धिवाले, एवं दस हजार साढ़े चार सौ वादलब्धि वाले थे।

दो लाख इक्याशी हजार श्रावक एवं पांच लाख सोलह हजार श्राविकाओं का परिवार था।

केवलीपर्याय में प्रभु बीश पूर्व और बार पूर्वांग कम एक लाख पूर्व तक रहे। जगत पर अनंत उपकार किया।

तत्पश्चात् मोक्षकाल समीप जानकर प्रभु सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे। वहां एक हजार मुनियो के साथ अनशन किया।

एक मास के अंत में चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था। तब एक हजार मुनियों के साथ सुमतिनाथ प्रभु ने परमपद प्राप्त किया।

दस लाख पूर्व तक प्रभु कुमार अवस्था में रहे। बार पूर्वांग सहित उनतीस लाख पूर्व राज्य अवस्था मे रहे। बार पूर्वांग कम एक लाख पूर्व तक दीक्षा पर्याय में रहे। इस प्रकार श्री सुमतिनाथ भगवान की चालीस लाख पूर्व की संपूर्ण आयु थी।

श्रीसुमतिनाथ स्तवन

मेरो मन लागो तुमरे चरण में,
जैसे भृंगगण लागो सुमन में ॥मेरो ॥

सुमति नाथ प्रभु सुमति के दाता,
भीज्यो सुमति रंगन मे ।
सुमति रक्षक कुमति नाशक,
प्रभु शरणा भव वन में ॥१ ॥

मै प्रभु बाल लाल तूं मेरो,
टाल काल मगन में ।
मदन सदन दुःखदायी भंजन,
रंजन आनंद धन मे ॥२ ॥

राग लाग प्रभु नही तुम में,
राग लाग मुझ मन में ।
करम भरम गयो भाग भाग दियो,
मगन प्रभु की लगन मे ॥३ ॥

स्तुति

द्युसत्-किरीट-शाणाग्रोत्तेजिताङ्घ्रि-नखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ॥

प्रार्थना

सुमतिनाथ जिनेश्वर हम पर करके कृपा सन्मति देना
रानी मंगला के बेटे ! हमे, तुम गुण की सम्पत्ति देना ।
मेघ नृपति के हो लाडले, संघ तीर्थ के हो भूषण
तन-मन और जीवन के हमारे, दूर करो सारे दूषण ॥

परिचय

१ माता का नाम	मंगलारानी
२ पिता का नाम	मेघराजा
३ च्यवन कल्याणक	श्रावण शुक्ला २/अयोध्या
४ जन्म कल्याणक	वैशाख शुक्ला ८/अयोध्या
५ दीक्षा कल्याणक	वैशाख शुक्ला ९/अयोध्या
६ केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र शुक्ला ११/अयोध्या
७ निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ९/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या १०० प्रमुख चमरगणी
९ साधु	सख्या ३ लाख २० हजार प्रमुख चमरगणी
१० साध्वी	सख्या ५ लाख ३० हजार प्रमुख काश्यपी
११ श्रावक	सख्या २ लाख ८१ हजार प्रमुख
१२ श्राविका	सख्या ५ लाख १६ हजार प्रमुख
१३ ज्ञानवृक्ष	प्रियगु (रायण)
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	तुबरु
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिक देवी)	महाकाली
१६ आयुष्य	४० लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न)	क्रौंचपक्षी
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	जयत (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	अतिबल के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	२० वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	३९ लाख पूर्व एव १२ पूर्वांग
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	अभयकरा
२५ नाम-अर्थ	न्याय देने मे माता की बुद्धि सतुलित रही।
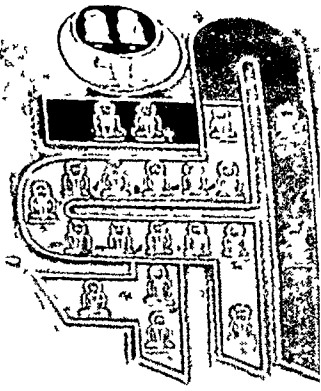
॥ श्री पद्मप्रभस्वामी ॥
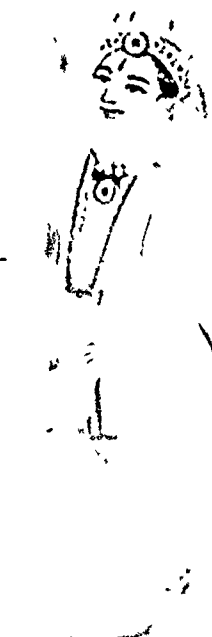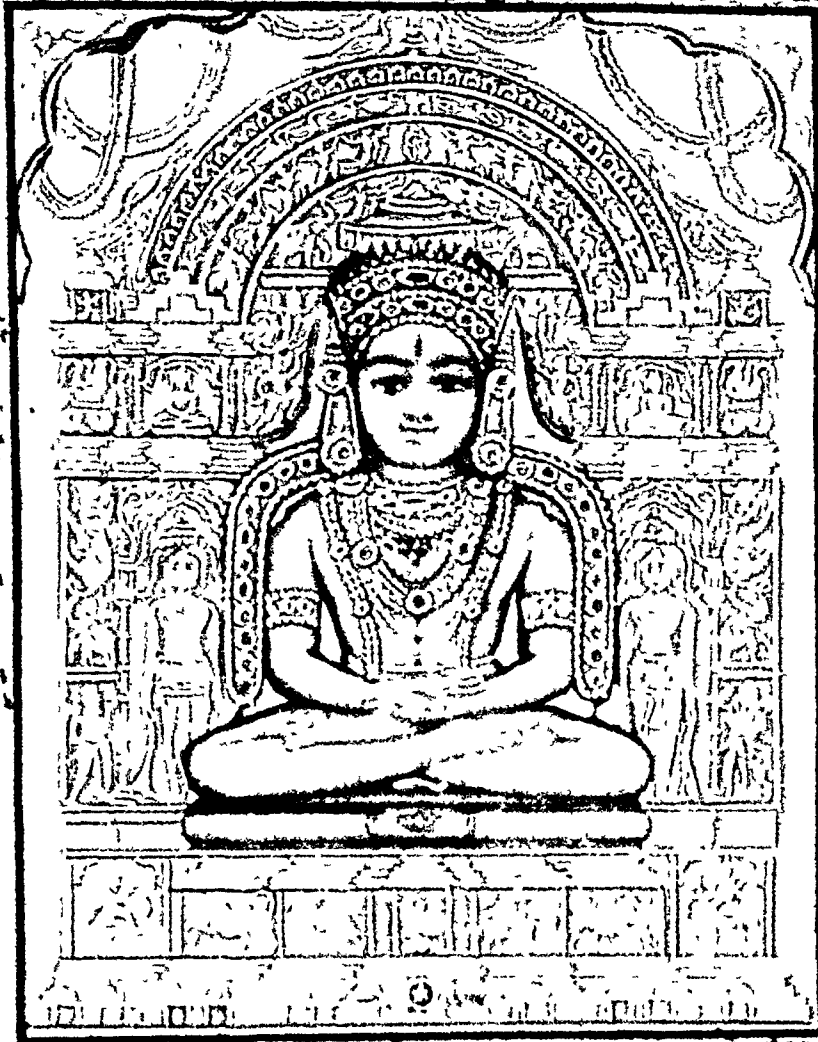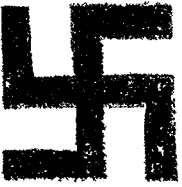
॥ श्री पद्मप्रभस्वामी ॥

PADMAPRABHA PRABHORDEH BHASAH PUSHNANTU VAH SHRIYAM
ANTARANGARI MATHANE KOPATOPADI VARUNAHA

पद्मप्रभप्रभोर्देह-भास: पुष्णान्तु व: श्रियम ।
अन्तरंगारिमथने, कोपाटोपादिवारुणा: ॥६॥

श्री पद्मप्रभ जिन चैत्यवंदन

चैत्यवंदन—कोसंबीपुर राजियो, घर नरपति ताय,
पद्मप्रभ प्रभुतामयी, सुसीमा जस माय ॥१ ॥

त्रीस लाख पुख तणुं, जिन आयु पाली,
धनुष अढीशें देहडी, सवि कर्म ने टाली ॥२ ॥

पद्म लंछन परमेश्वरु अे, जिनपद पदमनी सेव,
पदमविजय कहे कीजिअे, भविजन सहु नितमेव ॥३ ॥
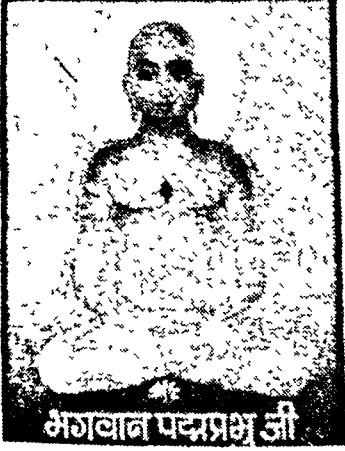
भगवान पद्मप्रभ जी

श्री पद्मप्रभु चरित्र

धावकी खंड नामक पूर्व महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय है। जिसमें सुशीमा नगरी है। वहां अपराजित नामका राजा था।

एक दिन संसार पर विचार करते हुए, संसार की आसरता का उसे बोध हुआ।

परिवर्तनशील संसार मे उसे सब कुछ नश्वर दिखाई दिया।

उसने सोचा संसार भी एक धर्मशाला है। धर्मशाला मे यात्री रूकता नहीं है। वह एक दो दिन मे चला जाता है।

संसार रूपी यात्रा मे मानव मायाजाल मे फंस जाता है। पर पदार्थ को अपना मानने लगता है। पुत्र परिवार के मोह मे वह जीवन व्यर्थ गंवा देता है।

संसार यात्रा मे स्वयं को वह स्थायी मानने लगता है। अनेक प्रकार के पापों से आत्मा दुर्गति की भागी बनती है, एव दुःखों को प्राप्त करती है।

चितन करते हुए राजा को वैराग्य हुआ। उसने श्री पिहिताश्रव सूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। उग्र तपस्या की। संयम एवं तप के प्रभाव से वह नवम ग्रैवेयक मे देव हुआ।

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र मे वत्स नामक देश में कौशांवी नामक श्रेष्ठ नगरी है। वहां धर नामक राजा था। उसे सुसीमा नामक रानी थी।

देवलोक मे उत्पन्न अपराजित राजा की आत्मा ने इकत्तीश सागरोपम का आयु पूर्ण किया। तत्पश्चात् वहां से च्यव करके माघ मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में चन्द्र के योग में सुसीमा माता की कुक्षी में उत्पन्न हुए।

गर्भकाल पूर्ण होने पर कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की बारस के दिन चित्रा नक्षत्र में चन्द्र के योग मे सुसीमा माता ने पद्म लंछन वाले, पद्म की प्रभा वाले प्रभु को जन्म दिया।

प्रभु जब गर्भ में आए तब माता को पद्म की शय्या का दोहद हुआ एवं पद्म कमल जैसी प्रभु कांति थी, तेज था, अतः उनका नाम पद्म प्रभ रखा गया।

धावमाताओं से सेवित प्रभु यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। संसार के प्रति वे अनासक्त थे, किन्तु लोक व्यवहार एवं माता-पिता के आग्रह से उन्होने शादी की।

साढे सात लाख पूर्व के पश्चात् पिता ने प्रभु को राज्य का भार सौप दिया।

वे न्यायनीति से प्रजा का पालन करने लगे।

साढे इक्कीस लाख पूर्व एवं सोलह पूर्वांग सहित उन्होंने राज्य का सुंदर रूप से पालन किया। तत्पश्चात् दीक्षा लेने के लिए वे तैयार हुए।

कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन उत्तरार्ध मे चित्रा नक्षत्र मे जब चन्द्र का योग था, तब निवृत्तिकरा नामक पालकी में बैठकर सहस्त्राम्रवन मे पधारे। बेले की तपस्या करके उन्होने दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ ही एक हजार राजाओ ने भी दीक्षा स्वीकार की।

दूसरे दिन ब्रह्मस्थल नगर मे सोमदेव राजा के घर (परमानत्त) खीर से पारना किया।

छ महिने तक प्रभु ने तपस्या की। ग्राम नगर एवं वन में विचरण करते हुए वे पुनः सहस्त्राम्रवन मे पधारे। बेले की तपस्या करके वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान मे खड़े रहे।

तब चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र मे चन्द्र के योग मे प्रभु को केवलज्ञान हुआ।

प्रथम देशना में प्रभु ने संसार की विषमता बताई। उन्होंने कहा—यह संसार सागर जैसा अपार है। अपार संसार मे जीव अनेक प्रकार के दुःख पाता है।

सागर जल तरंगो से भरा हुआ है। संसार सुख-दुःख की तरंगों से भरा हुआ है। सागर में कच्छप मच्छ एवं मगर आदि प्राणी रहते है। संसार में क्रोध मान माया के मगर रहते है। जिससे जीवात्मा संसार मे निरंतर पीड़ित रहता है।

कभी नरक गति के, कभी तिर्यचगति के दुःख भोगता है। जन्म जरा मृत्यु एवं रोग से ग्रस्त जीवात्मा को संसार मे सुख कहां? संसार में सुख अल्प है, दुःख अपार है।

संसार का सुख मधु लिप्त तलवार जैसा है। तलवार को चाटने वाला जीभ कटने पर दुःख पाता है। वैसे ही संसार के सुख भी दुःखदाई है क्षणिक है।

दुःखो से मुक्त होने का एक ही मार्ग है। आत्मलीनता अन्तर्मुखता से ही परम तत्व की अनुभूति

होती है। परम पद की प्राप्ति का एवं परम सुख पाने का यही रास्ता है।

प्रभु की दिव्यवाणी से अनेकों राजा राजकुमारों श्रेष्ठियों एवं नर-नारियों ने दीक्षा ग्रहण की। कई श्रावक बने।

सुव्रत आदि प्रभु के एक सौ सात गणधर हुए।

पद्मप्रभ प्रभु का शासनरक्षक देव कुसुम नाम का यक्ष था। उसकी काया नीलवर्णमय थी। मृग उसका वाहन था।

अच्युता नामक शासन देवी थी। दोनों ही चार हाथ युक्त थे।

प्रभु का परिवार इस प्रकार से था। तीन लाख तीश हजार साधु, चार लाख बीश हजार साध्वियां, दो हजार चौदह पूर्वधर , दश हजार अवधिज्ञानी, दश हजार तीन सौ मनःपर्यवज्ञानी, बारह हजार केवलज्ञानी, सोलह हजार आठ सौ वैक्रिय लब्धिवाले एवं नव हजार छ सौ वाद लब्धिवाले थे।

दो लाख सडसठ हजार श्रावक एवं पांच लाख पांच हजार श्राविकाएं थी।

केवली पर्याय मे प्रभु ने सोलह पूर्वांग छ मास कम एक लाख पूर्व तक जगत पर अनंत उपकार किया।

तत्पश्चात् प्रभु समेत शिखर पर्वत पर पधारे। एक मास उपवास के साथ अनशन किया।

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी के दिन प्रातःकाल चित्रा नक्षत्र के चन्द्र के योग में आठ सौ तीन साधुओ के साथ मुक्तिपद प्राप्त किया।

कुमारपने मे साढे सात लाख पूर्व रहे। राज्य अवस्था मे सोलह पूर्वांग इक्कीस लाख पूर्व रहे। दीक्षा पर्याय मे सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व रहे। प्रभु की पूर्ण आयु तीश लाख पूर्व की थी।

श्री पद्म प्रभु स्तवन

सिमर श्री पद्म प्रभु चंदा,
पावे भवोभव में आनंदा ।
ज्ञान, दर्शन ज्ञायक धारी,
चरण थायक प्रभु सुखकारी ।

मुक्ति ग्राहक आनंद भारी,
लायक प्रभु है मुक्ति नारी (दोहा)
दायक आनंद रूप के,
गायक सब संसार ।
निश दिन प्रभु गुण गावते,
तो भी न आवे पार ॥
गावे सुर अमरी वृन्दा ॥सिमर ॥१ ॥

प्रभु गुण द्वादश के धारक,
दोष अष्टादश के वारक ।
जगत भविजन के हितकारक,
दुःख अति जनम मरण तारक ।
जारक सायक काम के,
मारक मदन विकार ।
हारक नरपत्ति मोह के,
तारक भवि संसार ॥
पूजते सुरनर मुनि इंदा ॥सिमर ॥२ ॥
चंद्रसम ठारक जग वासी,
प्रसारक वाणी सुख रासी ।
कारक मुक्ति वधु को दासी,
निवारक धाति कर्म फासी ।
धारक जीवन मुक्ति के,
कारक सत उपदेश ।
साधु सागारी तणा,
झूठ नही लवलेश ॥

धरम भव-भव में सुख कंदा ॥सिमर ॥३ ॥
चराचर सब वस्तु पासक,
भये प्रभु अष्ट कर्म नासक ।
शुद्ध पंचम गति के आसक,
रूप सच्चिदानंद कासक ।
रोग सोग चिता नहीं,
जन्म मरण दुःख नास ।
अचर अटल पदवी लई,
सादि अनंता वास ॥
नमो नित सिद्ध टरे फंदा ॥सिमट ॥४ ॥

ऐसे श्री जिनवर के चरना,
भवोदधि में है मुझ सरना ।
नही प्रभु बिन होवे तरना,
ध्यान निश दिन प्रभु का धरना ।
मधुकर मन जिम मालवी,
चाहत चंद चकोर ।
ध्याता हूं शुभ भाव से,
जलधर घट जिम मोर ।
वल्लभ आतम लक्ष्मी कंदा ॥सिमर ॥५ ॥

स्तुति

पद्मप्रभ—प्रभोर्देह—भासः पुष्णन्तु वः श्रियम् ।
अन्तरंगारि—मथने, कोपाटोपादिवारुणाः ॥

प्रार्थना

पद्मप्रभ जिन पाप जलाये, ताप मिटाये जीवन के
सुसीमा सुत सुख के सागर, संताप हटाये तन—मन के ।
प्रभु कृपा के कमल हमारे, मन-उपवन में खिला करें
जीवन पथ पर प्रभो तुम्हारा, मार्गदर्शन मिला करे ॥

परिचय

१ माता का नाम	सुसीमा रानी
२ पिता का नाम	श्रीधर राजा
३ च्यवन कल्याणक	माघ कृष्णा ६/कौशाम्बी
४ जन्म कल्याणक	कार्तिक कृष्णा १२/कौशाम्बी
५ दीक्षा कल्याणक	कार्तिक कृष्णा १३/कौशाम्बी
६ केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र शुक्ला १५/कौशाम्बी
७ निर्वाण कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा ११/सम्मेतशिखर
८ गणधर	१०७ प्रमुख सुद्योत
९ साधु	सख्या ३ लाख ३० हजार प्रमुख सुद्योत
१० साध्वी	सख्या ४ लाख २० हजार प्रमुख रति
११ श्रावक	सख्या २ लाख ७६ हजार
१२ श्राविका	सख्या ५ लाख ५ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	छत्राभ
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	कुसुम
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	श्यामा
१६ आयुष्य	३० लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न-Mark)	पद्म (कलम)
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	ग्रैवेयक
१९ तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन	अपराजित के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थावस्था	६ महीना
२२ गृहस्थावस्था	२९ लाख पूर्व एव १६ पूर्वाग
२३ शरीरवर्ण (आभा)	लाल
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	निर्वृत्तिकरी
२५ नाम-अर्थ	मा को कमलपत्र की शय्या मे सोने की इच्छा हुई।
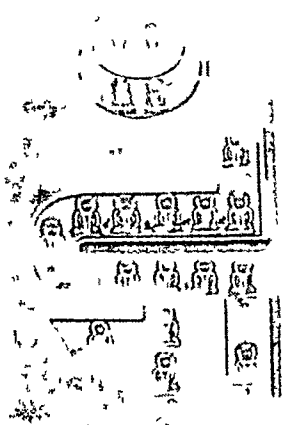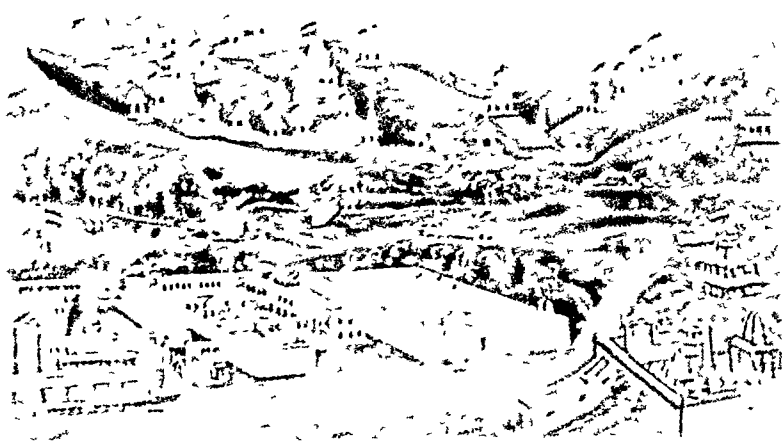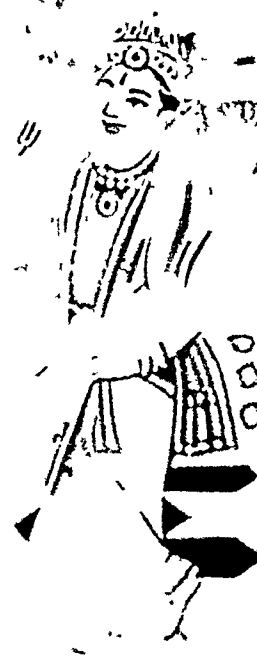
॥ श्री सुपार्श्वनाथ ॥

SHRI SUPARSHVA JINENDRAYA MAHENDRA MAHITANGHRAYE
NAMASCHATURVARNA SANCHA GAGANA BHOG BHASVATE

श्री सुपार्श्वजिनेन्द्राय, महेन्द्रमहिताङ्घ्रये ।
नमश्चतुर्वर्णसङ्घ गगनाभोगभास्वते ॥७॥
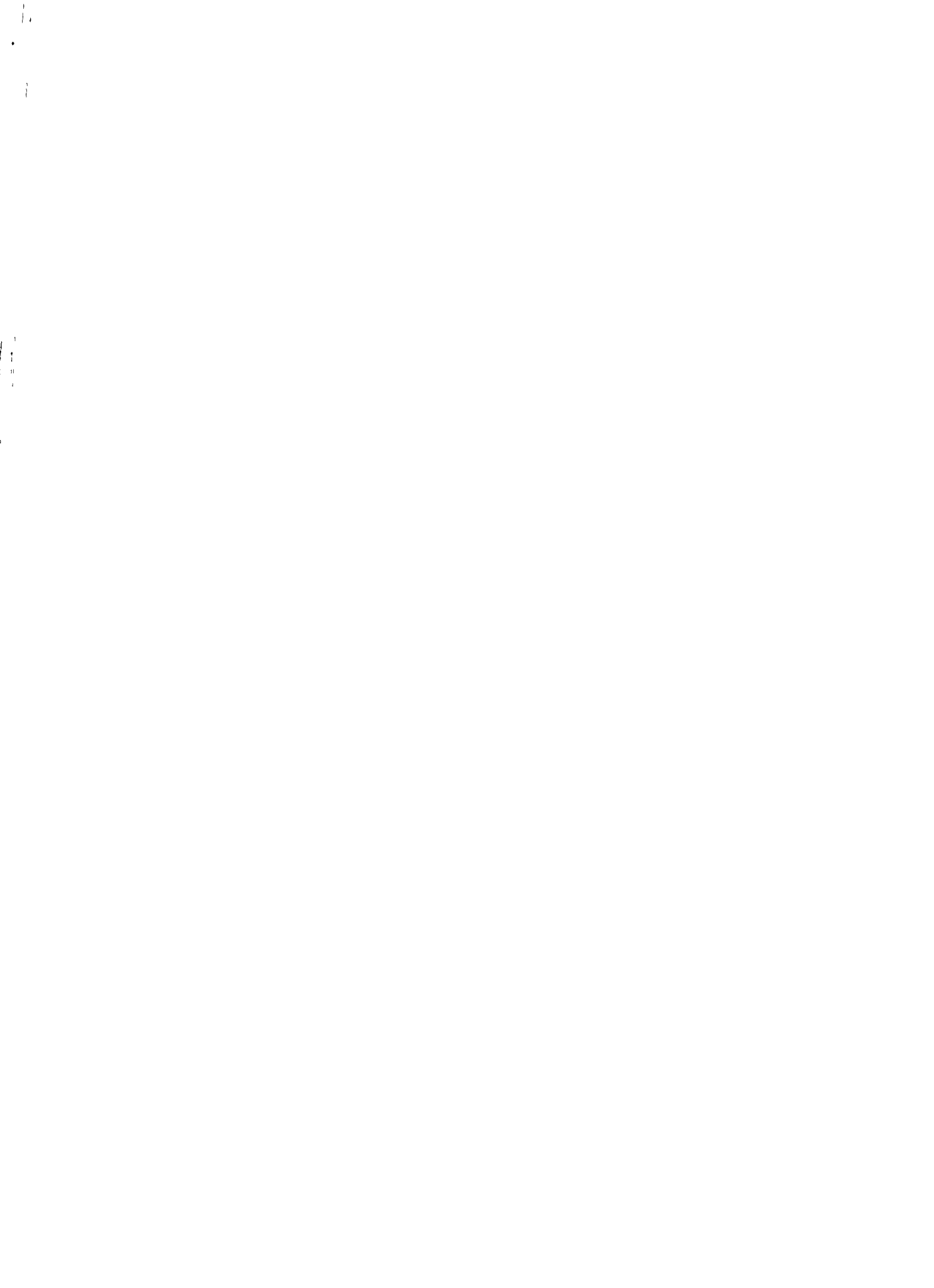
सत्ता प्राप्ति के बाद प्रभु को गर्व नही था । वे राज्य हित का कार्य करने लगे । सुंदर रूप से राज्य का संचालन करने लगे ।

दीर्घ अवधि तक प्रभु ने राज्य किया । तत्पश्चात् संसार से उनका मन उठ गया । एक वर्ष तक वर्षीदान दिया ।

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन जब विशाखा नक्षत्र में चन्द्र का योग था । तब मनोहरा नामक पालकी मे बिराजित होकर सहस्त्राम्र वन में पधारे ।

वहां एक हजार राजाओं के साथ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की । उस समय प्रभु ने बेले की तपस्या की ।

पाटलीखंड नामक नगर में महेन्द्र नामक राजा के घर प्रभु ने बेले की तपस्या का खीर से पारना किया ।

नवमास तक उन्होंने उग्र तपस्या की । अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन किए । पृथ्वी पर विहार करते हुए प्रभु पुनः सहस्त्राम्र वन में पधारे । बेले की तपस्या करके प्रभु शिरिष नामक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खडे रहे । फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन जब विशाखा नक्षत्र में चन्द्र का योग था, तब प्रभु को केवलज्ञान हुआ ।

देवो ने शीघ्र ही आकर समोसरण की रचना की । उस समय प्रभु ने जगहितकारी वाणी का प्रकाश किया ।

प्रभु ने शरीर और आत्मा की भिन्नता बताई । शरीर जुदा है, आत्मा भी जुदा है । भेदज्ञान के बिना संसार की ममता छूटती नही है । ममता छूटे बिना दुःख भी छूट नही सकता । संसार के बंधन तोडने वाला दुःखो से मुक्त हो जाता है ।

मोह वश मानव पर को अपना समझ बैठा है, और स्वयं के स्वरूप को भूला बैठा है ।

जैसे तिल में तेल, दूध मे घी, फूल में सुगंध काष्ठ में अग्नि रही हुई है वैसे ही शरीर में भी आत्मा रही हुई है ।

आत्मा के ज्ञान दर्शन एवं चरित्र आदि गुणों को प्रकट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । तभी आत्मा परम सुख की अधिकारी बन सकती है ।

प्रभु की दिव्य वाणी से अनेक आत्माओं को वैराग्य हुआ । कईयो ने दीक्षा ग्रहण की । कई श्रावक बने ।

श्री विदर्भ स्वामी आदि प्रभु के पंचानवे गणधर हुए । माता ने जैसा सांप स्वप्न मे देखा था, वैसा सांप समवसरण मे इन्द्र प्रभु मस्तक पर रखता था ।

प्रत्येक समवसरण मे इन्द्र यह कार्य करता था। प्रभु का चैत्यवृक्ष एक कोश एवं चार सौ धनुष ऊंचा था।

प्रभु सुपार्श्वनाथ के शासन में नीलवर्णवाला एवं हाथी के वाहन वाला मातंग नामक यक्ष था। स्वर्ण वर्णवाली एवं हाथी के वाहन वाली शाता नामक शासन देवी थी।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था। तीन लाख साधु, चार लाख तीस हजार साध्वियां, दो हजार तीस चौदहपूर्वी, नौ हजार अवधिज्ञानी, नौ हजार एक सौ पचास मनःपर्यवज्ञानी, ग्यारह हजार केवलज्ञानी, पन्द्रह हजार तीन सौ वैक्रिय लब्धिवाले एवं आठ हजार चार सौ वादलब्धिवाले थे।

दो लाख सत्तावन हजार श्रावक एवं पाच लाख सात हजार श्राविकाए थी।

केवलीपर्याय में प्रभु वीशपूर्वाग नव मास कम एक लाख पूर्व तक रहे। जगत पर महान उपकार किया।

तत्पश्चात् प्रभु सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे। वहां फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन मूल नक्षत्र मे चन्द्र के योग मे एक मास के उपवास कर अनशन किया। पांच सौ मुनियों के साथ प्रभु ने निर्वाण प्राप्त किया मुक्ति पद पाया।

कुमार अवस्था मे प्रभु पांच लाख पूर्व रहे। राज्य अवस्था में प्रभु चौदह लाख पूर्व एवं वीश पूर्वाग रहे। दीक्षा पर्याय एव केवलीपर्याय मे वीश पूर्वाग कम एक लाख पूर्व तक रहे। कुल मिलाकर प्रभु की संपूर्ण आयु वीश लाख पूर्व थी।

श्री सुपार्श्वनाथ स्तवन

सिरि सुपार्श्वनाथ स्वामी
करूणा रस मंडार निधी,
करूणा अंतर जामी ॥सिरि ॥

बनारस नगर प्रभु जाया,
पृथिवी देवी मात,
तात परतिष्ठ महाराया ।
राज कुल को अति दिपाया ।
गगन व्योम कर देह,
धनुष कंचन वरनी काया
सुंदर स्वस्तिक लंछन पाया ।
वीस पूर्व लख आऊखा,
लाख पूर्व पर्याय
वीस अंग उनीस ही,
केवल ज्ञान जगाय
मास जय छथास्था, पामी ॥१ ॥करूणा ॥

प्रभु तुम राग द्वेष त्यागी ।
हूं कम्पल अनाथ विना,
तुम नाथ मोहरागी
विषय रस में अति हूं राच्यो ।

गतिचार चउरासी लाख,
घट संग नाच माच्यो ।
रह्यो इन में निश दिन माच्यो ।
देव स्वरूप न जानियो,
जान्यो धर्म न सार ।
विना गुरु शुभ साधु के,
किम उतरूं मन पार ।
करो टुक नेक नजर, स्वामी ॥२ ॥करूणा ॥

पांच इन्द्रीने वस कीना ।

दया दान तप नेम शील,
आतमगुण दव लीना ।
भवो भव में बहु दुख दीना ।
रूल्यो अनंता काल मांही,
तो भी इन संग कीना ।
हार अब तुम सरना लीना ।
कर करूणा करूणानिधि,
हे प्रभु दीन दयाल ।
जगतारण जगनाथ जी,
करूणा नजर निहाल ।
परमपद शिवपद के गामी ॥३ ॥करूणा ॥

महा माहन प्रभु जिन चदा ।
महा गोप सथवाह महा,
आनंद सुख के कंदा ।
भवोदधि निर्यामक भारी ।
नही विना तुम देव कोई,
जग अमा यह धारी ।
तुही जग मे पर उपकारी ।
सुरपति नरपति खगपति,
भुवनपति वन ईस ।
नमन करे शुभ भाव से,
पद पकज घर सीस ।
करमदल चुरू के कामी ॥४ ॥करूणा ॥

नाम प्रभु जिनवर हितकारी ।
हरि करी दव रोग,
जलोदर बंधन भय हारी ।
अहि रण उदधि भय वारी ।

जनम मरण दुख दूर
करण कारण अरजी म्हारी ।
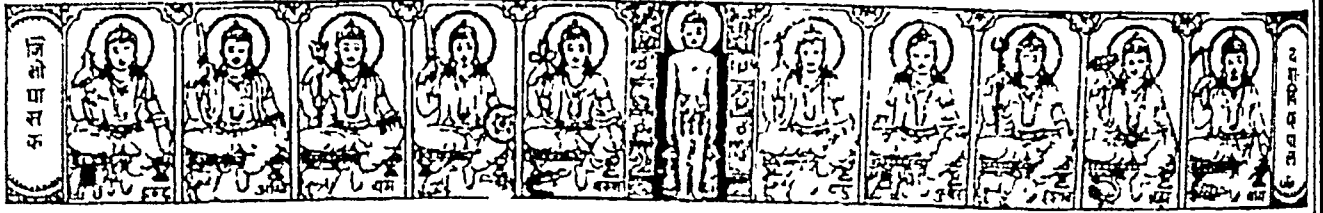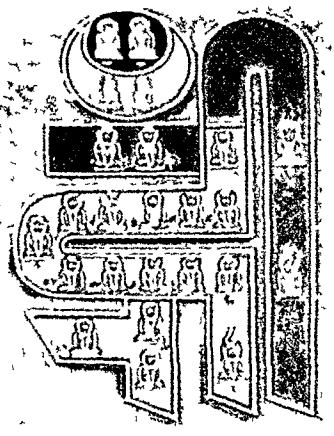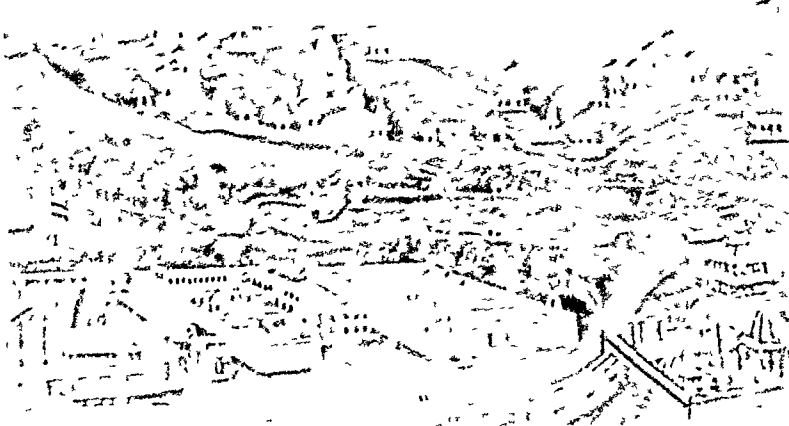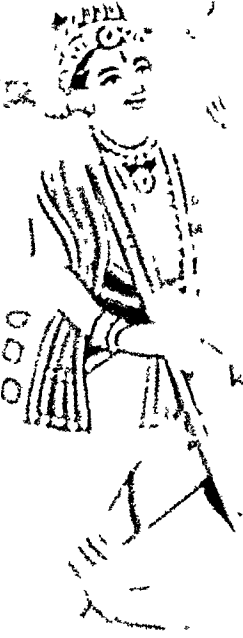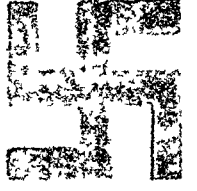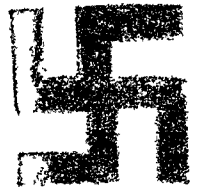
आया प्रभु ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया ।

पोष मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में जब चन्द्र था, तब मनोरमा नामक पालकी में बिराजित होकर नगर के बाहर निकले । नगरी के बाहर सहस्त्राम्र वन में पधारे ।

पालकी से उतरकर पंचमुष्ठि लोच किया । बेले की तपस्या करके उन्होंने दीक्षा ग्रहण की । पद्मखंड नामक नगर मे सोमदत्त राजा के घर प्रभु ने बेले का पारना खीर से किया ।

छद्मस्थ अवस्था मे प्रभु तीन मास अन्यत्र विहार करते हुए पुन. सहस्त्राम्र वन में पधारे । पुनाग पेड के नीचे प्रभु कायोत्सर्ग ध्यान मे खडे रहे । शुक्ल ध्यान की धारा में बढते हुए प्रभु ने चार धाती कर्म का क्षय किया । केवलज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ ।

देव दानव मानव एवं पशु भी उनके पास आए । समवसरण की रचना हुई । सभी प्रभु की वाणी का श्रवण करने लगे । प्रभु ने कहा- यह संसार दुःखमय है । असार है ।

शरीर भी अशुचिमय है । सप्त धातुओ से बना यह शरीर एक दिन गिर जाने वाला है । पवित्र अन भी जब शरीर में जाता है तो वह भी अपवित्र एवं दुर्गधमय बन जाता है । शरीर के पोषण के लिए मानव हिसा करता है, पापकर्म करता है । यह शरीर तो नश्वर है । व्यर्थ ही मानव उस पर मोह करता है, आसक्त बनता है ।

अपवित्र एवं नश्वर शरीर से जो मानव पवित्र धर्म की आराधनाकर लेता है, उसका जीवन सार्थक बन जाता है । जैसे खारे सागर में से रत्नों को निकाल लेने वाला बुद्धिमान माना जाता है, वैसे ही अपवित्र शरीर से धर्म की आराधना करने वाला भाग्यशाली होता है ।

प्रभु वाणी के प्रभाव से हजारों नर-नारियों ने दीक्षा ग्रहण की एवं लाखो लोगों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया । प्रभु के श्री दत्त आदि तिरानवे गणधर हुए ।

उनका शासनरक्षक देव विजय नाम का यक्ष था । वह नील वर्ण वाला एवं हंस वाहन वाला था । स्वर्णमय वर्णवाली एव हंस वाहन वाली भृकुटी नामकी शासनदेवी थी ।

उनका परिवार इस प्रकार था । ढाई लाख साधु, तीन लाख एवं अस्सी हजार साध्वियां, दो हजार चौदह पूर्वी अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी आठ हजार, केवलज्ञानी दस हजार, वैक्रिय लब्धिवाले चौदह हजार एवं वाद लब्धिवाले सात हजार व छः सौ थे । ढाई लाख श्रावक एवं चार लाख दस हजार श्राविकाएं थी ।

केवलज्ञान के पश्चात् तीन मास कम एक लाख पूर्व तक प्रभु ने संसार पर उपकार किया । तत्पश्चात प्रभु सम्मेतशिखर पर पधारे । भादो मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्र योग मे एक मास का अनशन कर मोक्ष में गए । उनके साथ एक हजार मुनियों ने भी मोक्ष पद प्राप्त किया ।

कुमार अवस्था में प्रभु ढाई लाख पूर्व तक रहे। राज्य अवस्था मे साढ़े छः लाख पूर्व और चौबीस पूर्वांग रहे। दीक्षा पर्याय में चौबीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व तक रहे। इस प्रकार कुल मिलाकर प्रभु की आयु दस लाख पूर्व की थी।

श्री चंद्रप्रभु स्तवन

चदा प्रभु वंदिए परम पद पावना।
चंद्रप्रभु जिन आठमा सोहे, आठमा सोहे।
आठो करम हरिये प्रभु के गुण गावना ॥१ ॥

सिद्ध आठ गुण संपदा पावे संपदा पावे।
आठों मद दलिये ऋद्धि सिद्धि पावना
आर्त्त रोद्र को दूर करीने, दूर करीने ॥२ ॥

धर्म शुक्ल वरिये, प्रभु के गुण गावना।
सिद्धि गति आठमी गति जाना, आठमी ॥३ ॥

चिदानंद वरिये न फिर भव आवना ॥४ ॥

आतम लक्ष्मी हर्ष अनुपम, हर्ष अनुपम।
प्रभु दर्शन करिये वल्लभ पुरी जालना ॥५ ॥

स्तुति

चन्द्रप्रभ-प्रभोश्चन्द्र-मरीचि-निचयोज्ज्वला।
मूर्तिर्मूर्त-सितध्यान-निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ॥

प्रार्थना

चदा के किरणो से शीतल चंद्रप्रभ स्वामी प्यारे
लक्ष्मणा रानी के हो दुलारे, सृष्टि के तारन हारे।
स्नेह सुधा बरसा के हमारे पाप ताप को शांत करो
विषय-विकारो मे डूबी इस आत्मा को उपशांत करो ॥

परिचय

१ माता का नाम	लक्ष्मणा रानी
२ पिता का नाम	महसेन राजा
३ च्यवन कल्याणक	चैत्र कृष्णा ५/चंद्रपुरी
४ जन्म कल्याणक	पोष कृष्णा १२/चद्रपुरी
५ दीक्षा कल्याणक	पोष कृष्णा १३/चद्रपुरी
६ केवलज्ञान कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ७/चद्रपुरी
७ निर्वाण कल्याणक	भाद्रपद कृष्णा ७/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ८८ प्रमुख दिन्नगणई
९ साधु	सख्या २ लाख ५० हजार प्रमुख दिन्नगणई
१० साध्वी	सख्या ३ लाख ८० हजार प्रमुख सुमना
११ श्रावक	सख्या २ लाख ५० हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख ९१ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	पुन्नाग
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	विजय
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	भृकुटि
१६ आयुष्य	१० लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न-Mark)	चन्द्र
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	वैजयत
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	पद्म के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	७
२१ छद्मस्थ अवस्था	६ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	९ लाख पूर्व २४ पूर्वाग
२३ शरीर-वर्ण	श्वेत (गौर)
२४ दीक्षा दिवस की शिबिका का नाम	मनोरमा
२५ नाम-अर्थ	मा के मन मे चन्द्रकिरणो को पीने की इच्छा हुई।
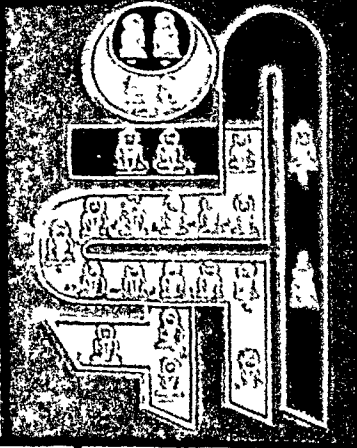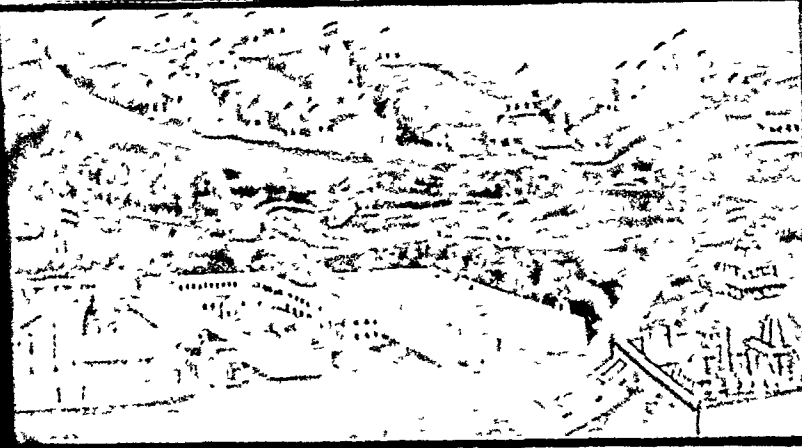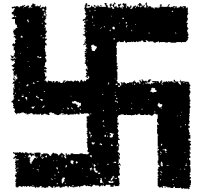
|| श्री सुविधिनाथ ||

|| श्री सुविधिनाथ ||

KARAMAL KAVADVISHVAM KALYAN KEVAL SHRIYA
ACHINTYA MAHATMYA NIDHIH SUVIDHIR BODHAYE STU VAH

करामलकवद्विश्वं, कलयन् केवलश्रिया
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः

श्री सुविधि जिन देववंदन

चैत्यवंदन—सुविधिनाथ नवमा नमुं, सुग्रीव
जास तात, मगर लंछन चरणें नमुं, रामा रुडी माता ॥१ ॥

आयु बे लाख पूरवतणुं, रात धनुष नी काय,
काकंदी नयरी घणी, प्रणमुं प्रभु पाय ॥२ ॥

उत्तम विधि जेहथी लह्यो अे, तेणे सुविधि जिन नाम,
नमतां तस पद पद्मने, लहिये शाश्वत धाम ॥३ ॥
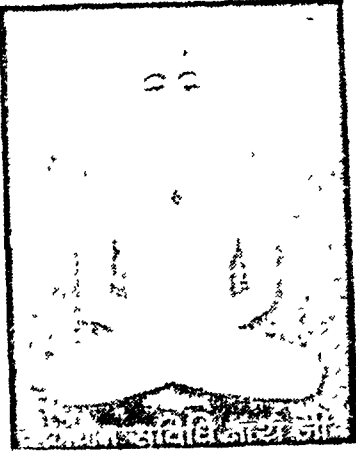
श्री सुविधिनाथ प्रभु चरित्र

सुविधिनाथ नवें तीर्थकर थे। इनका दूसरा नाम पुष्प दंत भी था। पद्मराजा के भव में उन्होने साधना करके तीर्थकर नाम कर्म का अर्जन किया था।

पूर्व महाविदेह क्षेत्र मे पुष्कलावती विजय में पुंडरिकिणी नामक नगरी थी। पद्मराजा वहां के शासक थे।

राज्य कार्य करते हुए भी वे जीवन की वास्तविकता को अच्छी तरह जानते थे। उन्हें सम्यग्ज्ञान प्राप्त था। अत. राज्य के प्रति वे अनासक्त थे।

एक बार वे जगनंद महामुनि के दर्शन करने गए। वे उपदेश दे रहे थे—"मानव सोचता है, अभी सासारिक कार्य कर लु, जीवन का आनन्द ले लुं, धर्म-साधना वृद्धावस्था मे कर लेगे।"

"किन्तु मानव ऐसा सोचता रहता है। परन्तु मौत किसी का इंतजार नही करती। जब आती है एक क्षण का भी विलंब नही करती। अन्त समय मानव को पश्चाताप करना पडता है। अतः आत्म साधना मे विलंब अनुचित है। हानिकारक है।"

महामुनि की वाणी से उन्हे वैराग्य हुआ। उन्होने उनके पास दीक्षा ले ली।

आत्मसाधना मे लीन हो गए। विभिन्न प्रकार की तपस्या करने लगे। विश स्थानक के कुछ पदो की आराधना की और उन्होने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया।

मरकर वे वैजयंत नामक विमान मे देव हुए।

भरत क्षेत्र मे काकंदी नगरी थी। वहां सुग्रीव नामक राजा राज्य करता था। उनकी रानी का नाम रामादेवी था। वह गुणवती एवं पतिसेविका थी।

पद्मराजा का जीव देवलोक से च्यवकर के रामा माता के उदर मे आया । उस समय रामा शयन कर रही थी । तीर्थकर सूचक उसने चौदह महास्वप्न देखे ।

नवमास पूर्ण होने पर मगसिर कृष्णा द्वादशी के दिन रामा माता ने पुत्र को जन्म दिया ।

रानी के कहने पर राजा ने पुत्र की महिमासूचक स्वप्न फल वताए ।

प्रभु तेजो मय कांति वाले एवं मकर लंछन युक्त थे । वे जब गर्भ में आए तो माता सर्व कार्यो मे दक्ष हुई और पुष्प के दोहद से प्रभु को दांत आए अतः सुविधि एवं पुष्पदंत दो नाम पिता ने रखे ।

धीरे-धीरे बढते हुए प्रभु जब विवाह योग्य हुए तब माता पिता ने आग्रह किया, अतः उन्होने अनेक राजकन्याओ के साथ विवाह किया ।

भोगकर्म को क्षय करने केलिए प्रभु संसार मे रहने लगे । पिता ने उन्हें राज्य सत्ता भी सौंप दी। कुशलतापूर्वक वे राज्य करने लगे । अनेक वर्षो तक उन्होंने राज्य किया ।

तत्पश्चात् दीक्षा लेने की तैयारी की । वर्षीदान प्रारंभ किया । मार्गशीर्ष मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन मूल नक्षत्र मे शूरप्रभा नामक पालकी मे सवार हुए, नगर के मध्य होते हुए, सहस्राम्र वन मे पधारे । बेले की तपस्या करके सुविधिजी ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की ।

बेले का पारना श्वेतपुर नामक नगर में पुष्प नामक राजा के घर प्रभु ने खीर से किया ।

वे कठोर तपस्या करने लगे । अनेक प्रकार के परिसह भी सहन करने लगे ।

चार मास तक छद्मस्थ अवस्था में विचरण करते हुए वे पुनः सहस्राम्र वन मे पधारे । वहां मालुर वृक्ष के नीचे आत्मध्यान में स्थिर हो गए । वे परमयोग मे लीन हो गए । शुक्ल ध्यान मे लीन उन्हें केवलज्ञान हुआ ।

देवों और इन्द्रा ने केवलज्ञान महोत्सव मनाया । प्राणीमात्र के कल्याण के लिए उन्होने उपदेश देना प्रारंभ किया । उन्होने प्रथम देशना मे मुक्ति का मार्ग बताते हुए कहा कि अनादि काल से आत्मा कर्म के बंधन मे जकडा हुआ है । कर्मो के बंधन से छूटे बिना परम पद की प्राप्ति नही हो सकती ।

मानव कर्म करते हुए सोचता नही है । जब दुष्कर्म का कटु फल सामने आता है तब दुःखी होता है । पश्चाताप करता है ।

राग द्वेष एवं लोभ आदि में फंसा हुआ मानव अशुभ कर्मो का उपार्जन कर लेता है ।

मानव यदि तन मन एवं वचन की शुद्धिपूर्वक धर्म की साधना करें । राग द्वेष एवं माया आदि का नाश करें तो वह कर्मो से मुक्त हो सकता है । परम आनंद प्राप्त कर सकता है ।

उनकी पावन वाणी से प्रबुद्ध होकर अनेकों ने दीक्षा ग्रहण की, लाखों ने श्रावक व्रत स्वीकार किए ।

श्री वराह आदि उनके अट्ठासी गणधर हुए। उनका शासन देव श्री अजित नामक था। वह श्वेत वर्णवाला चार हाथों एवं कुर्म वाहन वाला था।

गौर वर्णवाली और बेल का वाहन वाली सुतारा नाम की शासन देवी थी।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था। दो लाख साधु, एक लाख व बीस हजार साध्विया, आठ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, एक हजार पांच सौ पूर्वधर, सात हजार पांच सौ मनः पर्यवज्ञानी, पूचहत्तर सौ केवलज्ञानी, तेरह हजार वैक्रिय लब्धिवाले एवं छः हजार वाद लब्धि वाले थे।

दो लाख उनत्तीस हजार श्रावक एवं चार लाख बहत्तर हजार श्राविकाएं थी।

व्रत एवं केवली पर्याय मे प्रभु एक लाख पूर्व से अधिंक रहकर संसार पर अपार उपकार किया।

तत्पश्चात् सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे। एक मास का प्रभु ने अनशन किया। भादो मास की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन मूल नक्षत्र मे एक हजार मुनियो के साथ मोक्ष पद प्राप्त किया।

अर्ध लाख पूर्व प्रभु कुमार अवस्था मे रहे। अर्ध लाख पूर्व से अधिक राज्य अवस्था मे रहे। दीक्षा व केवली पर्याय मे एक लाख से कुछ कम पर्याय तक रहे। कुल मिलाकर सुविधिनाथ प्रभु की सर्वायु दो लाख पूर्व की थी।

जिस प्रभु के ध्यान से नवग्रहो की पीडा का उदय नही होता है। जो नवतत्वो का बोध कराते थे एवं जिनके चरण कमलो के आगे देवता नव कमलों का विस्तार करते थे। वे नवमे प्रभु सर्व का कल्याण करे।

श्री सुविधिनाथ स्तवन

(तर्ज - वाया जी हम पांच भाई)

सुविधि जिनेश्वर तूं परमेश्वर
तार-तार मोहे तारजी
तू प्रभु तारण तरण जहाजा,
तारे बहु नर नारजी।
तुम ज्ञानी सेवक मैं तुमरा,
आया तुम दरबार जी ॥१ ॥

तुम सम और नही कोई देवा,
लूट लिया संसार जी।
कोई रागी कोई द्वेषी देखे,
देखे सब कोई नारजी ॥२ ॥

शांत मुख मुद्रा तुम न्यारी,
दोष दिए सब तारजी ।
निज आतम सम सेवक जानी,
भवोदधि पार उतारजी
वसु बाण निधि इन्दु वर्षे ॥३ ॥

मगसिर सुदि दिन सारजी ।
दर्शन एकादशी तुम पायो,
लवपुर नगर मोझार जी ॥४ ॥

दर्शन वल्लभ प्रभु मुख केरा,
बार-बार बलिहार जी,
आतम लक्ष्मी सुमति प्रगटे,
आनंद हर्ष अपार जी ॥५ ॥

स्तुति

करामलकवद् विश्वं, कलयन् केवलश्रिया ।
अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ॥

प्रार्थना

सुविधिनाथ प्रभु के चरणों में, सुख की नही है अवधि
रामानंदन कृपा करे तो, तृप्त बने मन की अवनि ।
कितनी सुन्दर विधि बताई, दुःख से मुक्ति पाने की
प्रभु चरणों में दूर हो जाए, पीड़ा सारे जमाने की ॥

परिचय

१ माता का नाम	रामा रानी
२ पिता का नाम	सुग्रीव राजा
३ च्यवन कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ९/काकदी
४ जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा ५/काकदी
५ दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा ६/काकदी
६ केवलज्ञान कल्याणक	कार्तिक शुक्ला ३/काकदी
७ निर्वाण कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा ६/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ८८ प्रमुख वराह
९ साधु	सख्या २ लाख प्रमुव वराह
१० साध्वी	सख्या १ लाख २० हजार प्रमुख वारुर्णा
११ श्रावक	सख्या २ लाख २९ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख ७१ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	मालूर
१४ यक्ष (अधिप्ठायक देव)	अजित
१५ यक्षिणी (अधिप्ठायिका देवी)	सुतारका
१६ आयुष्य	२ लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्-Mark)	मगरमच्छ
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	आनत (९वे देवलोक मे)
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	महापद्म के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	४ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	१ लाख पूर्व एव २८ पूर्वांग
२३ शरीर-वर्ण	श्वेत (गोरा)
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	सुरप्रभा
२५ नाम अर्थ	गर्भ में आने पर मां ने विधि को सर्वभांति जाना

धर्मचक्र वंदना
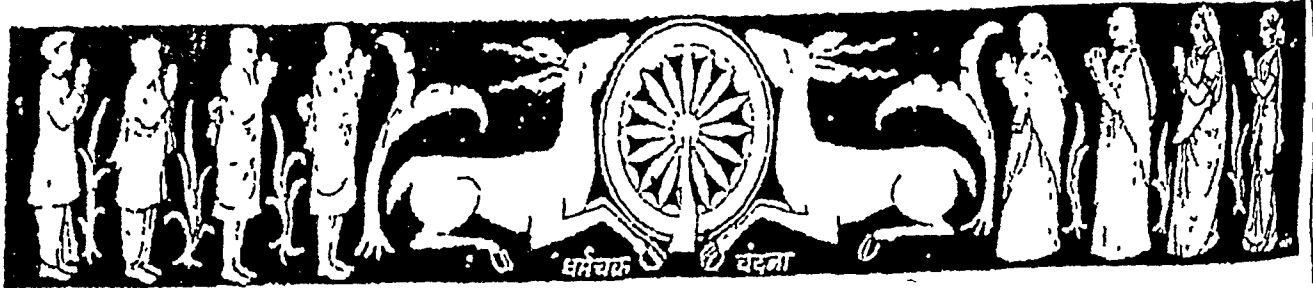
॥ श्री शीतलनाथ ॥

SATVANAM PARMANAND KANDODU BHEDAN VAMBUDRA
SYADVADAMRUT NISHYANDI SHITALH PATUYOJ'NAH

सत्त्वानां परमानन्द-कन्दोद्भेदनवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृतनिस्यन्दी, शीतलः पातु वो: जिनः ॥१०॥

श्री शीतलनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—नंदा दढरथ नंदनो, शीतल शीतलनाथ
राजा भदिलपुर तणो, चलवे शिव साथ ॥१ ॥

लाख पुरवनुं आउखुं, नेवुं, धनुष प्रमाण,
काया माया टालीने, लहया पंचम नाण ॥२ ॥

श्री वत्स लंछन सुंदरु अे पद्म रहे जास,
ते जिननी सेवा थकी, लहीये लील-विलास ॥३ ॥

श्री शीतलनाथ चरित्र

पुष्करार्धद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में सुसीमा नामक नगरी में पध्मोत्तर राजा राज्य करता था। वह नीतिमान एवं धर्मप्रेमी था।

एक बांर उसने स्त्रताघ सूरिजी का उपदेश सुना। मन विरागी हो गया।

उसने उनके पास दीक्षा ग्रहण कर ली। उग्र साधना एवं तपस्या करने लगे। वीश स्थानक में से कुछ स्थानको की आराधना करके उन्होने तीर्थकर नाम कर्म बांधा।

मरकर वे दसवे प्राणत नामक देवलोक में देव हुए।

भरतक्षेत्र मे भद्दिलपुर नाम का एक नगर था। वहां के राजा का नाम दृढरथ था। उनकी रानी का नाम नंदा था। देवलोक का आयु पूर्ण कर वह उसके उदर मे आया। नंदा माता ने चौदह महास्वप्न देखे। तीर्थंकर सूचक स्वप्न फल जानकर उसे अत्यंत प्रसन्नता हुई।

समुचित रूप से वह गर्भ का पालन करने लगी।

एक दिन महाराजा द्रढरथ को उग्र दाहज्वर हुआ। सारा शरीर जलने लगा। अंग-अंग में दाह होने लगी।

राज वैद्यो ने अनेक उपचार किए। चन्दन का लेप किया। पुष्पशैय्या पर लिटाया गया। किन्तु राजा को कोई आराम नही हुआ। अपितु पीडा और भी वढने लगी। दाह ज्वर से दुःखी राजा को देखकर रानी भी परेशान हो गई।

महारानी ने वैद्यो को प्रताडित भी किया। वैद्य भी निराश हो गए। उन्हे समझ नही आया कि अब क्या किया जाय।

महारानी की आज्ञा से राजा के शरीर पर जो लेप थे, हटा दिए गए। पुष्प शैय्या भी हटा दी गई।

महारानी उपासना गृह से सीधी महाराज के पास पहुंची। वह उनके समीप बैठ गई।

महारानी ने अपना दायां हाथ राजा के शरीर पर रखा, राजा ने अद्भुत शीतलता महसूस की। मानो शीतलता उनके शरीर में प्रवेश करने लगी। थोड़ी ही देर मे राजा की सारी वेदना दूर हो गई। दाहज्वर शांत हो गया। राजा ने अपूर्व शांति महसूस की।

माघवदि-१२ को श्री वत्स चिन्ह वाले एवं स्वर्णमय वर्ण वाले प्रभु को जन्म दिया।

प्रभु के प्रभाव से राजा को शीतलता प्राप्त हुई अतः उनका नाम शीतलनाथ रखा।

धीरे-धीरे शीतलनाथ जी युवा हुए। अनेक राजकन्याओं के साथ पिता ने उनकी शादी की।

वृद्ध अवस्था में राजा ने राज्य का भार प्रभु को सौंप दिया।

राजा ने संयम मार्ग ग्रहण कर लिया।

पचास हजार पूर्व तक उन्होने राज्य का परिपालन किया। एक दिन शीतलनाथ जी ने परिजनो के समक्ष संसार त्याग की भावना प्रकट की।

चन्द्रप्रभा पालकी में सवार होकर वे सहस्त्राम्रवन में पधारे। बेले की तपस्या करके माघवदि-१२ के दिन दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ एक हजार राजाओ ने भी संयम ग्रहण किया।

प्रभु ने बेले का पारना रिष्टपुर नगर मे पुनर्वसु राजा के घर खीर से किया।

प्रभु कठोर साधना करने लगे। उग्र तपस्या करने लगे। तीन माह के बाद वे विचरण करते हुए सहस्त्राम्र वन में पधारे। पीपल वृक्ष के नीचे वे आत्मध्यान में स्थिर हो गए। शुक्लध्यान मे प्रभु ने धातिकर्मो का क्षय कर दिया। प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

देवो ने केवलज्ञान महोत्सव किया। समवसरण की रचना हुई। जिसमे बिराजमान होकर प्रभु ससारी जीवों के कल्याण के लिए उपदेश देने लगे। प्रभु ने प्रथम देशना में कहा कि आश्रव कर्म का द्वार है। जन्म-मरण का मुख्य श्रोत है, उसका निरोध संवर से होता है।

क्रोध के संवर के लिए क्षमा की आवश्यकता है। अहंकार के संवर के लिए नम्रता जरूरी है। माया के संवर के लिए सरलता आवश्यक है।

पापाश्रव के संवर से आत्मा निर्मलता प्राप्त करती है। परम पद को पा लेती है।

कहा भी है— **आश्रवो भव हेतुः स्यात् संवरो मोक्ष कारणम्॥**

आश्रव संसार का कारण है और संवर मोक्ष का। प्रभु की देशना से हजारों नर-नारी प्रतिबोधित

ए। उन्होंने परमात्मा के पास संयम स्वीकार किया। अनेकों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

श्री आनंद आदि प्रभु के इक्यासी गणधर हुए। ब्रह्मा नामक उनका शासनदेव था। वह तीन नेत्रवाला, चार मुख श्वेतवर्णी और पध्मासन वाला था।

नील वर्णवाली एवं पद्म आसनवाली श्री अशोका नामक शासनदेवी थी।

प्रभुका परिवार इस प्रकार था— एक लाख साधु एक लाख व छः साध्वियां, एक हजार चार सौ चौदह पूर्वी, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी, सात हजार, सात सौ मनःपर्यवज्ञानी, सात हजार केवलज्ञानी, बारह हजार वैक्रिय लब्धिवाले, एवं अठ्ठावन सौ वाद लब्धिवाले थे।

दो लाख नवासी हजार श्रावक एवं चार लाख अठ्ठावन हजार श्राविकाएं थी।

केवलीपर्याय मे तीन मास कम पचीस हजार पूर्व तक संसार पर महान उपकार किया।

तत्पश्चात् सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे। एक मास का प्रभु ने अनशन किया। वैशाख कृष्णा-२ के दिन एक हजार मुनियो के साथ मोक्ष मे गए। उस समय पूर्वाषाढा नक्षत्र में चन्द्र का योग था।

कुमार अवस्था में प्रभु पचीस हजार पूर्व रहे। राज्य अवस्था में पचास हजार पूर्व दीक्षा एवं केवली पर्याय मे २५ हजार पूर्व रहे। प्रभु की पूर्ण आयु एक लाख पूर्व की थी।

श्री शीतलनाथ स्तवन

(तर्ज :- मल्लिजिन नाथजी व्रत लीजे रे)

शीतल जिन नाथजी मुने तारो रे
भवसिधु पार उतारो...शीतल।

प्रभु दक्षिणावर्तनो कम्बुरे
धर्म सार्थ तणो तम्बुर।
भवदव शमवाने अंबु ..॥शीतल ॥१ ॥

प्रभु तण अक्षरनु नाम रे
पण अनन्त गुणोनुं धाम रे।
जगजीवन ने दे विश्राम ..॥शीतल ॥२ ॥

भवि शीतलनाथ ने ध्यावे रे
पूर्ण [illegible] ने मान नमावे रे।
[illegible] प्रभु [illegible] ..॥शीतल ॥३ ॥

प्रभु नाम स्थापना दीसे रे,
द्रव्य राजु सात विसेसे रे
भाव भावे भवि मन इसे... ॥शीतल ॥४ ॥

प्रभु देवकरण नी शक्ति रे,
करे नर-नारी शुभ भक्ति रे ।
लहे फल तस अन्ते मुक्ति... ॥शीतल ॥५ ॥

वनथली मंडन जिनराया रे, मुज थली मांहि समाया रे
रह्यो अविचल आतम राया... ॥शीतल ॥६ ॥

कर मुनि निधि इन्दु वरसे रे,
आतम लक्ष्मी अति हर्षे रे वल्लभ शीतल गुण फरसे ॥शीतल ॥९ ॥

स्तुति

सत्त्वानां—परमानन्द—कन्दोद्भेद—नवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृत-निःस्यन्दी, शीतलः पातु वो जिनः ॥

प्रार्थना

शीतलनाथ शशि से शीतल, कृपा किरन जब बरसाये
भवि जीवों के हृदय-गगन में, खुशियों के बादल छाये
विपदा मिट जाती तन मन की, दशम प्रभु के दर्शन से
पूरी होती मनोकामना, तीर्थंकर के स्पर्शन से ॥

परिचय

१ माता का नाम	नदा रानी
२ पिता का नाम	द्दढरथ राजा
३ च्यवन कल्याणक	वैशाख कृष्णा ६/भद्दिलपुर
४ जन्म कल्याणक	माघ कृष्णा १२/भद्दिलपुर
५ दीक्षा कल्याणक	माघ कृष्णा १२ /भद्दिलपुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष कृष्णा १४/भद्दिलपुर
७ निर्वाण कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/ सम्मेत शिखर
८ गणधर	सख्या ८१ प्रमुख नंद
९ साधु	सख्या १ लाख
१० साध्वी	सख्या १ लाख ६ प्रमुखा सुयशा
११ श्रावक	सख्या २ लाख ८९ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख ५८ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	प्रियगु
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	व्रह्मा
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	अशोका
१६ आयुष्य	१ लाख पूर्व
१७ लछन (चिह्न-Mark)	श्रीवत्स
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	प्राणत (१०वां)
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	पद्म के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	३ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	एक लाख पूर्व मे पौन पाद कम
२३ शरीर-वर्ण	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	शुक्रप्रभा
२५ नाम अर्थ	माता के कर-स्पर्श से पिता का दाह-ज्वर शान्त हो गया।

।। श्री श्रेयांसनाथ ।।
।। श्री श्रेयांसनाथ ।।

श्री श्रेयांसनाथ जिन देववंदन

चैत्यवदन—श्री श्रेयांस अग्यारमा, विष्णु नृप ताय,
विष्णु माता जेहनी, अेंशी धनुष्यनी काय ॥१ ॥

वरस चोराशी लाखनुं, पाल्यु जेणे आय,
खड़गी लछन पदरुजे, सिहपुरीनो राय ॥२ ।

राज्य तजी दीक्षा वरी अे जिनवर उत्तम ज्ञान,
पाम्या तस पद पद्मने, नमतां अविचल थान ॥३ ॥
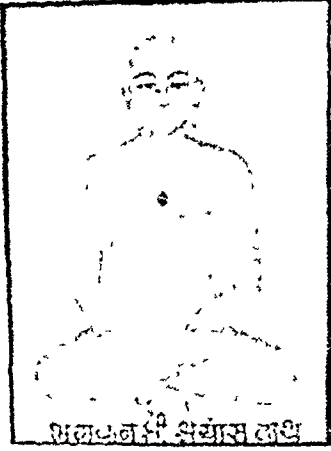
श्री श्रेयांसनाथ प्रभु चरित्र

पुष्कवर द्वीप मे पूर्वमहाविदेह क्षेत्र में क्षेमा नामक नगरी थी। वहां निलन गुल्म नामक राजा राज्य करता था। वह नीतिमान एवं गुणवान था।

एक बार वह वज्रीदत्त नामक महर्षि के पास गया। उनकी वाणी सुनकर उसे वैराग्य हुआ। वह राज्य, शरीर और संसार से विरक्त हो गया।

उनके पास उसने दीक्षा ले ली। विभिन्न प्रकार की तपस्या वे करने लगे।

वीश स्थानक मे से कुछ स्थानकों की आराधना करके उन्होने तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया। समाधिमरण प्राप्तकर वे शुक्र देवलोक देव हुए।

भरत क्षेत्र मे सिहपुर नाम का नगर था। वहां विष्णु राज नामक राजा राज्य करता था। उनकी पट्टरानी का नाम विष्णुदेवी था।

देवलोक की आयु पूर्ण कर नलिनी गुल्म विष्णुमाता की कुक्षी में ज्येष्ठ वदि-६ के दिन उत्पन्न हुए।

गर्भकाल समाप्त होने पर फाल्गुन वदि-१२ के दिन गेंडा के लंछन वाले, स्वर्णमय वर्ण वाले प्रभु को विष्णु माता ने जन्म दिया।

देवों ने, इन्द्रो ने जन्मकल्याणक महोत्सव किया। श्री विष्णु राजा ने भी वडा महोत्सव किया। प्रभु का नाम श्रेयास रखा गया।

शनै शनै श्रेयांसकुमार शैशव अवस्था पार कर युवा हुए।

भोगकर्म का उदय जानकर प्रभु ने माता-पिता के आग्रह से अनेक कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया। अनासक्त भाव से प्रभु संसार मे रहने लगे।

पिता ने उन्हें राज्य का भार भी सौप दिया । न्यायनीति से उन्होने राज्य का संचालन किया।

तत्पश्चात् वर्षीदान देकर प्रभु दीक्षा के लिए तैयार हो गए ।

विमलप्रभा नामक पालकी मे विराजित होकर नगर के बाहर सहस्त्राम्र नामक उद्यान मे पधारे।

फाल्गुन वदि-१३ के दिन एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की ।

दो दिन के उपवास का पारना प्रभु ने सिद्धार्थनगर में नंद राजा के घर खीर से किया ।

उग्र तपस्या एवं साधना प्रभु करने लगे । दो मास छद्मस्थ अवस्था में विचरने के बाद प्रभु पुन सहस्त्राम्र वन में पधारे ।

माघ मास की अमावस्या के दिन श्रवण नक्षत्र के चंद्र योग मे प्रभु ने दो दिन के उपवास किए थे, तब आत्म ध्यान करते हुए उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

उनकी समवशरण सभाओ का आयोजन होने लगा । प्रभु देशना देने लगे ।

एक बार विहार करते हुए प्रभु पोतनपुर नगर मे पधारे ! वहां त्रिपृष्ठ वासुदेव एवं अचल बलदेव प्रभु के दर्शन के लिए आए ।

त्रिपृष्ठ प्रथम वासुदेव एवं अचार्य प्रथम बलदेव थे । ये दोनों भाई थे । अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव रूप मे प्रथम थे ।

एक बार अश्वग्रीव के राज्य मे एक शेर ने उपद्रव मचाना प्रारंभ किया । सभी लोग भयभीत हो गए । शेर के भय से लोग घरों से खेत की रक्षा के लिए भी निकलते नही थे ।

प्रतिदिन शेर का उपद्रव बढ़ने लगा । खेतों की फसले नष्ट होने लगी ।

अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव तक यह बात पहुंची । अश्वग्रीव ने शेर को मारने की आज्ञा दी । राजपुरुषो ने अनेक प्रयास किए, किन्तु शेर को वे मार नही पाए । राजा के कर्मचारी निराश हो गए ।

अश्वग्रीव ने वासुदेव त्रिपृष्ठ के पिता पोतनपुर के राजा प्रजापति को संदेश भेजा कि वह शेर का सफाया करें और जन-धन की हानि को रोकें ।

प्रजापति ने जाने की तैयारी की तो त्रिपृष्ठ वासुदेव को ज्ञात हुआ तो उसने कहा—पूज्य पिताजी ! आप न जाएं । मै ही जाकर उसे नष्ट कर दूंगा । आप मुझे आज्ञा दे ।

पिता की आज्ञा से वासुदेव शेर के पास गए । गुफा के पास जाकर उसने शेर को ललकारा ।

शेर गुर्राता हुआ बाहर निकला और त्रिपृष्ठ वासुदेव पर झपटा । त्रिपृष्ठ ने अपने उपर गिरने से पूर्व ही शेर के दोनों जबड़े पकड़ लिए और चीर डाले । कुछ ही क्षणों में शेर की मौत हो गई ।

शेर को मारने पर लोग त्रिपृष्ठ पर अत्यंत प्रसन्न हुए। अंश्वग्रीव राजा यह सुनकर अत्यन्त चितित हो गया।

उसे ज्योतिषियो की वात ध्यान में आई कि शेर को मारने वाले व्यक्ति द्वारा तुम्हारी मौत होगी।

उसे आशंका हो गई कि त्रिपृष्ठ उसकी मौत का कारण बनेगा।

वह किसी भी तरह से त्रिपृष्ठ को मारने का उपाय सोचने लगा।

किसी बात पर अश्वग्रीव के आदेश की त्रिपृष्ठ ने अवज्ञा की।

अश्वग्रीव ने त्रिपृष्ठ पर आक्रमण कर दिया। दोनो मे भयंकर युद्ध हुआ।

त्रिपृष्ठ के आगे अश्वग्रीव की सेना भाग खडी हुई। अश्वग्रीव ने मारने के लिए चक्र छोड़ा जो त्रिपृष्ठ के भाग्यवल से उनके पास आकर खडा हो गया।

उसी चक्र से त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव का मस्तष्क छेद दिया।

पिता प्रजापति एवं जनता ने त्रिपृष्ठ को वासुदेव के रूप मे राज्यसिहासन पर बिराजमान किया। वे प्रथम वासुदेव बने। अचल प्रथम बलदेव बने।

एक बार त्रिपृष्ठ वासुदेव महल मे आनद मे बैठे थे। शाम का समय था। उस समय उनके पास मधुर गायक आए।

उनका सगीत एव गीतो को सुनकर वासुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए। वे संगीत का मजा लेने लगे।

उन्होंने शंय्यापालक को आज्ञा दी जब मुझे निन्द्रा आ जाय तब गायन बंद करा देना।

आज्ञा प्रदान करने के पश्चात् गायन सुनते-सुनते वासुदेव को नीद आ गई। किन्तु संगीत में आसक्त शैय्यापालको ने सगीत बंद नही कराया।

जब वासुदेव की निन्द्रा खुली तो उन्हे सगीत सुनाई दिया।

आज्ञा की अवहेलना करने पर वे शैय्यापालक पर रूष्टमान हो गए।

उन्होंने उसे भयंकर सजा दी। उन्होने राज सेवको को कहा—शैय्यापालक ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है। मेरे आदेश से भी संगीत इसे अधिक प्रिय है, अतः इसके कान मे गर्म किया हुआ तांवा एवं शीशा का रस डालो।

उनकी आज्ञा से शैय्यापालक के कान मे आग मे गर्म कर तांवा एवं शीशा का रस डाला गया, [illegible] से शैय्यापालक की मौत हो गई।

[illegible] कर्म का बंध किया।

इस पापकर्म का फल उन्हें भगवान महावीर के अन्तिम भव में भुगतना पड़ा। इस पापकर्म के उदय से उनके कानों में कीले गाडे गए।

एक बार श्रेयांसनाथ प्रभु की वाणी सुनकर वासुदेव एवं बलभद्र ने समकित प्राप्त किया। वासुदेव के निधन से बलभद्र संसार के प्रति उदासीन हो गए। प्रभु वाणी के स्मरण से उन्हें वैराग्य हुआ। आचार्य धर्मघोषजी के समीप उन्होने संयम ग्रहण किया।

प्रभु श्रेयांसनाथ ने केवलज्ञान के पश्चात् इक्कीस लाख वर्ष तक विचरण कर जगत् पर महान उपकार किया। प्रभु को गोसुत स्वामी आदि ७६ गणधर हुए।

उनके शासन में त्रिनेत्र, गौरवर्ण एवं वृषभ वाहनवाला ईश्वर नामक यक्ष था।

गौरवर्णवाली एवं शेर के वाहन वाली मानवी नामक देवी थी।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था। ८४ हजार साधु एवं एक लाख तीन हजार साध्वियां थी।

एक हजार तीन सौ चौदह पूर्वधर थे। छः हजार अवधिज्ञानी एवं छ. हजार मनः पर्यवज्ञानी थे। छ हजार और पांच सौ केवलज्ञानी थे।

ग्यारह हजार वैक्रियलब्धिवाले एवं पांच हजार वाद लब्धिवाले थे।

दो लाख उन्नासी हजार श्रावक एवं चार लाख और अड़तालीस हजार श्राविकाएं थी।

दीक्षापर्याय में इक्कीस लाख वर्ष परिपूर्ण हुए तब अंतिम समय जानकर सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे।

श्रावण मास की कृष्णा तृतीया के दिन धनिष्ठा नक्षत्र मे चन्द्र का योग था तब एक मास का अनशन कर एक हजार साधुओ के साथ प्रभु ने परमपद प्राप्त किया। मोक्ष में पधारे।

कुमार अवस्था मे प्रभु इक्कीस लाख वर्ष रहे। बेतालीस लाख वर्ष राज्यावस्था मे रहे। दीक्षापर्याय मे प्रभु इक्कीस लाख वर्ष रहे। इस प्रकार प्रभु की संपूर्ण आयु चौराशी लाख वर्ष की थी।

श्री श्रेयांसनाथ स्तवन

(चाल–जय बोलो)

श्रेय करो, श्रेय करो,
श्रेयांस प्रभुजी श्रेय करो,
तुम सम और नही कोई जग में,
घड़ी-घडी पल-पल परू तुम पग मे ।
प्रभु ध्यावे सुख पाऊं सग में,
सग में जी सग में अरू अपवन मे ॥प्रभु ॥१ ॥

नाना थानक मे हूं भमियो,
काल अनन्तो विरथा गमियो,
राग-द्वेष मद-मोह मे दमियो,
दमियो जी दमियो,
अति दु ख खमियो ॥प्रभु ॥२ ॥

पृथ्वी अप तेउ मे रूलियो,
वायु वणकाया मे फुलियो ।
बीती चउ पंचेंद्री रूलियो,
रूलियो जी रूलियो,
पशु मे भुलियो ॥प्रभु ॥३ ॥

मनुज अनारडा कुल मे आयो,
पाप कियो कुकर्म कमायो ।
सद्गुरु जोग वहां नही पायो ।
पायोजी पायो कुगुरु भरमायो ॥प्रभु ॥४ ॥

इत्यादि बहु दु ख मे सहिया,
सुरगुरु पार न पावे कहियां ।
पुण्य उदय कर अब मैं लहिया,
[illegible] जी [illegible]
[illegible] ॥प्रभु ॥५ ॥

[illegible]

सद्गुरु जोग मिल्यो सुखदायी ।
तुम दर्शन शुभ समकित पायी,
पायी जी पायी चरण छुछायी ॥प्रभु ॥६ ॥

कर करूणा प्रभु विष्णु नंदन,
तू जगबांधव भव दु:ख कंदन ।
शुभभावे करते भवि वन्दन,
वंदन जी वंदन कटे भव फदन ॥प्रभु ॥७ ॥

वल्लभ सेवक अरज सुनीजे,
करूणा टुक सेवक पर कीजे,
आतम पद निज सम कर लीजे,
लीजे जी लीजे शिव सुख दीजे ॥प्रभु ॥८ ॥

स्तुति

भव-रोगाऽऽर्त्त—जन्तूनामगदङ्कार—दर्शनः ।
निःश्रेयस-श्री रमणः, श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तुवः ॥

प्रार्थना

श्री श्रेयांसजिनेश्वर भगवन्, इस सृष्टि का श्रेय करे
विष्णुनंदन के नयनो में, करूणा का सागर उभरे ।

सिहपुरी के राजा ओ गुणनिधि ! हम पर महर करो
दर्श के प्यासे कब से खड़े हम, जरा इधर भी नजर करो ॥

परिचय

१ माता का नाम	विष्णु रानी
२ पिता का नाम	विष्णु राजा
३ च्यवन कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा ६/सिहपुर
४ जन्म कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा १२/सिहपुर
५ दीक्षा कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा १३/सिहपुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	माघ कृष्णा ३0सिहपुर
७ निर्वाण कल्याणक	श्रावण कृष्णा ३/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ७६ प्रमुख कच्छप
९ साधु	सख्या ८४ हजार प्रमुख कच्छप
१० साध्वी	सख्या १ लाख ३ हजार प्रमुख धारणी
११ श्रावक	सख्या २ लाख ७९ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख ४८ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	तिदूक
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	यक्षराज
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	मानवी
१६ आयुष्य	८४ लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न)	गेडा
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	अच्युत (बारहवा)
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	नलिनी गुल्म के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	२ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	६३ लाख वर्ष
२३ शरीर वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	विमलप्रभा
२५ [illegible]	माँ ने अपने आपको श्रेष्ठ करनेवाली देवशय्या में सोते हुए देखा
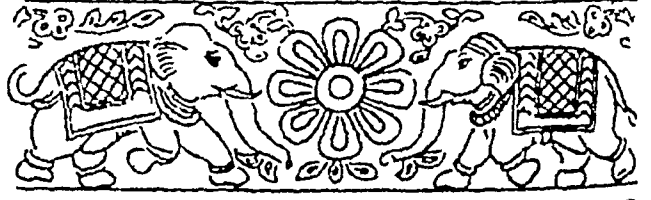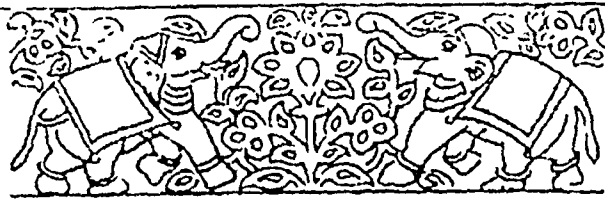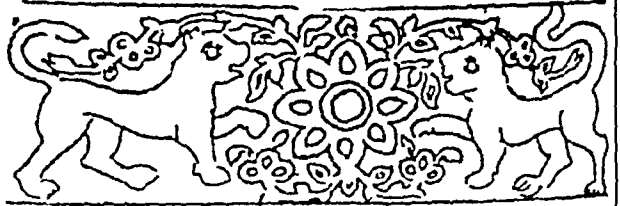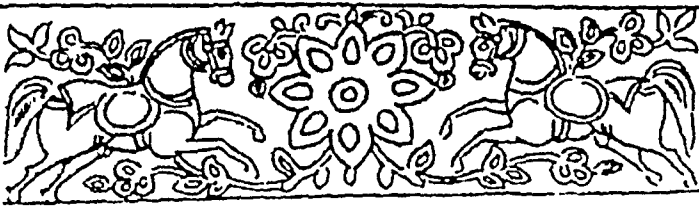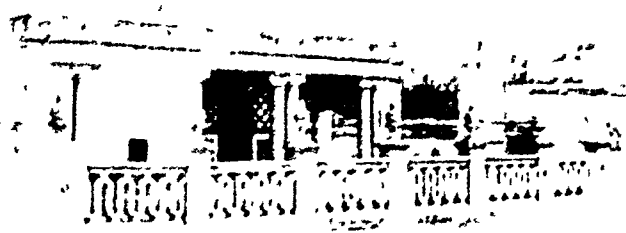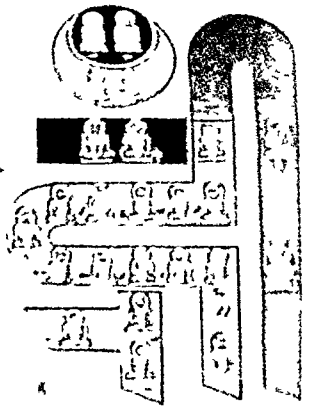
श्री वासुपूज्य जिन देववंदन

चैत्यवंदन–वासव वंदित वासुपूज्य, चंपापुरी ठाम,
वासुपूज्य कुल चदमा, माता जया नाम ॥१ ॥

महिष लंछन जिन बारमा, सितेर धनुष प्रमाण,
काया आय वरस वली, बहोत्तेर लाख वखाण ॥२ ॥

संघ चतुर्विध थापीने अे, जिन उत्तम महाराय,
तस मुख पदम वचन सुणी, परमानंदी थाय ॥३ ॥
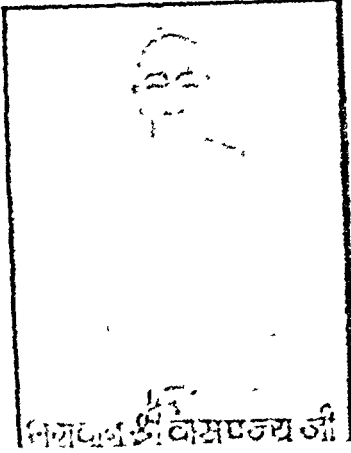
वासुपूज्य स्वामी चरित्र

पुष्करवर द्विप मे पुष्कलावती नाम की विजय है ।

वहा रत्न संचया नामक नगरी थी । पध्मोत्तर नामक राजा वहां राज करता था । वह न्याय नीति से राज्य का पालन करता था ।

एक बार अस्थिर एवं असार ससार का विचार करते हुए उसे वैराग्य हुआ । श्री वज्रनाभ गुरु महाराज के चरणो मे उन्होने दीक्षा स्वीकार की ।

सयम की निर्मल आराधना करने लगे । उग्र साधना कर आत्मा को विशुद्ध किया । विशस्थानक की आराधना मे उन्होने तीर्थकर नाम कर्म का बंध किया ।

समाधिमरण प्राप्त कर वे प्राणत नामक देवलोक मे उत्पन्न हुए ।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे चंपा नामक नगरी है । वहां वसुपूज्य नामक राजा राज्य करता था । जया नामक उनकी महारानी थी ।

पद्मोत्तर राजा प्राणत देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर जेठ मास की कृष्ण पक्ष की नवमी के दिन जयादेवी महारानी के गर्भ मे उत्पन्न हुए ।

गर्भ काल पूर्ण होने पर फाल्गुन मास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र मे एव कुम्भराशि [illegible] का योग था । जया माता ने मणी की कांति वाले एवं भैसा (महिष) के चिह्न वाले प्रभु को जन्म दिया ।

[illegible] ने प्रभु का जन्म महोत्सव किया । तत्पश्चात् राजा ने भी प्रभु का जन्म महोत्सव [illegible]

शुभ दिन में माता-पिता ने उनका नाम वासुपूज्य रखा।

क्रम से बढ़ते हुए प्रभु ने युवावस्था प्राप्त की। माता व पिता की प्रार्थना से प्रभु ने राजकन्याओं से विवाह किया। शादी की। किन्तु पिता द्वारा अर्पित राज्य को उन्होंने ग्रहण नही किया।

संसार में रहते हुए भी प्रभु जल में कमल की तरह निर्लिप्त थे। अतः प्रभु ने समय पर दीक्षा की तैयारी की।

फाल्गुन मास की अमावस्या के दिन पृथ्वी नामक पालकी मे बिराजित होकर विहार गृह नामक उद्यान में पधारे।

दिन के अन्तिम समय मे शतभिषा नक्षत्र मे चन्द्र के योग मे छ सौ राजाओ के साथ प्रभु ने उपवास करके दीक्षा ग्रहण की।

दूसरे दिन महापुर नगर में सुनंद राजा के भवन में प्रभु ने पारना किया।

छद्मस्थ अवस्था में एक मास तक अन्यत्र विहार करके पुनः विहार गृह उद्यान में पधारे। पाटल (गुलाब) वृक्ष के नीचे प्रभु ध्यान में स्थिर थे। शतभिषा नक्षत्र मे चन्द्र का योग था।

माघ शुक्ला द्वितीया के दिन उस समय प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने मानव जीवन की दुर्लभता एवं धर्म की महत्ता बताई। अनेको भवि जीवों ने प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की। श्री सूक्ष्म स्वामी आदि उनके ६६ गणधर हुए।

उनके शासन में श्यामवर्णी एवं हंस वाहन वाला कुमार नामक यक्ष था।

श्याम कांति वाली एवं अश्व वाहन वाली चंडा नामक देवी थी।

एक बार विहार करते हुए प्रभु द्वारिका समीप पधारे समवसरण की रचना हुई।

राजपुरुषों ने द्विपृष्ट वासुदेव को प्रभु के आगमन के समाचार दिए। उसने प्रसन्न होकर राजपुरुषो को साढ़े बारह क्रोड़ स्वर्ण म्होरे दी।

विजय बलभद्र के साथ वासुदेव ने प्रभु की वाणी सुनी। सम्यक्त्व प्राप्त किया। बलभद्र ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था—बहत्तर हजार साधु एवं एक लाख साध्वियां थी।

एक हजार और दो सौ चौदह पूर्वधर, पांच हजार और चार सौ अवधिज्ञानी, छहजार एक सौ मनःपर्यव ज्ञानी, छ हजार केवलज्ञानी, दश हजार वैक्रियलब्धि वाले एवं चार हजार और सात सौ वाद लब्धि वाले थे।

दो लाख और पन्द्रह हजार श्रावक एवं चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं की संख्या थी।

दीक्षा एवं केवली पर्याय मे चौपन लाख वर्ष परिपूर्ण हुए तब अंतिम समय जानकर प्रभु चंपा गरी मे पधारे। छ सौ मुनियों ने भी एक मास के उपवास के साथ प्रभु के साथ अनशन किया।

ध्यान मे स्थिर प्रभु एवं मुनियों ने आषाढ़ मास की शुक्ला चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल उत्तरा ाद्रपद के चन्द्रयोग मे मोक्षपद प्राप्त किया। अठारह लाख वर्ष प्रभु कुमार अवस्था में रहे। संयम र्याय, ५४ लाख वर्ष रहे। श्री वासुपूज्य भगवान की संपूर्ण आयु ७२ लाख वर्ष थी।

श्री वासुपूज्य स्तवन

(तर्ज - नाटक का आशक तो हो चुका हूं)

वासुपूज्य स्वामी मेरे, गुण गाऊं नित्य तेरे
काटो चौरासी फेरे, कर लो सेवक को नेरे।
माता जया के नंदा, वासुपूज्य कुल चंदा
सेवें सुरींद वृन्दा,
कटे जन्म मरण फंदा... ॥वासु ॥१ ॥

सुर इंद पाय पूजे, भवि जीव बात बूझे।
प्रभु देख पाप धुजे,
कर्मों का व्रण रूझे... ॥वासु ॥२ ॥

पूजा करत जोई, सफल हाथ सोई।
देखे प्रभु को जोई,
सफल आंख वोई . ॥वासु ॥३ ॥

[illegible] एक भासे, निश्चय नय प्रकाशे।
[illegible] कर्म नासे,
सेवक प्रभु के पासे ... ॥वासु ॥४ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible] ... ॥वासु ॥५ ॥

शुभ दिन में माता-पिता ने उनका नाम वासुपूज्य रखा।

क्रम से बढ़ते हुए प्रभु ने युवावस्था प्राप्त की। माता व पिता की प्रार्थना से प्रभु ने राजकन्याओं से विवाह किया। शादी की। किन्तु पिता द्वारा अर्पित राज्य को उन्होंने ग्रहण नही किया।

संसार में रहते हुए भी प्रभु जल में कमल की तरह निर्लिप्त थे। अतः प्रभु ने समय पर दीक्षा की तैयारी की।

फाल्गुन मास की अमावस्या के दिन पृथ्वी नामक पालकी मे बिराजित होकर विहार गृह नामक उद्यान मे पधारे।

दिन के अन्तिम समय में शतभिषा नक्षत्र मे चन्द्र के योग में छ सौ राजाओं के साथ प्रभु ने उपवास करके दीक्षा ग्रहण की।

दूसरे दिन महापुर नगर मे सुनंद राजा के भवन में प्रभु ने पारना किया।

छद्मस्थ अवस्था में एक मास तक अन्यत्र विहार करके पुनः विहार गृह उद्यान में पधारे। पाटल (गुलाब) वृक्ष के नीचे प्रभु ध्यान में स्थिर थे। शतभिषा नक्षत्र में चन्द्र का योग था।

माघ शुक्ला द्वितीया के दिन उस समय प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने मानव जीवन की दुर्लभता एवं धर्म की महत्ता बताई। अनेको भवि जीवों ने प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की। श्री सूक्ष्म स्वामी आदि उनके ६६ गणधर हुए।

उनके शासन में श्यामवर्णी एवं हंस वाहन वाला कुमार नामक यक्ष था।

श्याम कांति वाली एवं अश्व वाहन वाली चंडा नामक देवी थी।

एक बार विहार करते हुए प्रभु द्वारिका समीप पधारे समवसरण की रचना हुई।

राजपुरुषो ने द्विपृष्ट वासुदेव को प्रभु के आगमन के समाचार दिए। उसने प्रसन्न होकर राजपुरुषो को साढ़े बारह क्रोड़ स्वर्ण म्होरे दी।

विजय बलभद्र के साथ वासुदेव ने प्रभु की वाणी सुनी। सम्यक्त्व प्राप्त किया। बलभद्र ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था—बहत्तर हजार साधु एवं एक लाख साध्वियां थी।

एक हजार और दो सौ चौदह पूर्वधर, पांच हजार और चार सौ अवधिज्ञानी, छहजार एक सौ मनःपर्यव ज्ञानी, छ हजार केवलज्ञानी, दश हजार वैक्रियलब्धि वाले एवं चार हजार और सात सौ वाद लब्धि वाले थे।

दो लाख और पन्द्रह हजार श्रावक एवं चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं की संख्या थी।

दीक्षा एवं केवली पर्याय में चौपन लाख वर्ष परिपूर्ण हुए तब अंतिम समय जानकर प्रभु चंपा नगरी में पधारे। छ सौ मुनियों ने भी एक मास के उपवास के साथ प्रभु के साथ अनशन किया।

ध्यान में स्थिर प्रभु एवं मुनियों ने आषाढ़ मास की शुक्ला चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल उत्तरा भाद्रपद के चन्द्रयोग में मोक्षपद प्राप्त किया। अठारह लाख वर्ष प्रभु कुमार अवस्था में रहे। संयम पर्याय, ५४ लाख वर्ष रहे। श्री वासुपूज्य भगवान की संपूर्ण आयु ७२ लाख वर्ष थी।

श्री वासुपूज्य स्तवन

(तर्ज- नाटक का आशक तो हो चुका हूं)

वासुपूज्य स्वामी मेरे, गुण गाऊं नित्य तेरे
काटो चौरासी फेरे, कर लो सेवक को नेरे।
माता जया के नंदा, वासुपूज्य कुल चंदा
सेवे सुरीद वृन्दा,
कटे जन्म मरण फंदा... ॥वासु ॥१ ॥

सूर इंद पाय पूजे, भवि जीव बात बूझे।
प्रभु देख पाप धुजे,
कर्मो का व्रण रूझे... ॥वासु ॥२ ॥

पूजा करत जोई, सफल हाथ सोई।
देखे प्रभु को जोई,
सफल आंख वोई... ॥वासु ॥३ ॥

सरूप एक भासे, निश्चय नय प्रकाशे।
व्यवहार कर्म नासे,
सेवक प्रभु के पासे... ॥वासु ॥४ ॥

सरणलई मै तोरी, पकड़ो जी बांह मोरी।
प्रीतम से प्रीति जोरी,
कुमति को संग छोरी... ॥वासु ॥५ ॥

प्रीतम प्रभुजी जोवे, आतम वल्लभ होवे ।
दुःख दंद फंद खोवे ।
मोह राय बेड़ा रोवे... ॥वासु ॥६ ॥

स्तुति

विश्वोपकारकी भूत-तीर्थकृत्-कर्म निर्मितिः ।
सुरासुर-नरै पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ॥

प्रार्थना

वासुपूज्य प्रभु उपकारी, बारहवें तीर्थकर थे जो
असीम पुण्यशाली प्रभुवरजी, जन जन के वल्लभ थे वो
रोहणी नक्षत्र के समय में, आराधना उनकी करना
दुष्कर्मो को दूर हटाना, प्रसन्नता से मन भरना ॥

परिचय

१ माता का नाम	जया रानी
२ पिता का नाम	वसुपूज्य राजा
३ च्यवन कल्याणक	ज्येष्ठ शुक्ला ६/चपापुरी
४ जन्म कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा १४/चपापुरी
५ दीक्षा कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा ३०/चपापुरी
६ केवलज्ञान कल्याणक	माघ शुक्ला २/चपापुरी
७ निर्वाण कल्याणक	आषाढ शुक्ला १४/चपापुरी
८ गणधर	सख्या ६६ प्रमुख सुभूम
९ साधु	सख्या ७२ हजार
१० साध्वी	सख्या १ लाख प्रमुख धरणी
११ श्रावक	सख्या २ लाख १५ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख ३६ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	पाटल
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	कुमार
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	चडा
१६ आयुष्य	७२ लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	महिष
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	प्राणत (१०वा)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	प्रशमोत्तर के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	१८ लाख वर्ष
२३ शरीर-वर्ण	लाल
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	पृथिवी
२५ नाम-अर्थ	वसुपूज्य के पुत्र होने से/वसुदेवता द्वारा पूजित,

षण्मुख यक्ष
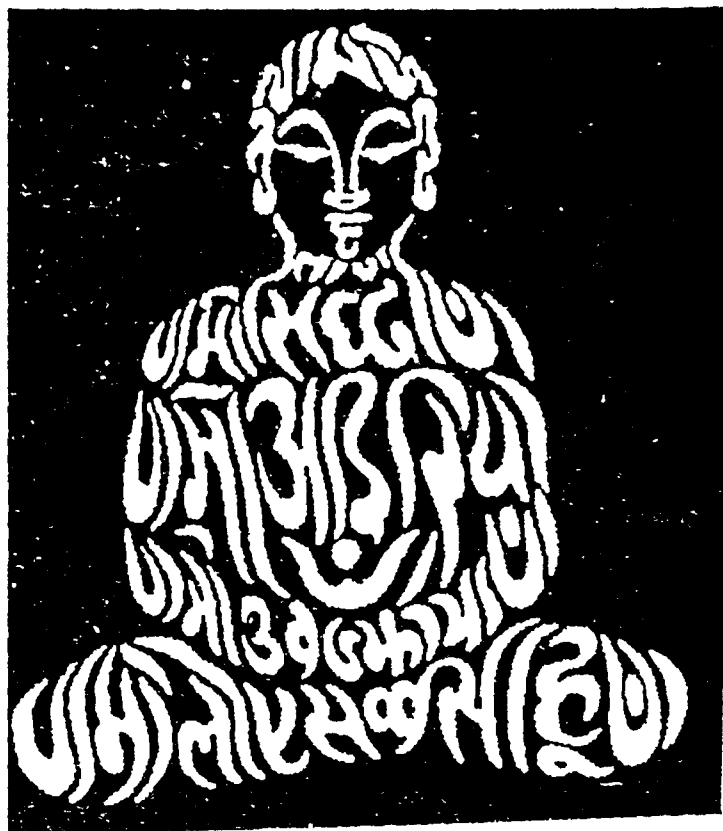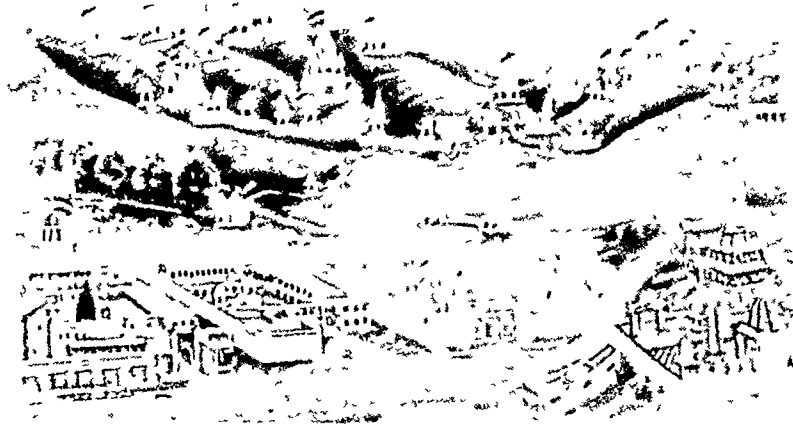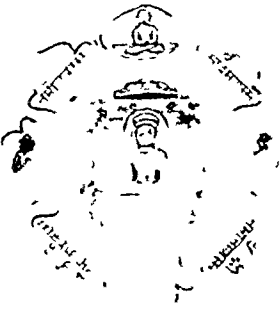
VIMALSWAMINO VACHAH (KATALAKSHOD) SODARA
JAYANTI TRI JAGAT-CHETO JALANAIRMALYA HETAVAH

विमलस्वामिनो वाच:, कतलक्षोदसोदरा ।
जयन्ति त्रिजगच्चेतो-जलनैर्मल्यहेतव: ॥१३॥

श्री विमलनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—कंपिलपुर विमल प्रभु, श्यामा मात मल्हार,
कृत वर्मा नृपकुल नभे, उगमीयो दिनकार ॥१ ॥

लंछन राजे वराहनुं, साठ धनुष नी काय,
साठ लाख वरसां तणुं, आयु सुखदाय (सुख समुदाय) ॥२ ॥

विमल विमल पोते थयाअे, सेवक विमल करेह,
तेज पद पद्म विमल प्रति सेवुं धरी ससनेह ॥३ ॥
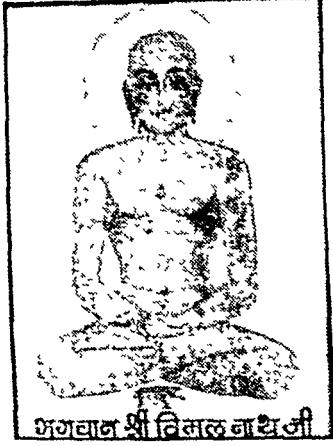
श्री विमलनाथ प्रभु चरित्र

पूर्वभव मे विमलनाथ प्रभु पूर्व महाविदेह में महापुरी नगरी के राजा थे। उनका नाम था पद्मसेन। न्होने न्यायनीति से प्रजा का पालन किया। श्री सर्वगुप्तजी गुरु के समागम से उन्हें वैराग्य हुआ। उनके ास उन्होने दीक्षा ग्रहण की। समाधि मरण प्राप्त कर वे सहस्त्रार नामक देवलोक मे उत्पन्न हुए।

भरत देश मे कपिलपुर नामक नगर था। जहां कृतवर्मा राजा राज करता था। उसे श्यामा नामक ानी थी। पद्मसेन राजा की आत्मा सहस्त्रार देवलोक से मरकर वैशाख मास की शुक्ला द्वादशी के दिन श्यामा रानी की कुक्षि में अवतरित हुई। गर्भकाल पूर्ण होने पर माघ शुक्ला तृतीया के दिन श्यामा माता ने स्वर्णमय कांति वाले एवं सुअर के चिन्ह वाले प्रभु को जन्म दिया।

प्रभु जब गर्भ मे आए तब माता जी विमल (निर्मल) हुए। अतः पिता ने उनका नाम विमल रखा। प्रभु जब युवावस्था को प्राप्त हुए तब माता पिता के आग्रह से उन्होंने राजकन्याओ से विवाह किया। पिता ने उन्हे राजसत्ता सौप दी। पिता की आज्ञा से वे राजसत्ता स्वीकार कर सुचारू रूप से राज्य का संचालन करने लगे। बहुत समय तक गृहस्थ अवस्था में रहे। एक दिन नश्वर जीवन एवं संसार परित्याग की ॅना वाले प्रभु ने दीक्षा लेने की तैयार की।

देवदत्ता नामक पालकी में बैठकर माघ मास की शुक्ला चतुर्थी के दिन सहस्त्राम्र वन मे पधारे। वेला दो उपवास की तपस्या करके प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। प्रभु ने बेले का पारना धान्यकर नगर मे जयक्षोणि नामक राजा के महल में किया। दो मास तक प्रभु ने कठोर साधना ी। ग्राम नगर एवं वनो मे विचरण करते हुए प्रभु पुनः सहस्त्राम्र वन मे पधारे। वहां जंबु वृक्ष के नीचे ानस्थ अवस्था मे प्रभु बिराजमान हुए।

पौष मास की शुक्ला षष्ठी के दिन प्रातः काल बेले की तपस्या वाले प्रभु को लोकालोक स्वरू केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने समवशरण की रचना की। प्रभु की वाणी सुनकर हजारों भविजनो ने दीक्ष ग्रहण की।

श्री मंदिर आदि प्रभु के सत्तावन गणधर हुए। उनके शासन में श्वेत वर्णवाला एवं मयुर वाहनवाल षण्मुख नामक यक्ष हुआ। कमल के आसनवाली एवं स्वर्णमय कांति वाली विदिता नामक देवी थी।

श्री. विमलनाथ प्रभु का परिवार इस प्रकार था। अडसठ हजार साधु एवं एक लाख और आठ स साध्वी थी। ग्यारह सौ चौदह पूर्वधर, अडतालीस सौ अवधिज्ञानी एवं पांच हजार पांच सौ मन.पर्यवज्ञान थे।

पांच हजार एवं पांच सौ ही केवलज्ञानी थे। नौ हजार वैक्रिय लब्धिवाले एवं तीन हज़ार दो सौ वाद लब्धिवाले थे। दो लाख आठ हजार श्रावक एवं चार लाख और चौतीस हजार श्राविकाएं थी। वर्षों तक विचरण कर जगत् पर प्रभु ने अनंत उपकार किया।

अंत समय जानकर प्रभु सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे। छ हजार मुनियों सहित प्रभु ने एक मास का अनशन किया। आषाढ़ मास की कृष्णा-सप्तमी के दिन छ हजार मुनियों के साथ विमलनाथ प्रभु ने मोक्ष पद प्राप्त किया।

कुमार वस्था में प्रभु पन्द्रह लाख वर्ष तक रहे। राज्य अवस्था में तीस लाख वर्ष तक रहे। संयम एवं केवली पर्याय में पन्द्रह लाख वर्ष तक रहे। प्रभु की संपूर्ण आयु साठ लाख वर्ष की थी।

श्री विमलनाथ स्तवन

वदूं जी शिवदायक विमलनाथ महाराज।
जिनों के निश दिन शचिपति,
सुर नर पूजे पाय ॥वदूं ॥

विष विषधर हरि भय नावे,
लक्ष्मी पूजा से पावे।
हरख मन भावे ॥शिव ॥

जन्म जन्म प्रभु में चाहूं,
खरे आप मेरे सिर नाहूं।
रखो गृहि बाहूं ॥शिव ॥

या विध मन में प्रभु सेवा,
मीनो जल जिम गज रेवा,
खपे अध देवा ॥शिव ॥

नंदन वन सम प्रभु राजे,
विबुधादिक पर्षद गाजे ।
विपद सब माजे ॥शिव ॥
दरिसन अमिरस प्रभु न्यारा,
जग जीवन प्राण आधारा ।
जनम फल सारा ॥शिव ॥
सूरत मन मोहन गारी ।
यम जन्म जरा दुःख वारी ।
यज के सुख धारी ॥शिव ॥

रिखीसर वल्लभ ईसा,
जिन चरण कमल धरूं सीसा ।
जीवन जगदीसा ॥शिव ॥

आदि पद हिरदे घर के,
मांगु सुख तुम पग परके ।
करम जाय सरके ॥शिव ॥

स्तुति

विमलस्वामिनो वाचः, कतक-क्षोद-सोदराः ।
जयन्ति त्रिजग्च्चेतो-जल-नैर्मल्य-हेतवः ॥

प्रार्थना

विमलनाथ है वत्सलदायक, वारि बहाए समता के
तेरहवें तीर्थकर का दर्शन, तोडे बंधन ममता के ।
श्यामामाता के ओ लाडले, कृतवर्मा के कुल-दीपक
एक वार तो आन बसो, प्यारे प्रभुवर मन के भीतर ॥

परिचय

१ माता का नाम	श्यामा रानी
२ पिता का नाम	कृतवर्म राजा
३ च्यवन कल्याणक	वैशाख शुक्ला १२/कपिलपुर
४ जन्म कल्याणक	माघ शुकला ३/कपिलपुर
५ दीक्षा कल्याणक	माघ शुक्ला ४/कपिलपुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष शुक्ला ६/कपिलपुर
७ निर्वाण कल्याणक	आषाढ कृष्णा ७/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ५७ प्रमुख श्री मदर
९ साधु	सख्या ६८ हजार प्रमुख मंदर
१० साध्वी	सख्या १ लाख ८ सौ प्रमुख धरा
११ श्रावक	सख्या २ लाख ८ हजार
१२ श्राविका	संख्या ४ लाख २४ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	जबू
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	षण्मुख
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	विदिता
१६ आयुष्य	६० लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	वराह (शूकर)
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सहस्रार (८वा)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	पद्मसेन के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	२ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	४५ लाख वर्ष
२३ शरीर-वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	देवदिन्ना
२५ नाम-अर्थ	गर्भ मे आने पर माता का शरीर एव मन विमल (स्वच्छ) बन गया।

॥ श्री अनंतनाथ ॥

पाताल यक्ष
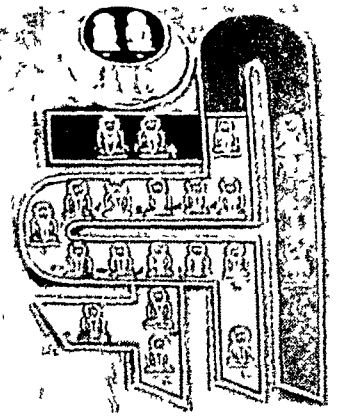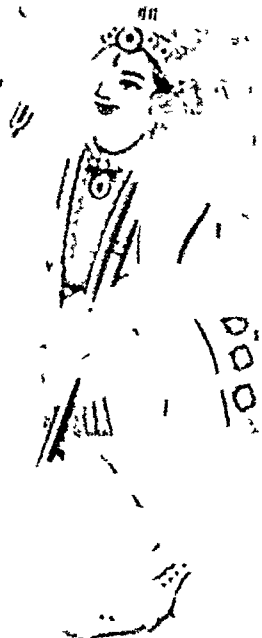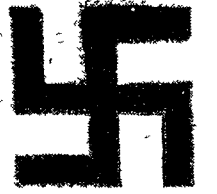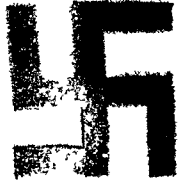
अंकुशा देवी

॥ श्री अनंतनाथ ॥

SWAYAMBHU RAMANASPARDHI KARUNARASA VARINA
ANANTA JIDANTAMVAH PRAYACHHATU SUKHASHRIYAM

स्वयंभूरमणस्पर्द्धि-करुणारसवारिणा ।
अनन्तजिदनन्तां वः प्रयच्छतु सुखश्रियम् ॥१४॥

श्री अनंतनाथ जिन स्तवन

चैत्यवंदन—अनंत अनंत गुण आगरु, अयोध्यावासी,
सिहसेन नृप नंदनो, थपो पाप निकासी ॥१ ॥

सुजसा माता जनमीयो त्रीश लाख, उदार,
वरस आउखुं पालीयुं, जिनवर जयकार ॥२ ॥

लंछन सिचाणा तणुं अे, काया धनुष पचास, जिन
पद पद्म नम्पा थकी, लहीअे सहज विलास ॥३ ॥

श्री अनंतनाथ प्रभु चरित्र

धातकी खण्ड के पूर्वमहाविदेह क्षेत्र मे अरिष्टा नगरी में पद्मरथ नामक राजा राज करता था ।

श्री चित्तरक्ष नामक मुनि के समागम से उन्हे वैराग्य हुआ । राजा ने उनके पास दीक्षा ग्रहण की ।

उग्र साधना से उन्होंने जीवन को निर्मल किया । अरिहंत पद एव वीशस्थानक पदों की आराधना से तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया ।

समाधिमरण से वे प्राणत नामक देवलोक मे उत्पन्न हुए ।

भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी में सिहसेन नामक राजा था । सुयश नामक उसकी रानी थी ।

पद्मरथ की आत्मा प्राणत देवलोक से च्यवकर श्रावण मास की कृष्णा सप्तमी के दिन सुयशा की कुक्षि मे उत्पन्न हुई ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर वैशाख मास की कृष्णा पक्ष की त्रयोदशी के दिन रेवती नक्षत्र मे स्वर्णमय कांतिवाले एवं बाजपक्षी के चिन्ह से युक्त प्रभु को जन्म दिया ।

प्रभु जब गर्भ मे थे, तब पिता ने राजाओं को परास्त किया । उनके अनंतबल को जीता । अत· पिता ने उनका नाम अनतजित् रखा ।

दुज के चन्द्र की तरह बढ़ते हुए प्रभु ने युवावस्था प्राप्त की । माता-पिता के आग्रह से उन्होने राजकन्याओ से विवाह किया एवं उनकी प्रसन्नता के लिए प्रभु ने राज्य सत्ता भी संभाली ।

संसार मे रहते हुए प्रभु को पुत्रो की प्राप्ति हुई । युवापुत्र को राज्य सौपकर प्रभु ने दीक्षा की तैयारी की । सागर दत्ता नामक पालकी में बैठकर प्रभु नगर बाहर निकले । सहस्त्राम्र नामक उद्यान में पधारे ।

वैशाख मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन एक हजार राजाओं के साथ वेले की तपस्या करके प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की ।

विजय नामक राजा के वहां प्रभु ने बेले के तप का पारना किया ।

तीन वर्ष तक प्रभु ने उग्र साधना की । ग्राम नगरों में विचरण करते हुए प्रभु सहस्राम्र वन में पधारे। अशोक वृक्ष के नीचे प्रभु आत्मध्यान में स्थिर हो गए । वैशाख मास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रभु को केवलज्ञान हुआ ।

प्रभु की वाणी सुनकर अनेक जीवो ने संयम स्वीकार किया । वासुदेव श्री पुरुषोतम एवं बलभद्र सुप्रभ ने भी प्रभु की वाणी सुनकर सम्यक्त्व प्राप्त किया । वे चौथे वासुदेव एवं बलभद्र थे ।

श्री यशस्वामी आदि पचास प्रभु के गणधर थे ।

उनके शासन में तीन मुख वाला, रक्तवर्णवाला एवं मकर वाहनवाला पाताल नामक यक्ष था, जो शासन रक्षक था ।

गौरवर्ण वाली एवं कमल के आसन पर बिराजमान अंकुशा नामक शासनदेवी थी ।

प्रभु का परिवार इस प्रकार था— छियासठ हजार साधु एवं बासठ हजार साध्वियां थी ।

नौ सौ चौदह पूर्वधर थे । ४३०० अवधिज्ञानी थे । पैतालीस सौ मनःपर्यवज्ञानी एवं पांच हजार केवलज्ञानी थे ।

आठ हजार वैक्रियलब्धिवाले एवं तीन हजार दो सौ वाद लब्धिवाले थे ।

दो लाख छः हजार श्रावक एवं चार लाख चौदह हजार श्राविकाएं थी ।

अंत समय प्रभु सम्मेतशिखर पर पधारे । एक मास का प्रभु ने अनशन किया ।

चैत्रमास की शुक्ला पंचमी के दिन सात हजार मुनियों के साथ प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया ।

कुमार अवस्था में प्रभु साढ़े सात लाख वर्ष रहे, राज्य अवस्था में पन्द्रह लाख वर्ष रहे, साढे सात लाख वर्ष संयम एवं केवलीपर्याय में रहे, इस प्रकार अनंतनाथ प्रभु की संपूर्ण आयु तीश लाख वर्ष की थी ।

श्री अनन्तनाथ स्तवन

(तर्ज :- हे री सखी नैनों से नैन मिल गयो. . .)

हे री प्रभु भवजल पार उतार ले,
सेवक जान के मोहे ।
अपना जान के मोहे,
अजी हां भवजल पार उतार ले ।
मै सेवक प्रभु तुम चरणों का,
और नही कोई ठोर ।
जो होवो जब तुम सरीखा तो,
क्यों आवां तुम ओर ।
हे री प्रभु अपना ही,
बिरूद चितार ले. . . ॥सेवक ॥१ ॥

तारण तरण कहावो प्रभुजी,
तारो नही क्यों मोय ।
विन तारे निष्फल नामो के,
क्या धारे गुण होय ।
हे री प्रभु सेवक की,
अब सार ले. . . ॥सेवक ॥२ ॥

अष्ट कर्म ने घेरा प्रभुजी,
मोहे छोड़ावो आप ।
जग सरणा नही और किसी का,
तुम ही माय मेरे बाप ।
हे री प्रभु यह,
अरदास स्वीकार ले. . . ॥सेवक ॥३ ॥

नही छोडूं प्रभु भव-भव के मांहि,
चरण कमल तुम सार ।
कर करूणा करूणाकर स्वामी,
जनम मरण दुःख टार ।
हे री प्रभु देवाधिदेव,

करार ले... ॥सेवक ॥४ ॥

अनन्तनाथ प्रभु नाम घरावो,
दो अनन्त फल आज ।
आतम लक्ष्मी शिवसुख थामी,
सतचित आनन्द राज ।
हे री प्रभु आतम,
वल्लभ धार ले... ॥सेवक ॥५ ॥

स्तुति

स्वयम्भूरमण-स्पर्द्धी, करुणारस-वारिणा ।
अनन्तजिदनन्तां वः प्रयच्छतु वः सुख-श्रियम् ॥

प्रार्थना

अनंतनाथ अनंतसुखदाता अक्षयपद से युक्त हुए
जन्म जरा मृत्यु के बंधन से प्रभुवर तुम मुक्त हुए,
सिहसेन और सुयशारानी के नंदन हो पावनकारी
अयोध्या के राजा तुम पर संघ चतुर्विध बलिहारी ॥

परिचय

१ माता का नाम	सुयशा रानी
२ पिता का नाम	सिहसेन राजा
३ च्यवन कल्याणक	श्रावण कृष्ण ७/अयोध्या
४ जन्म कल्याणक	वैशाख कृष्णा १३/अयोध्या
५ दीक्षा कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/अयोध्या
६ केवलज्ञान कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/अयोध्या
७ निर्वाण कल्याणक	चैत्र शुक्ला ५/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ५० प्रमुख जस
९ साधु	सख्या ६६ हजार प्रमुख जस
१० साध्वी	सख्या ६२ हजार प्रमुख पद्मा
११ श्रावक	सख्या २ लाख ६ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख १४ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	अश्वत्थ (पीपल)
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	पाताल
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	अकुशा
१६ आयुष्य	३० लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	बाजपक्षी
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	प्राणत (१०वा)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	पद्मरथ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	३ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	२२ लाख ५० हजार वर्ष
२३ शरीर-वर्ण	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	सागरदत्ता
२५ नाम-अर्थ	गर्भ मे आने पर मा ने अनत मणियो की माला देखी।

॥ श्री घर्मनाथ ॥

किन्नर यक्ष
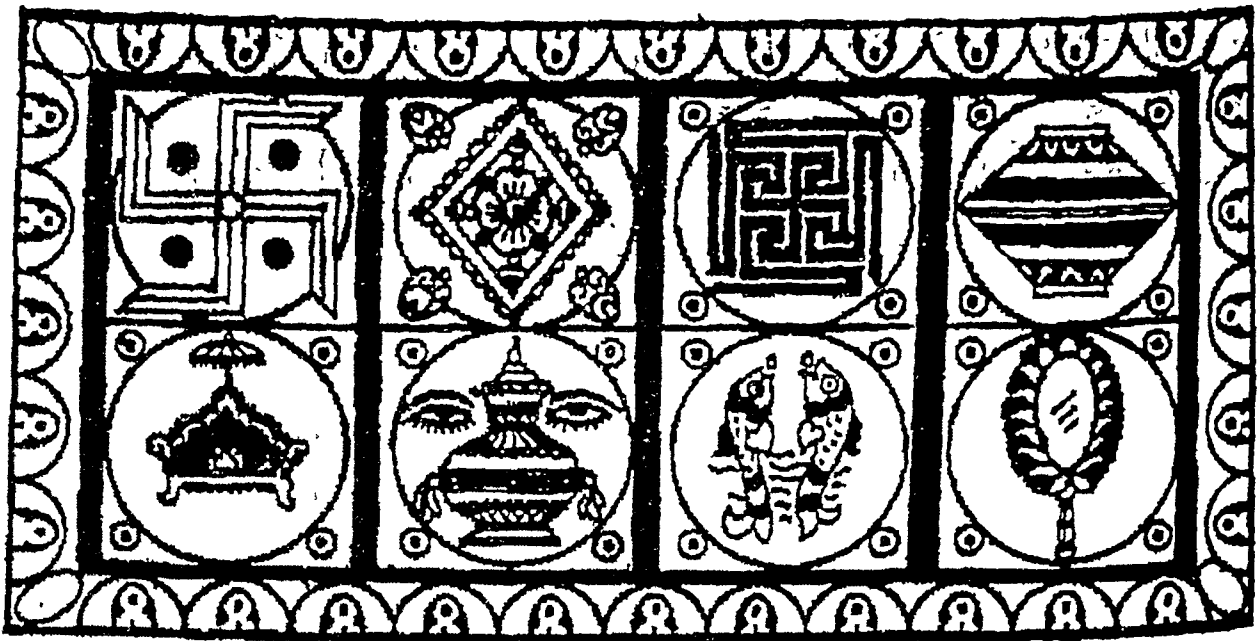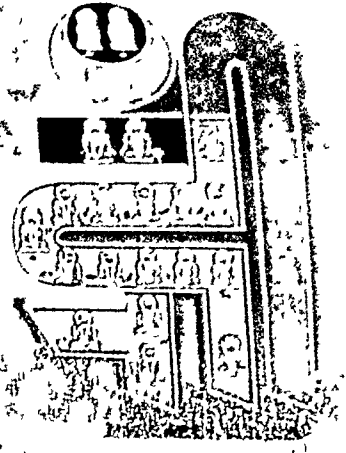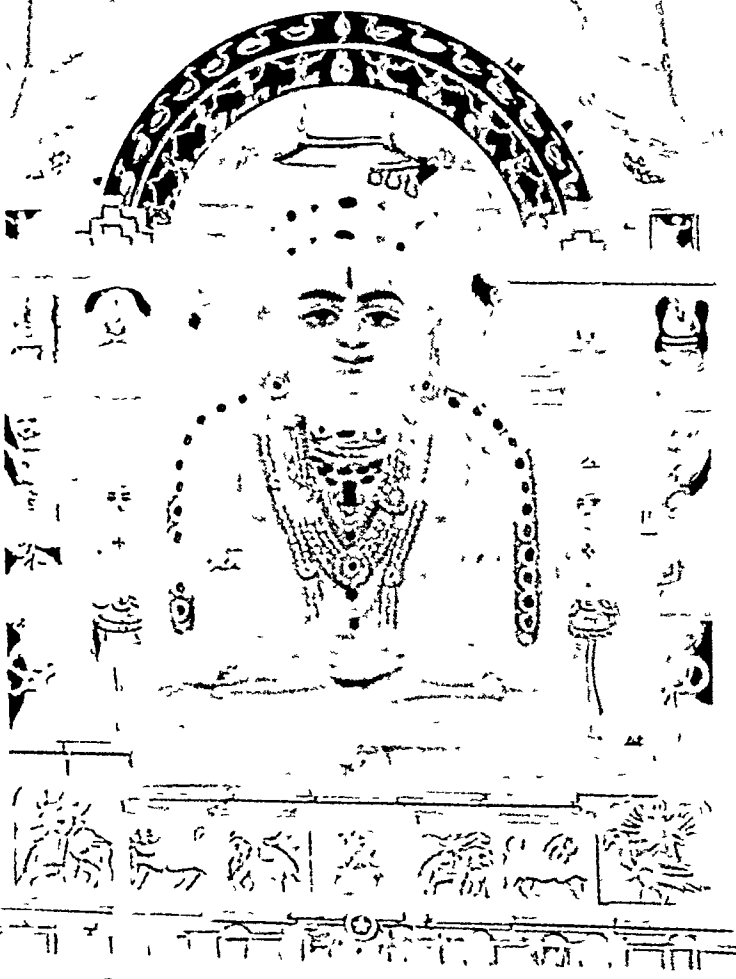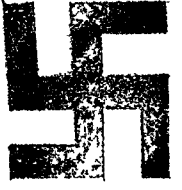
कंदर्पा (पन्नगा) देवी

॥ श्री घर्मनाथ ॥

KALPA DRUMA SADHARMANA MISHTA PRAPTAO SHARIRINAM
CHATURDHA DHARMA DESHTARAM DHARMANATH MUPASMAHE

कलपद्रुमसघर्माण-मिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्घा घर्मदेष्टारं, घर्मनाथमुपास्महे ॥१५॥

माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन बेले की तपस्या करके एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की।

सौमनस नामक नगर मे धर्मसिह राजा के यहां प्रभु ने पारना किया।

दो वर्ष तक प्रभु ने कठोर तप साधना की। ग्राम नगरों एवं वनो में विचरण करते हुए वे पुनः वप्रकांचन उद्यान में पधारे। दीघपर्ण वृक्ष के नीचे प्रभु ध्यान में स्थिर हो गए।

पोष मास की पूर्णिमा के दिन प्रभु को बेले की तपस्या में केवलज्ञान हुआ।

प्रभु ने पवित्र वाणी से संसार को कल्याण का सत्य मार्ग बताया। हजारों नर-नारी ने उनसे दीक्षा ग्रहण की।

प्रभु को ४३ गणधर हुए। श्री अरिष्ट उनमे मुख्य थे।

उनके शासन में किन्नर नामक यक्ष था। वह तीन मुख युक्त कुर्म वाहन वाला एवं रक्तवर्ण वाला था एवं गौरवर्णवाली व मीन वाहन युक्त कंदर्पा नामक शासन देवी थी। चौसठ हजार साधु एवं बासठ हजार चार सौ साध्वियां थी। नांव सौ चौदह पूर्वधर, दो हजार छः सौ अवधिज्ञानी, पैतालीस सौ मनःपर्यवज्ञानी एवं ४५०० सौ केवलज्ञानी थे।

सात हजार वैक्रिय लब्धिवाले एवं दो हजार आठ सौ वाद लब्धिवाले थे। दो लाख चालीस हजार श्रावक एवं चार लाख तेरह हजार श्राविकाएं थी। दीर्घकाल तक विचरण कर प्रभु ने जगत् पर अनत उपकार किया। उनके समय मे पुरुषसिह नामक वासुदेव हुए। उन्होंने प्रभु की वाणी सुनकर सम्यक्त्व प्राप्त किया। बलदेव सुदर्शन ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए।

अंत समय में प्रभु सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे। एक मास का प्रभु ने अनशन किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन आठ सौ साधुओ के साथ प्रभु ने परम पद प्राप्त किया। कुमार अवस्था में ढाई लाख वर्ष, राज्य अवस्था में पांच लाख, वर्ष रहे संयम एवं केवली पर्याय मे ढाई लाख वर्ष रहे, प्रभु की दस लाख वर्ष की पूर्ण आयु थी।

श्री धर्मनाथ स्तवन

(तर्ज :- वीर जिन दर्शन नयानानंद)

सेवो भविजन धर्म जिनन्द,
ज्युं बछडा नित चाहत धेनु,
चाहत मोर श्याम धनवृन्द।
कामी कामिनी सुं मन राचे,

विन्ध्याचल रेवा जगवृन्द ॥१ ॥

राजहंस चाहत कमलाकर,
कमलाकर चाहत दिनइंद
बावना चदन भोगी लिपटे,
चाहे चन्द विकासी चन्द ॥२ ॥

मंजर सुन्दर कोयल चाहे,
ज्युं चाहे मधुकर मकरंद ।
धर्म जिनेश्वर त्युं नित चाहत,
भविजन सुरनर मुनिगण इंद ॥३ ॥

धर्म जिनेश्वर धर्म के दाता,
पाता निजगुण सहजानंद ।
पी के भविजन तृप्त हुए बहु,
नासे कर्म भरम मल फंद ॥४ ॥

राग मोहन नही द्वेष जिनों में,
भानु सुव्रता माता नंद,
हैमनयर करूणा दृग् करके,
आतम वल्लभ मेहर करंद ॥५ ॥

स्तुति

कल्पद्रुम-सधर्माणमिष्ट-प्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धा धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ॥

प्रार्थना

धर्म के दाता धर्मनाथजी धीर-वीर गंभीर प्रभो
कर्म के भरम को मार भगाया बनकर के शूरवीर विभो ।
सुव्रतानंदन सुव्रत देकर हम सब का उद्धार करो
भानुराजा के जाये प्रभुजी जीवननैया पार करो ॥

माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन बेले की तपस्या करके एक हजार राजाओ के साथ दीक्षा ग्रहण की।

सौमनस नामक नगर में धर्मसिह राजा के यहां प्रभु ने पारना किया।

दो वर्ष तक प्रभु ने कठोर तप साधना की। ग्राम नगरों एवं वनों में विचरण करते हुए वे पुन: वप्रकांचन उद्यान में पधारे। दीघपर्ण वृक्ष के नीचे प्रभु ध्यान में स्थिर हो गए।

पोष मास की पूर्णिमा के दिन प्रभु को बेले की तपस्या मे केवलज्ञान हुआ।

प्रभु ने पवित्र वाणी से संसार को कल्याण का सत्य मार्ग बताया। हजारों नर-नारी ने उनसे दीक्षा ग्रहण की।

प्रभु को ४३ गणधर हुए। श्री अरिष्ट उनमे मुख्य थे।

उनके शासन में किन्नर नामक यक्ष था। वह तीन मुख युक्त कुर्म वाहन वाला एवं रक्तवर्ण वाला था एवं गौरवर्णवाली व मीन वाहन युक्त कंदर्पा नामक शासन देवी थी। चौसठ हजार साधु एवं बासठ हजार चार सौ साध्वियां थी। नव सौ चौदह पूर्वधर, दो हजार छः सौ अवधिज्ञानी, पैतालीस सौ मनःपर्यवज्ञानी एवं ४५०० सौ केवलज्ञानी थे।

सात हजार वैक्रिय लब्धिवाले एवं दो हजार आठ सौ वाद लब्धिवाले थे। दो लाख चालीस हजार श्रावक एवं चार लाख तेरह हजार श्राविकाएं थी। दीर्घकाल तक विचरण कर प्रभु ने जगत् पर अनत उपकार किया। उनके समय मे पुरुषसिह नामक वासुदेव हुए। उन्होंने प्रभु की वाणी सुनकर सम्यक्त्व प्राप्त किया। बलदेव सुदर्शन ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए।

अंत समय में प्रभु सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे। एक मास का प्रभु ने अनशन किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन आठ सौ साधुओं के साथ प्रभु ने परम पद प्राप्त किया। कुमार अवस्था मे ढाई लाख वर्ष, राज्य अवस्था में पांच लाख, वर्ष रहे संयम एवं केवली पर्याय में ढाई लाख वर्ष रहे, प्रभु की दस लाख वर्ष की पूर्ण आयु थी।

श्री धर्मनाथ स्तवन

(तर्ज :- वीर जिन दर्शन नयानानंद)

सेवो भविजन धर्म जिनन्द,
ज्युं बछड़ा नित चाहत धेनु,
चाहत मोर श्याम धनवृन्द।
कामी कामिनी सुं मन राचे,

विन्ध्याचल रेवा जगवृन्द ॥१ ॥

राजहंस चाहत कमलाकर,
कमलाकर चाहत दिनइंद
बावना चंदन भोगी लिपटे,
चाहे चन्द विकासी चन्द ॥२ ॥

मंजर सुन्दर कोयल चाहे,
ज्युं चाहे मधुकर मकरंद ।
धर्म जिनेश्वर त्युं नित चाहत,
भविजन सुरनर मुनिगण इंद ॥३ ॥

धर्म जिनेश्वर धर्म के दाता,
पाता निजगुण सहजानंद ।
पी के भविजन तृप्त हुए बहु,
नासे कर्म भरम मल फंद ॥४ ॥

राग मोहन नही द्वेष जिनों में,
भानु सुव्रता माता नंद,
हैमनयर करूणा दृग् करके,
आतम वल्लभ मेहर करंद ॥५ ॥

स्तुति

कल्पद्रुम-सधर्माणमिष्ट-प्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धा धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ॥

प्रार्थना

धर्म के दाता धर्मनाथजी धीर-वीर गंभीर प्रभो
कर्म के भरम को मार भगाया बनकर के शूरवीर विभो ।
सुव्रतानंदन सुव्रत देकर हम सब का उद्धार करो
भानुराजा के जाये प्रभुजी जीवननैया पार करो ॥

परिचय

१ माता का नाम	सुव्रतारानी
२ पिता का नाम	भानु राजा
३ च्यवन कल्याणक	वैशाख शुक्ला ७/रत्नपुरी
४ जन्म कल्याणक	माघ शुक्ला ३/रत्नपुरी
५ दीक्षा कल्याणक/रत्नपुरी	माघ शुक्ला १३/रत्नपुरी
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोप शुक्ला १५/रत्नपुरी
७ निर्वाण कल्याणक	ज्येष्ठ शुक्ला ५/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ४२ प्रमुख अरिष्ट
९ साधु	सख्या ६४ हजार प्रमुख अरिष्ट
१० साध्वी	सख्या ६२ हजार ४ सौ प्रमुख शिवा
११ श्रावक	सख्या २ लाख ४ हजार
१२ श्राविका	सख्या ४ लाख १३ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	दधिपर्ण
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	किन्नर
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	कदर्पा
१६ आयुष्य	१० लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	वज्र
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	विजय (अनुत्तर देवलोक)
१९ तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन	दृढरथ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थावस्था	२ वर्ष
२२ गृहस्थावस्था	७५ हजार वर्ष
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	नागदत्ता
२५ नाम-अर्थ	गर्भ मे आने पर मा ने धर्म का सुदर व अधिक पालन किया।
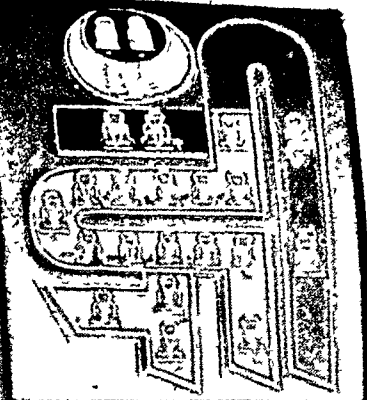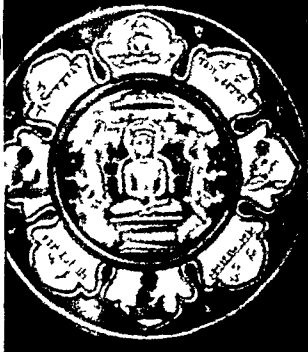
॥ श्री शांतिनाथ ॥
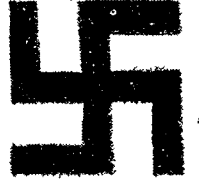
SHRI JAIN ATMANAD SABHA
KHAR GATE. BHAVNAGAR

SUDHA SODAR VAG JYOTSHA NIRMALI KRUT DIN MUKHAH
MRUGALAKSHMA TAMAH SHANTYEI SHANTINATH JINO - STUVAH

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना,-निर्मलीकृतदिङ्मुखः ।
मृगलक्ष्मा तमःशान्त्यै, शान्तिनाथजिनोऽस्तु वः ॥१६॥

श्री शांतिनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—शांति जिनेसर सोलमा, अचिरा सुत वंदो,
विश्वसेन कुल नभमणि, भविजन सुख कंदो ॥१ ॥

मृग लंछन जिन आउखुं, लाख वरस प्रमाण,
हत्थिणाउर नचरी धणी, प्रभुजी गुण मणी खाण ॥२ ॥

चालीश धनुषनी देहडी अे, सम चउरस संठाण,
वदन पद्म ज्युं चंदलो दीठे परम कल्याण ॥३ ॥
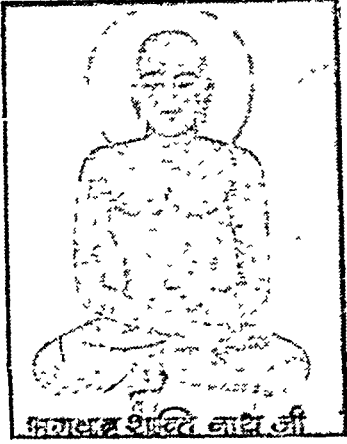
श्री शान्तिनाथ चरित्र

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नपुर नामका नगर है। जहां श्रीषेण नामका राजा था।

अभिनंदिता एवं शिखिनंदिता नामक दो पत्नियां थी। अभिनंदिता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनके इंदूषेण और बिदूषेण नाम रखे।

अचल नामक गांव मे धरणीजट नाम का ब्राह्मण था। यशोभद्रा नामक उसकी पत्नी थी। उसने दो पुत्रो को जन्म दिया। पिता ने इन्द्रभूति और श्री भूति उनके नाम रखे। उस ब्राह्मण को कपिल नामक दासी से भी एक पुत्र की प्राप्ति हुई। इन्द्रभूति एवं श्री भूति पिता से वेद पढते थे तब कपिल श्रवण मात्र से वेदो का पारगामी हुआ।

चौदह विद्या एवं वेदों में पारंगत कपिल स्वयं को श्रेष्ठ मानता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। लोगो द्वारा सम्मान एवं पूजा प्राप्त करता हुआ वह घुमता हुआ रत्नपुर नगर में आया।

वहां सर्वविद्याओं मे पारगामी एक सत्यकी उपाध्याय नामक पाठशाला चलाते थे, उनकी अनुमति से वह वहां पर रहने लगा। विद्यार्थियो को अध्ययन कराने से सत्यकी उस पर प्रसन्न हुआ। प्रसन्न हुए सत्यकी ने कपिल से अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ उसका विवाह किया।

एक बार वर्षाऋतु मे कपिल नाटक देखने केलिए रात्रि को नगर बाहर गया। कार्यक्रम पुरा हुआ। वह घर की ओर जाने लगा। रास्ते में बरसात होने लगी। अंधकार में वह नग्न हो गया। कपड़े बगल मे रखकर वह घर पहुंचा। सत्यभामा ने सोचा- स्वामीनाथ के कपडे भीग गए होंगे, अतः वह उन्हे वस्त्र देने लगी। उस समय कपिल कपट से कहने लगा- विद्यावल से मेरे वस्त्र भीगे नही है।

यह सुनकर वह सोचने लगी यदि वस्त्र भीगे नही है, तो शरीर भी नही भीगना चाहिए किन्तु इसका

शरीर तो भीगा हुआ है । अतः लगता है यह नग्न होकर आया है, इसलिए यह उच्च कुल का व्यक्ति नहीं है ।

इस घटना से सत्यभामा के दिल में परिवर्तन आया । पति के प्रति उसे अप्रीति हो गई ।

एक दिन कपिल का पिता जो दरिद्र बन गया था ।

वह उसके पास आया । कपिल ने पिता के चरण धोये एवं स्नान आदि कराया ।

पिता के भोजन की व्यवस्था अलग से करने केलिए उसने पत्नी को कहा । पत्नी ने सोचा मेरा पति पंक्ति भेद वाला है । अन्यथा यह जुदा भोजन की बात नही करता ।

सत्यभामा ने श्वसुर को प्रेम से भोजन कराया । भक्ति से प्रसन्न हुए श्वसुर को उसने एकांत में ब्रह्महत्या का सोगन देकर पूछा—पूज्य श्वसुरजी । आपका पुत्र एवं मेरा पति क्या सचमुच मे उच्चकुल मे जन्मा है ? कृपया आप सत्य बताएं ।

श्वसुर ने उसे सत्य बात कह दी । श्वसुर की सत्य बात से सत्यभामा को गहरा सदमा पहुचा ।

उसने श्रीषेण राजा के पास जाकर विनंति की—हे राजन ! दैवयोग से अकुलीन कपिल नामक व्यक्ति के साथ मेरा विवाह हुआ है । मेरा मन उससे उठ गया है । आप मुझ पर कृपा करे एव उससे मुझे मुक्त करें ।

धर्म आराधना के लिए मेरा मन तत्पर है । राजा ने कपिल को बुलाया और कहा—सत्यभामा को तपस्या के लिए मुक्त कर दे । अन्यथा सत्यभामा का हित नही होगा ।

राजा के आग्रह से कपिल ने उसे अनुमति दे दी । राजा की रानियों के साथ रहकर वह तप करने लगी ।

कौशांबी नामक नगरी में बल नामक राजा था । श्रीमती उसकी रानी का नाम था । श्री कांता नामक उन्हें एक राजकुमारी थी ।

राजा ने इंदुषेण के लिए स्वयंवरा के रूप में उसे भेजा उस राजकन्या के साथ अनंतमती नामकी वेश्या थी । इंदूषेण और बिदूषेण दोनों भाइयों ने उसे देखा ।

दोनों उस पर मोहित हो गए । उसे प्राप्त करने के लिए दोनो में विवाद हो गया ।

दोनों ही भाई देवरमण नामक उद्यान में युद्ध करने लगे । क्रोधायमान दोनों भाईयों को राजा शांत नही कर सका । श्रीषेण राजा के समझाने पर भी दोनों ने युद्ध नही छोड़ा ।

दुःखी राजा विष युक्त कमल को सुंघकर मौत को प्राप्त हुआ ।राजा का अनुसरण कर दोनों रानियो ने भी जीवनलीला सामाप्त कर दी ।

सत्यभामा भी कपिल के भय से विषाक्त कमल सूंघ कर मौत को प्राप्त हुई।

सरल स्वभाव वाले वे चारों मरकर जंबूद्वीप के उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिक बने।

जिसमें श्रीषेण एवं अभिनंदता पुरुष और स्त्री रूप में युगल हुए।

शिखिनंदिता एवं सत्यभामा यह दूसरा युगल हुआ।

इंदुषेण एवं बिदुषेण को किसी विद्याधर ने तीर्थंकर का यह वचन कहा कि -पूर्व जन्म मे मै तुम्हारी माता थी, और यह वेश्या (गणिका) तुम्हारी बहन थी। यह सुनकर दोनों को वैराग्य हुआ। श्री धर्मरुचि नामक गुरुदेव के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष पद पाया।

श्रीषेण आदि चारो युगलिक तीन पल्योपम की आयु पूर्ण कर सौधर्म देवलोक मे देव हुए।

इस भरत क्षेत्र मे वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर चक्रवाल नामक नगर है। वहां ज्वलनजटी नामक विद्याधर पति था। उसे अर्ककीर्तिनामक राजकुमार था। एक सुपुत्री भी थी, जिसका नाम था स्वयंप्रभा।

भगवान महावीर का जीव जो त्रिपृष्ठ नामक वासुदेव था, जो पोतनपुर नगर का राजा था उसके साथ उसका विवाह हुआ था।

प्रसन्न मना त्रिपृष्ठ वासुदेव ने ज्वलनजटी को दोनो श्रेणी के राज्य उसको प्रदान किए, अर्ककीर्ति का विवाह ज्योतिर्माला नामक राज्यकन्या के साथ हुआ।

पिता ज्वलनजटी ने उसे राज्यसत्ता सौप दी। जगनंदन एवं अभिनंदन नामक चारण मुनि के पास उन्होने दीक्षा ग्रहण कर ली।

श्रीषेण की आत्मा सौधर्मदेवलोक से च्यवकर-के ज्योतिर्माला के गर्भ मे उत्पन्न हुई।

पुत्र जव गर्भ मे था। माता ने तेजोमय सूर्य को देखा। पुत्र का जव जन्म हुआ तब पिता ने उनका नाम अमित तेज रखा।

सत्यभामा की आत्मा सौधर्म देवलोक से च्यवकर के अर्ककीर्ति की पुत्री हुई, जिसका नाम रखा सुतारा। अभिनदिता की आत्मा सौधर्म देवलोक से च्यव करके त्रिपृष्ठ वासुदेव एवं स्वयंप्रभा का पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा श्री विजय। उन्हें दूसरा पुत्र भी हुआ जिसका नाम रखा गया विजयभद्र।

शिखिनंदिता की आत्मा भी सौधर्मदेवलोक से च्यव करके त्रिपृष्ठ वासुदेव की सुपुत्री हुई, उसका नाम रखा गया ज्योतिष्प्रभा।

विद्याधरपति अर्ककीर्ति ने अपनी सुपुत्री सुतारा का विवाह त्रिपृष्ठ के पुत्र विजय के साथ किया।

त्रिपृष्ठ ने भी स्वपुत्री ज्योतिष्प्रभा का विवाह अर्ककीर्ति के पुत्र अमित तेज के साथ किया। सत्यभामा का पति जो कपिल था, वह विभिन्न योनियों मे भ्रमण करता हुआ, वैताढ्य पर्वत पर चमरचचा

नामक नगरी मे अशनिघोष नामका प्रसिद्ध विद्याधर राजा हुआ।

एकबार रथनुपुर चक्रवाल नगर में अभिनंदन, जगन्नंदन एवं ज्वलनजटी ये तीन मुनि पधारे।

अर्ककीर्ति ने अमिततेज को राज्यसत्ता सौंप दी एवं मुनियों के पास दीक्षा ग्रहण की।

त्रिपृष्ठ वासुदेव का जब निधन हुआ, तब अचल बल देव ने उनके पुत्र विजय को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

विजय राजा सुंदर रूप से राज्य का पालन करने लगा। एक बार वह रानी सुतारा के साथ ज्योतिर्वन नामक वन में क्रीडा करने गया।

उस समय पूर्वभव का कीपल जो अशनिघोष विद्याधर राजा बना था। आकाश में जाते हुए उसने सुतारा को देखा। पूर्व जन्म के संस्कारवश देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया।

उन्हें आकर्षित करने के लिए उसने मायामय विद्या का प्रयोग किया। विद्याधर ने दोनों के समीप छलांगे मारते हुए स्वर्णमय हिरन का सर्जन किया। स्वर्णमृग का रूप बनाकर वह दौड़ने लगा।

रानी सुतारा ने उसे पकड़ने की प्रार्थना की। रानी के आग्रह से वह मृग के पीछे दौडा।

मायावी मृग के पीछे राजा अत्यंत दूर निकल गया। रानी पीछे अकेली रह गई।

अशनिघोष ने रूप बदलकर अतिशीघ्र रानी सुतारा का अपहरण किया।

अशनिघोष के आदेश से प्रतारिणी विद्या ने सुतारा का रूप धारण किया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी कि मै कुर्कुट जाति के सांप द्वारा काटी गई हूं।

उसकी चिल्लाहट को सुन राजा मृग को छोड़कर रानी के पास आया। मणि मंत्र एवं औषधि के प्रयोग करने पर भी उसकी मौत हो गई।

रानी को मृत देखकर विजय भी मूर्छित हो गया। मूर्छा दूर होने पर वह विलाप करने लगा। रानी के साथ चिता में जलने के लिए वह तैयार हो गया।

जैसे ही चिता में उसके साथ प्रवेश किया। अग्नि जलाने लगे, तभी वहां दो विद्याधर आए।

एक विद्याधर ने चिता में पानी छिड़का। मंत्रित पानी के प्रभाव से प्रतारणी विद्या अट्टहास करती हुई भाग गई।

यह देखकर विजय अत्यंत चकित हो गया। विजय के पूछने पर विद्याधर ने कहा—हम अमिततेज नामक विद्याधरपति के सिपाही है।

मेरा नाम संभिन्न स्रोता है एवं यह मेरा दीपशिख नामक पुत्र है।

हम दोनो तीर्थो की यात्रा करने के लिए निकले थे। रास्ते में जाते हुए हमने इस प्रकार करूण आवाज सुनी—

हे स्वामीनाथ ! विजय राजा, हे भाई अमित तेज, इस क्रूर राक्षस से मेरा रक्षण करो ।

यह वचन सुनकर हमने जाना कि यह स्वामी की बहन है, अतः हम उसके पास गए। अशनिघोष को देखा उसे मारने के लिए तलवार निकाली ।

तभी सुतारा ने कहा—आप युद्ध छोड़ो और शीघ्र ही ज्योतिर्वन में जाओ, जहां श्री विजयस्वामी प्रतारिणी विद्या की माया से आत्महत्या केलिए तैयार हुए है, उन्हें बचाओ। क्योकि उनके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है ।

इस प्रकार उसकी आज्ञा से हम शीघ्र यहां पर आए। मंत्रित जल से तुम्हारी चिता की अग्नि को बुझा दिया । सुतारा का रूप धारण करने वाली प्रतारणी विद्या भाग गई ।

राजा सुतारा के अपहरण की बात सुनकर अत्यंत दुःखी हुआ ।

तत्पश्चात् दोनों विद्याधर विजय राजा को वैताढ्य पर्वत पर ले गए।

वहां अमिततेज ने यह घटना जानी, विजय राजा को उसने सारी विधाएं प्रदान की ।

फिर अमिततेज ने अपने ५०० पुत्र विजयराजा के साथ अशनिघोष को जीतने केलिए भेजे ।

अमिततेज महाबली अशनिघोष को जीतने केलिए महाज्वाला विद्या की साधना के लिए हिमाचल पर्वत पर गया ।

इधर चमर चंचा नगरी मे विजयराजा एवं अशनिघोष के सैन्यो के बीच युद्ध प्रारंभ हुआ ।

अमिततेज विद्या सिद्ध करके हिमाचल पर्वत से आया । उसकी विद्या से अति भयभीत अशनिघोष भाग गया ।

अमिततेज ने महाज्वाला विद्या को भागते हुए उसे पकड़ने का आदेश दिया ।

रुष्टमान विद्या उसे गिरफ्तार करने केलिए उसके पीछे गई ।

भय से भागता हुआ किसी की शरण की खोज में उसने दक्षिणार्ध भरत में प्रवेश किया ।

वहां उस समय सीमाद्रि पर्वत पर अंचल नामक बलदेव मुनि को केवलज्ञान हुआ था, अतः उनके पास अनेक देवी देवता आए।

अभिनदन आदि मुनि भी वहां आए। भयभीत अशनिघोष ने केवलज्ञानी श्री अचल मुनि की शरण ले ली ।

केवलज्ञानी की सभा में इन्द्र के वज्र में भी किसी को मारने की शक्ति नही होती, अतः महाज्वाला विद्या ने भी उसे छोड दिया।

महाज्वाला द्वारा अमिततेज एवं श्री विजय सारी घटना जानकर वे दोनों अचल केवलि के पास गए।

बीच में चमरचंचा नगरी आई, उन्होंने मारीच निशाचर को कहा कि तुं सुतारा को शीघ्र ले आ। उसने सुतारा को समस्त घटना बताई।

उस समय अशनिघोष की माता स्वयं सुतारा को लेकर मारीच के साथ अचल केवलि के पास आई।

वहां उसने विजय एवं अमिततेज को सुतारा सौप दी। उस समय अशनिघोष ने मुनि समक्ष विजय एवं अमिततेज से क्षमा याचना की। उसने केवलज्ञानी से पूछा—प्रभो ! सुतारा पर मुझे राग क्यो हुआ?

उसके पूछने पर मुनि ने उसे-पूर्वभव बताए। अचलमुनि ने अमिततेज को श्रीषेणराजा के भव क्रमशः पूर्वभव बताए एवं शान्तिनाथ के भव तक की बात बताई।

शान्तिनाथ के भव में विजयराजा उनका पुत्र होगा एवं वही उनका मुख्य गणधर भी होगा। य बात अमिततेज को कही।

उपरोक्त बातें सुनकर विजय एवं अमिततेज ने मुनि को नमस्कार किया एवं बारह व्रत का श्रावक धर्म स्वीकार किया।

अशनिघोष ने भी अचल मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की।

विजय की माता स्वयंप्रभा ने भी अचल मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की।

विजय एवं अमिततेज आदि मुनि को नमस्कार कर अपने-अपने स्थानों में गए।

एक बार विजय एवं अमिततेज दोनों मिलकर नंदनवन में शाश्वत अरिहंत भगवान की यात्रा के लिए गए। अरिहंत प्रभु के दर्शन एवं वंदन के पश्चात् वे वन में विचरण करने लगे। वन में विचरते हुए उन्होंने विमलमति एवं महामति नामक चारण मुनि को देखा।

उन दोनों ने दोनों मुनियों को वंदन किया और अपनी आयु के बारे मे पूछा। तब मुनियो ने कहा—तुम्हारी आयु के छब्बीस दिन शेष है।

यह सुनकर वे आत्मसाधना करने के लिए तत्पर हो गए। अपने नगरों मे गए जिनालय में अष्टाह्निका महोत्सव किया। पुत्रों को राज्य सिहासन पर स्थापित करके उन दोनों ने अभिनंदन एवं जगनंदन मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली।

तत्पश्चात् दोनो ने पादोपगमन नामक अनशन किया ।

उस समय विजय मुनि ने निदान किया संकल्प किया कि जैसे मेरे पिता त्रिपृष्ठ वासुदेव थे, वैसे ही मैं भी सात रत्नों का स्वामी वासुदेव बनूं ।

दोनों मरकर प्राणत नामक देवलोक में उत्पन्न हुए । विजय की आत्मा सुस्थितावर्त विमान मे एवं अमिततेज की आत्मा नंदितावर्तक नामक विमान में उत्पन्न हुई । मणिचूल एवं दिव्यचूल नामक वे दोनों देव जीवन सुख से यापन करने लगे ।

इस जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में रमणीयक नामक विजय में शुभा नामक नगरी थी, जहां स्तिमित सागर नामक राजा था ।

उसे वसुंधरा और अनुद्धरा नामक दो पत्नियां थी । अमिततेज की आत्मा देवलोक से च्यव करके वसुधरा की कुक्षी मे उत्पन्न हुई ।

उस समय रानी ने गज, चंद्र, वृषभ एवं सरोवर ये चार स्वप्न देखे । राजा ने कहा—'हे देवी ! तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा । वह बलदेव होगा ।'

गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने पुत्र को जन्म दिया ।

पिता ने उनका नाम अपराजित रखा ।

विजय की आत्मा सुस्थितावर्त विमान से च्यवकर अनुद्धरा की कुक्षी में उत्पन्न हुआ । उस समय निद्रावस्था में रानी ने अभिषेक, कुंभ, समुद्र, सूर्य अग्नि एवं मणि की राशि ये सात स्वप्न देखे । उनके स्वप्न सुनकर स्तमितसागर राजा ने उसे कहा— तुझे वासुदेव रूप पुत्र की प्राप्ति होगी ।

समय पूर्ण होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया । पिता ने उसका नाम अनंतवीर्य रखा ।

अनुक्रम से दोनो भाई युवावस्था को प्राप्त हुए । उस समय अनंतवीर्य को राज्य पद पर स्थापित कर स्तमित सागर राजा ने स्वयंप्रभ आचार्य जी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली ।

संयम की निर्मल आराधना की किन्तु अन्त समय की मानसिक विराधना से मरकर वह चमरेंद्र हुआ ।

राज्य सत्ता प्राप्त कर अनंतवीर्य राजा भी अपराजित के साथ न्यायनीति से प्रजा का पालन करने लगा ।

किसी विद्याधर मित्र ने दोनो भाइयो को विधाएं दी । पूर्व जन्म की साधना के प्रभाव से विधाएं उन्हे तत्काल सिद्ध हो गई ।

रंभादि अप्सराओ से भी सर्वोत्तम गीत गायन एवं नृत्य करने वाली वर्वरी और किराती नामकी

श्रेष्ठ दासियां राजा के पास थी ।

एक बार वे दोनों भाई दासियों का नृत्य देखने में लीन थे । उस समय नारद मुनि वहां आये।

नृत्य में लीनता से उन्हें नारद मुनि का पता नही चला । अतः वे मुनि का सम्मान नहीं कर पाए। जिस से क्रोधायमान होकर नारद जी चले गए । इन्होने मेरी अवज्ञा की है । अवज्ञा का फल इन्हे चखाता हूं ।

यह सोचकर वे वैताढ्य पर्वत पर दमतारि राजा के पास गए ।

उसने मुनि का सम्मान किया और पूछा—आपने किसी स्थान पर कोई आश्चर्यकारी घटना देखी है ?

नारद मुनि ने कहा—शुभा नामक नगरी में अनंतवीर्य नामक राजा के पास बर्बरी और किराती नाम की दो दासियां है जो नृत्यकला मे पारंगत है ।

दोनों दासियों को सभा में अद्भुत नृत्य करते हुए मैंने देखा है । उनके जैसा नृत्य स्वर्ग मे भी असंभव है ।

नारदमुनि यह कहकर चले गए। तत्पश्चात दमितारि राजा ने दोनों दासियों को लाने के लिए अनंतवीर्य के पास अपना दूत भेजा ।

दूत ने वहां जाकर दोनों दासियों की मांग की । बुद्धिमान अनंतवीर्य ने दोनों दासियों को ले जाने की सहर्ष आज्ञा दी ।

राजा की अनुमति से दूत अत्यंत प्रसन्न हुआ । रात्रि विश्राम के लिए दिए हुए स्थान मे वह चला गया ।

तत्पश्चात् वासुदेव एवं बलदेव इस प्रकार विचार करने लगे—दमितारि को देखने केलिए हम दोनो चलें ।

जाने से पूर्व हमें दासियों का रूप धारण करके जाना चाहिए । यह निश्चय कर राज्य का भार उन्होंने मंत्रियो को सौपा फिर दोनों भाइयों ने विद्या से बर्बरी और किराती का रूप धारण किया ।

दूत दोनो को लेकर वैताढ्य पर्वत पर गया । दमितारी राजा के समीप जाकर उसने कहा कि ये दोनो दासियां आपके लिए अनंतवीर्य ने भेजी है ।

दोनों ने राजा के समक्ष अभिनय किया । राजा अभिनय को देखकर प्रसन्न हो गया ।

राजा ने अपनी पुत्री कनकश्री को नृत्य सिखाने केलिए दासियों को सौपा ।

माया रूप धारण करनेवाली दोंनों दासियां नृत्य सिखाते हुए कई बार अनंतवीर्य के गीत गाती थी ।

गीत सुनते हुए कनक श्री को अनंतवीर्य पर अनुराग हो गया। कनकश्री ने अनंतवीर्य को देखने की अभिलाषा प्रकट की। अनंतवीर्य ने एकांत में उसे अपना रूप बताया।

अनंतवीर्य अपराजित के साथ कनश्री का अपहरण करके आकाशमार्ग से वह जाने लगा। दमितारी ने युद्ध केलिए अपने सैनिक भेज दिए।

उस समय अपराजित एवं अनंतवीर्य के लिए हल एवं शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्यरतन प्रकट हुए। दमितारी के सभी योद्धा उनके सामने भाग खड़े हुए। तब दमितारी स्वयं आकर युद्ध करने लगा।

दमितारी के सभी शस्त्र नष्ट हो गए। तब उसने अनंतवीर्य पर चक्र छोड़ा। चक्र छाती मे टकराकर उसके पास खड़ा हो गया। उसने शीघ्र ही उसे हाथ में ग्रहण कर दमितारी का मस्तक छेद कर दिया।

उस समय देवों ने घोषणा की कि—यह अनंतवीर्य वासुदेव है एवं अपराजित बलदेव है, यह कहकर देवो ने उन दोनों पर पुष्पवृष्टि की।

विमान में बैठकर अपने नगर की ओर जाते हुए अनंत वीर्य ने मेरूपर्वत पर केवलज्ञानधारी किर्तिधर नामक मुनि को देखा। उसने केवलज्ञानी को नमस्कार किया और उनकी पावन वाणी सुनी।

तत्पश्चात् कनकश्री ने केवलज्ञानी से पूछा कि किस कारण से मेरे पिता की हत्या हुई?

मुनिचन्द्र ने प्रत्युत्तर में कहा कि धातकी खंड के पूर्व भरतक्षेत्र में शंखपुर नामक गांव है। वहां श्री दत्ता नामक अत्यंत निर्धन स्त्री रहती थी।

एक बार भटकती हुई वह एक पर्वत पर गई। वहां बिराजमान रत्नायशा नामक साधु ने उसे धर्मचक्रवाल नामक तप करने की प्रेरणा दी। तप की आराधना के प्रभाव से उसे घर के एक कोने मे स्वर्ण मोहरे प्राप्त हुई।

तप के परिपूर्ण होने पर उसने जिनालय मे बृहत पूजा की। साधर्मिक वात्सल्य करके उसने उद्यापन किया। कितनेक समय के पश्चात् उसने विचार किया कि जिन धर्म की आराधना का फल मुझे मिलेगा या नहीं। पर्वत पर एक विद्याधर को देखकर वह मुग्ध हो गई। आलोचना लिए विना वह मर गई।

इस जबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र मे वैताढ्य पर्वत पर शिवमंदिर नामक नगर में कनक पूज्य नामक प्रसिद्ध राजा था। उसके पुत्र का नाम था वायुवेग। मै उसका किर्तीधर नामक पुत्र हूं।

अनिलवेगा नामक मेरी पत्नी थी। उसने हाथी वृषभ एवं कुंभ तीन स्वप्नों से सूचित पुत्र को जन्म दिया। दमितारी मैंने नाम रखा।

दमितारी के युवा होने पर उसे राज्य पर स्थापित कर मैंने दीक्षा स्वीकार की। शांतिनाथ जी के समीप सयम लिया।

इसी पर्वत पर एक वर्ष की प्रतिमा धारण की। आज ही धातिकर्म के क्षय से केवलज्ञान प्राप्त किया है।

दमितारि चक्र की सहायता से तीन खंड पर विजय प्राप्त कर प्रतिवासुदेव हुआ है।

श्री दत्ता नामकी तूं दमितारि की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई है।

धर्मफल की आशंका से तुझे पिता एवं भाई का वियोग हुआ। यह सुनकर कनक श्री को वैराग्य हुआ।

उसकी दीक्षा की इच्छा जानकर अनंतवीर्य ने कहा—हे भाग्यशालीनी ! नगर जाने के पश्चात् तुझे दीक्षा दिला देंगे।

फिर मुनि की आज्ञा एवं उसे लेकर बलदेव एवं वासुदेव अपनी नगरी में गए। वहां राजाओं ने अनंतवीर्य का वासुदेव के रूप में अभिषेक किया।

तत्पश्चात् बलदेव एवं वासुदेव ने स्वयंप्रभ तीर्थकर के पास कनक श्री को दीक्षा दिलाई। सर्व कर्मो का क्षय कर वह मुक्ति मे गई।

अनंतवीर्य वासुदेव चोराशी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर निकाचित कर्मो के कारण मरकर प्रथम नर्क में गया। वहां वासुदेव के पूर्व जन्म के पिता चमरेन्द्र ने आकर बेतालीस हजार वर्ष आयु वाले अनंतवीर्य की आत्मा की वेदना को थोड़ा शांत किया।

पूर्वोपार्जित अपने कर्मो का स्मरण करते हुए उसने संवेग से नर्क की वेदना सहन की।

अपराजित बलदेव को वासुदेव की मौत से वैराग्य हुआ। उसने पुत्र को राज्य प्रदान कर धरजय नामक गणधर के पास दीक्षा ग्रहण की। उसके साथ सोलह हजार राजाओं ने दीक्षा स्वीकार की।

अपराजित मुनि ने उग्र साधना की। अनशन से समाधि मरण प्राप्त कर वे मरकर अच्युत देवलोक में देव हुए।

अनंतवीर्य की आत्मा ने नरक की आयु पूर्ण की।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर उत्तर श्रेणी में गगनवल्लभ नामक नगर था। वहां मेघवाहन नामक विद्याधर राजा की रानी मेघमालीनी के गर्भ में वह उत्पन्न हुआ।

पिता ने उसका मेघनाद नाम रखा। मेघनाद जब युवा हो गया। पिता ने उसे राज्य की धुरा सौंप दी।

मेघवाहन ने दीक्षा ग्रहण की एवं आत्मकल्याण किया।

एकबार मेघनाद प्रज्ञप्ति विद्या के द्वारा मेरू पर्वत पर गया। वहां उसने नंदनवन में सिद्धचैत्य की

पूजा की। उस समय वहां अच्युतेन्द्र भी आये।

पूर्वभव के भाई जानकर अच्युतेन्द्र ने उसे प्रतिबोध दिया। अतः मेघनाद ने अपने पुत्र को राज्य सौपकर दीक्षा स्वीकार की। अमरगुरु नामक मुनि के पास उन्होने चारित्र ग्रहण किया।

उग्र साधना करते हुए वे नंदन पर्वत पर एक रात्रि की प्रतिमा धारण करके रहे। उस समय अश्वग्रीव का पुत्र पूर्वभव का शत्रु मरकर राक्षस बना था। वह वहां पर आया। उसने मुनि को देखा।

पूर्वभव के बैर के कारण उसने मुनि को उग्र उपसर्ग किए। किन्तु मुनि ध्यान से चलायमान नही हुए। तब निराश होकर वह वहां से चला गया। तत्पश्चात् मुनि ने ध्यान पूर्ण किया।

उन्होने चिरकाल तक आराधना की। समाधिमरण प्राप्तकर वे अच्युत देवलोक में अच्युतेन्द्र के सामानिक देव बने।

जंबूद्वीप के पूर्वमहाविदेह क्षेत्र मे सीतानदी के किनारे मंगलावती विजय में रत्नसंचया नामक नगरी है। वहा क्षेमकर नामक राजा था। उसकी पत्नि का नाम रत्नमाला था।

अच्युत देवलोक से च्यवकर अपराजित का जीव उस रानी के गर्भ मे उत्पन्न हुआ। निद्रावस्था मे रानी ने चौदह महास्वप्न देखे पन्द्रहवां स्वप्न वज्र का देखा।

प्रातःकाल उसने राजा को स्वप्न की बात कही। राजा ने कहा—देवी ! तुम्हे इन्द्र जैसा पराक्रमी चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा।

गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने पुत्र को जन्म दिया। रानी ने स्वप्न मे वज्र देखा था अतः पिता ने उसका नाम वज्रायुद्ध रखा। जब वह युवा हुआ।

लक्ष्मीवती नामक राजपुत्री के साथ उसका विवाह किया गया। अनंतवीर्य अच्युत देवलोक से च्यवकर लक्ष्मीवती के गर्भ में पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। जब उसका जन्म हुआ तब पिता वज्रायुद्ध ने उसका नाम सहस्त्रायुद्ध रखा।

जब वह युवा हुआ तब कनक श्री नामक राजकुमारी के साथ उसका विवाह हुआ। सहस्त्रायुद्ध को भी एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम शतबलि रखा गया।

एक बार क्षेमंकर राजा पुत्र एवं परिवार के साथ राजसभा मे वैठा था। उस समय इशानेंद्र ने सभा मे कहा—समकीतधारी वज्रायुद्ध को धर्मश्रद्धा से डीगूाने केलिए देव भी समर्थ नहींहै।

चित्र चुल नामक नास्तिक देव को इन्द्र की यह वात सहन नहीं हुई। वह क्षेमंकर की सभा मे आया।

सभा मे वह बोला—आत्मा पाप, पून्य एवं परलोक आदि कुछ नही है।

यह सुनकर वज्रायुद्ध ने कहा—हे देव ! तुम्हारी बात मिथ्या है । क्योंकि पूर्वजन्म की धर्माराधना के प्रभाव से तुझे देवभव का वैभव प्राप्त हुआ है । जिसे तूं अवधिज्ञान से जान ले । पूर्वभव में तूं मानव था, वर्तमान में तूं देव है । अतः लोक अलोक तेरी समक्ष प्रत्यक्ष है ।

वज्रायुद्ध की युक्ति पूर्ण बात सुनकर उसे प्रतिबोध हुआ । उसने समकित ग्रहण किया ।

उसने कहा—हे कुमार ! संसार में गिरते हुए मुझे आपने बचाया है । आपके पिता तीर्थकर है सचमुच आपका जीवन धन्य है ।

इशानेंद्र ने कहा—हे देव ! ये वज्रयुद्ध भी तीर्थकर होने वाले है ।

एक बार चैत्र मास मे स्वरनिपात नामक उद्यान में वज्रायुद्ध कुमार लक्ष्मीवती आदि सात सौ रानियो के साथ क्रीडा कर रहा था ।

उस समय विधुद्रंष्ट नामक देव भयंकर क्रोध से वहां पर आया । पूर्वभव मे वह दमितारी राजा का जीव था जो वज्रायुद्ध का शत्रु था । दुष्टबुद्धि से वह कुमार के पास आया ।

उसने वज्रायुद्ध को नागपाश के बंधन में डाला और एक पर्वत उखाड़ कर उस पर फैका ।

वज्रायुद्ध ने वज्र जैसी मुष्टि प्रहार से पर्वत को चूर-चूर कर दिया । नागपाश को भी उसने तोड दिया ।

उस समय महाविदेह क्षेत्र के चैत्यो का दर्शन कर नंदीश्वर द्वीप में जाते हुए शक्रेन्द्र ने कुमार को देखा । देव के बल को जीतने वाले कुमार को देखकर कहा—हे कुमार ! भरतक्षेत्र में आप शांतिनाथ नामक तीर्थकर बनोगे ।

यह कहकर इन्द्र ने उनको नमस्कार किया एवं अपने स्थान में गए ।

लोकांतिक देवों ने दीक्षा के समय की सूचना देने पर क्षेमंकर राजा ने वज्रायुद्ध को राज्य पर स्थापित किया । संयम ग्रहण कर उग्र साधना की । केवलज्ञान प्राप्त कर जगत पर उपकार करने लगे ।

वज्रायुद्ध ने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया । सहस्त्रायुद्ध को युवराज बनाया ।

एक बार वज्रायुद्ध राज्यसभा में बैठा था । उस समय कांपते हुए शरीर वाला, बचाने की आवाज करता हुआ एक विद्याधर आकाश में से उतर कर उनकी शरण में आया ।

उसके पीछे आने वाली विद्याधरी ने कहा—हे चक्रवर्ती इस अन्यायी को शरण मत दो ।

उसके पीछे आने वाले विद्याधर ने क्रोध से राजा को कहा—राजन् ! इसकी दुष्टता इस प्रकार है ।

इस जंबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय में वैताढ्य पर्वत उपर शुक्लपुर नामक नगर है । मैं वहां का पवनवेग नामक राजा हूं । सुकांता नामक मेरी रानी है ।

शांतिमति नामक यह हमारी सुपुत्री है। यह पुत्री मणिसागर नामक पर्वत पर प्रज्ञप्ति विद्या की साधना कर रही थी। उस समय इसने उसे आकाश में उछाली। तत्क्षण इसे विद्या भी सिद्ध हो गई।

पुत्री की विद्या के भय से यह भागता हुआ पापी आप की शरण में आया है। इसे कही रक्षण नही मिला अतः यह आपके पास आया है।

जब मै प्रज्ञप्ति विद्या की पूजा केलिए पर्वत पर आया, तब पुत्री को न देखकर मै व्याकुल हो गया। आभोगिनी विद्या से जानकर पुत्री एवं आदमी के पीछे मै यहां आया हूं।

अतः हे राजन्! इस दुष्ट को आप छोड़ दो। मै अभी इसे गदा के द्वारा मौत की सजा दूं।

यह बात सुनकर एवं अवधिज्ञान से जानकर वज्रायुद्ध चक्री बोले—इन दोनों के पूर्व जन्म की घटना सुनो

इस जंबूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में विंध्यपुर नगर में विध्यदत्त नामक राजा था। सुलक्षणा नामक उसकी पत्नी थी। उन्हे नलिनकेतु नामक एक पुत्र था।

उसी नगर मे धनमित्र नामक सार्थवाह था। उसे श्री दत्ता नामक पत्नी थी। उन्हें दत्त नामक पुत्र था। उस दत्त को प्रभंकरा नामक पत्नी थी।

एक बार वसंतऋतु में दत्त अपनी पत्नी के साथ उद्यान में स्वेच्छा से क्रीड़ा करता था। नलिनकेतु वहां पर आया। प्रियंकरा को देखकर वहा कामातुर हो गया। राजपुत्र ने उसका अपहरण किया एवं वनादिक मे उसके साथ क्रीडा करने लगा। दत्त उसके वियोग में उन्मत्त होकर चारों ओर घुमने लगा।

सुमना नामक केवली की वाणी से वह शांत हुआ। धर्माराधना से वह मौत को प्राप्त हुआ।

इस जबूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ विजय में वैताढ्य पर्वत पर स्वर्ण तिलक नगर है। वहा महेन्द्र विक्रम नामक विद्याधर राजा था। उसे अनिलवेगा नामक रानी थी।

दत्त का जीव उनका पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया अजितसेन।

विध्यराजा की जब मौत हुई, तब विध्यनगर में नलिनकेतु राज्य करने लगा। अंत में दीक्षा ग्रहण की, साधना करके मोक्षपद प्राप्त किया।

प्रभकरा ने गृहस्थावस्था मे ही तपाराधना की। मरकर हे पवनवेग वह तुम्हारी पुत्री हुई है। शातिमती पर पूर्वस्नेह के कारण अजितसेन ने इसका अपहरण किया है। अतः इन पर क्रोध मत करो।

यह सुनकर वे शांत हो गए और उन्होने परस्पर क्षमापना की। तत्पश्चात् वज्रायुद्ध ने उन्हें कहा-तुम तीनों श्री क्षेमंकर तीर्थकर के पास दीक्षा ग्रहण करोगे। यह शांतिमती रत्नावली तप करेगी। अनशन कर यह इशानेन्द्र होगी।

तुम दोनों को उस समय केवलज्ञान होगा। तब इशानेन्द्र तुम दोनों के केवलज्ञान का महोत्सव करेगा।

इशानेन्द्र इशान देवलोक से च्यवकर मानवजन्म प्राप्त करेगा। दीक्षा ग्रहण कर केवलज्ञान पाकर मोक्ष को उपलब्ध होगा।

वज्रायुद्ध के वचन सुनकर सभी आश्चर्य विस्मित हो गए। उसके वचनानुसार पवनवेग राजा, उसकी पुत्री शांतिमती एवं अजितसेन विद्याधर तीनो ने संयम स्वीकार किया।

सहस्त्रायुद्ध की रानी जयना ने रात्रि को स्वप्न में प्रकाशमान कनकशक्ति को देखा। प्रातःकाल उसने पति को स्वप्न की घटना बताई।

सहस्त्रायुद्ध ने कहा—हे देवी ! तुझे महाशक्तिमान पुत्र की प्राप्ति होगी। रानी ने गर्भ धारण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने पुत्र को जन्म दिया। स्वप्नानुसार उसका नाम कनकशक्ति रखा।

जब वह युवा अवस्था को प्राप्त हुआ तब सुमदिरपुर के राजा मेरूमाली को मल्ला नामक रानी से एक पुत्री की प्राप्ति हुई, जिसका नाम था कनकमाला; उसके साथ उसका विवाह हुआ।

मशक्यसार नगर मे अजितसेन नामक राजा था। उसे प्रियसेना नामक रानी थी। उन्हें वसन्तसेना नामक पुत्री थी। वह कनकमाला की प्रिय सखी थी। उसके पिता ने वज्रायुद्ध के पौत्र कनकशक्ति के साथ उसका विवाह किया।

इस विवाह से वसन्तसेना का लडका कोपायमान हुआ। एक बार कनकशक्ति अकेला उद्यान मे भ्रमण कर रहा था।

उस समय वहां ऊंचे उड़ते हुए एवं नीचे गिरते एक मानव को देखकर उसने पूछा कि हे मानव तूं पक्षी की तरह क्यों उड़ता है और गिरता है ? उसने कहा— मै वैताढ्य पर्वतवासी विद्याधर हू। किसी कार्यवश आगे जाते हुए यह उद्यान दृष्टिगोचर हुआ। उदायन की सौदर्यता से मै मुग्ध हो गया। देखने के लिए कुछ क्षण रुका। तत्पश्चात् उड़ने केलिए आकाशगामिनी विद्या का मैने स्मरण किया।

किन्तु विद्या का एक पद भूल जाने से मै बार-बार गिर रहा हूं।

कनकशक्ति ने कहा—यदि आपको उचित लगे तो मुझे विद्या के पद बताइये। मै समाधान करने का प्रयत्न करूंगा। उसकी योग्यता को जानकर उसने विद्या उसे बताई।

पदानुसारी बुद्धि से कनकशक्ति ने भूला हुआ पद बता दिया।

प्रसन्न होकर विद्याधर ने कनकशक्ति को आकाशगामिनी विद्या प्रदान की। विद्या सिद्ध कर वह महान विद्याधर बना।

वसंतसेना का पुत्र जो कनकशक्ति का द्वेषी था। वह उसे कुछ भी नही कर पाया। अनशन से मरकर वह हिमचूल देव बना।

कनकशक्ति विद्याबल से पृथ्वीपर स्वेच्छापूर्वक घूमने लगा।

एक बार वह हिमवंत गिरि पर गया। वहां विपुलमति नामक चारणमुनि को उसने देखा।

तपस्वी मुनि को वंदना कर वह बैठा। दोनों पत्नियों सहित वह मुनि का उपदेश सुनने लगा।

उपदेश श्रवण से उसे वैराग्य हुआ। कनकशक्ति ने दीक्षा ग्रहण की। उनकी पत्नियों ने भी दीक्षा ग्रहण की।

उसी पर्वत मे एक शिला पर वे कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे। आत्मध्यान में स्थित हुए।

उस समय पूर्व के वैरी हिमचूल देव ने उपसर्ग देना प्रारंभ किया। कष्ट होने पर भी मुनि चलायमान नही हुए। उपसर्ग करते हुए देव को विद्याधरों ने देखा। उन्होंने उसे भगा दिया।

कायोत्सर्ग ध्यान पूर्ण कर मुनि वहां से विहार करते हुए रत्नसंचया नगरी में पधारे। नगर के बाहर सुरनिपात नामक उद्यान मे पर्वत की तरह स्थिर होकर रात्रि प्रतिमा धारण की।

आत्मध्यान में स्थित मुनि ने उसी रात्रि में धातीकर्मो का विनाश किया, उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवो ने केवलज्ञान की महिमा की। मुनि की महिमा देख हिमचूल देव भयभीत हो गया और मुनि की शरण में आया।

वज्रायुद्ध ने भी मुनि का केवलज्ञान महोत्सव किया। पश्चात् अपने नगर में गया।

एक बार करोडों देवो एवं राजाओं से सेवित श्री क्षेमंकर नामक तीर्थकर वहां पधारे। देवो ने समवसरण की रचना की।

राजसेवको ने वज्रायुद्ध चक्रवर्ती को समाचार दिए कि—हे राजन ! श्री क्षेमंकर तीर्थकर उद्यान में पधारे है। राजा ने उन्हे साडा बार क्रोड़ स्वर्ण मोहरे भेंट की। वज्रायुद्ध परिवार के साथ प्रभु के पास गया।

तीन प्रदक्षिणा देकर वंदना की और प्रभु के पास बैठकर पवित्र वाणी का श्रवण किया। धर्मदेशना से उन्हे वैराग्य हुआ। प्रभु के सामने दीक्षा की भावना प्रकट की।

प्रभु ने कहा—शुभ कार्य जल्दी कर लेना चाहिए। वज्रायुद्ध चक्रवर्ती शीघ्र ही नगर में गए और सहस्रायुध को राज्यसिंहासन पर बिराजमान किया।

तत्पश्चात् वज्रायुद्ध श्री क्षेमंकर प्रभु के समीप गए। वहां उन्होंने चार हजार रानी, [illegible] सात सौ पुत्रो के साथ संयम ग्रहण किया। वे उग्र साधना करने लगे। परिसहो को [illegible]

विहार करते हुए सिद्धि नामक पर्वत पर पधारे ।

पर्वत पर वे आत्मसाधना में कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर हो गए ।

अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव के पुत्र मणिकुंभ और मणि केतु चिरकाल तक भवभ्रमण किया और अज्ञा
तप करके असुर कुमार देव बने ।

स्वेच्छा से विचरण करते हुए वे अकस्मात उस पर्वत पर आए । आत्मध्यान में स्थिर महर्षि वज्रायु
को उन्होंने देखा ।

अमिततेज के भव का वैर उन्हें याद आया । मुनि को वे उपद्रव करने लगे । शेर का रूप निर्मित क
वे उन्हें तीक्ष्ण दांतों एवं नाखून से उनके शरीर को विदीर्ण करने लगे ।

हाथी का रूप बनाकर सूंढ से एवं पांव से प्रहार करने लगे ।

सांप आदि के विभिन्न रूपों में जब वे उपसर्ग कर रहे थे । उस समय इन्द्र की रंभा तिलोत्तमा अ
अप्सराएं एवं अन्य देवियां अरिहंत भगवान को वंदन केलिए जा रही थी । मुनि को उपसर्ग करते हुए दे
देवों को उन्होंने देखा । देवियां उन पर कोपायमान हुई । उन्हें कठोर वचन कहे । तेज गति से उतरती
देवियो को देखकर वे भयभीत हुए और भाग गए ।

देवियों ने मुनि समक्ष भक्ति से नृत्य किया । पश्चात् मुनि को वंदना कर अपने विमानों में गई ।

वज्रायुद्ध मुनि ने कायोत्सर्ग ध्यान पूर्ण कर वहां से विहार किया ।

राजा सहस्त्रायुद्ध भी सुंदर रूप से राज्य का संचालन करने लगा ।

एक बार नगरी के बाहर मुनि परिवार के साथ पिहिता श्रव नामक गणधर महाराज पधारे ।

राजा सहस्त्रायुद्ध निज परिवार के साथ उनके पास गए । वंदना कर उनके समक्ष बैठे गणधर भगवंत
ने आत्मकल्याण के लिए धर्मबोध दिया ।

अमृतमय वाणी से उन्हें वैराग्य हुआ । सुपुत्र शतबल को राज्य सौप दिया ।

गणधर महाराज के पास उन्होंने दीक्षा स्वीकार की । आराधनामय जीवन यापन करते हुए वे विहार
करने लगे ।

एक बार विहार करते हुए सहस्त्रायुद्ध मुनि को राजर्षि वज्रायुद्ध का मिलन हुआ । पिता एवं पुत्र
दोनों साथ रह कर तप साधना करने लगे ।

चिरकाल तक उन्होंने साधना की । अंत में दोनों मुनियो ने ईषत्प्रात्रभार नामक गिरि पर
पादपोपगम अनशन किया ।

आयुष्य परिपूर्ण होने पर दोनों महामुनिवरों ने महासमृद्धिवाले तीसरे ग्रैवेयक में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। पच्चीश सागरोपम की स्थिति वाले देव हुए।

इस जंबूद्वीप के पूर्वमहाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय है। वहां सीता नदी के किनारे पुंडरीकिणी नामक नगरी है।

धनरथ नामक वहां का राजा था। उन्हें प्रियमती एवं मनोरमा नामक दो रानियां थी।

वज्रायुद्ध की आत्मा ग्रैवेयक देवलोक से च्यवकर महादेवी प्रियमती की कुक्षी में उत्पन्न हुई।

उस समय माता ने स्वप्न मे विद्युत से प्रकाशमान गर्जते एवं बरसते हुए मेघ को मुख में प्रवेश करते हुए देखा।

उसने प्रात काल राजा को स्वप्न की बात कही। स्वप्न सुनकर राजा ने कहा—मेघ की तरह संसार के सताप को हरने वाले पुत्र की तुम्हे प्राप्ति होगी।

सहस्त्रायुद्ध की आत्मा रानी मनोरमा की कुक्षी मे उत्पन्न हुई। रात्रि समय स्वप्न में उसने स्वर्णमय घुघरू ध्वजाओं से सुशोभित एवं लोहे के चक्रवाले रथ को मुख में प्रवेश करते हुए देखा।

प्रातःकाल स्वप्न रानी ने राजा को बताया। राजा ने कहा—हे रानी ! महारथियो में अग्रसर पराक्रमी पुत्र की तुम्हे प्राप्ति होगी।

दोनो रानियो ने समय पर दो पुत्रों को जन्म दिया। प्रियमती के पुत्र का राजा ने स्वप्न अनुरूप मेघरथ नाम रखा मनोरमा के पुत्र का स्वप्न अनुसार द्रढरथ नाम रखा।

दोनों मे अपूर्व भ्रातृप्रेम था। धीरे-धीरे बढते हुए वे यौवन अवस्था को प्राप्त हुए।

एक बार सुमंदिरपुर के राजा निहत्शत्रु का मंत्री धनरथ राजा के पास आया। उसने राजा को नमस्कार कर प्रार्थना की कि राजन ! आपके गुणो की सुगंध सर्वत्र फैली हुई है।

आपके गुण एवं यश से प्रभावित हमारा राजा निहत् शत्रु आपसे स्नेह संबंध जोडना चाहता है। हमारे राजा को तीन रानियो से तीन कन्याएं है। वे युवावस्था को प्राप्त हुई है।

उनमे से दो कन्या मेघरथ को एवं एक कन्या दढरथ को देने की उनकी इच्छा है। जिससे पारस्परिक संबंध और दृढ होगा। राजा ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

जैसे पर्वत के झरनो से नदी का जल वृद्धि को पाता है, वैसे ही सत्पुरुषो की मैत्री का व्यवहार निरंतर बढता जाता है।

मंत्री ने विनंति की कि राजन् ! तिथि का आज ही निर्णय किया जाय। तत्पश्चात् दोनो कुमारो को आप सुमंदिरपुर शीघ्र ही भेजें।

उसी समय राजा ने ज्योतिषी को बुलाया। लग्नतिथि का निश्चय किया। कुमारो को जाने की आज्ञा दी और मंत्री को ससम्मान विदा किया।

प्रसन्नमन से मंत्री सुमंदिरपुर पहुंचा। राजा को संपूर्ण घटना बताई।

तत्पश्चात् राजा धनरथ ने दोनों कुमारो को सुमंदिरपुर भेजा।

मंत्री एवं सेना के साथ वे दोनों गतिमान हुए। कुछ समय पश्चात् बढते हुए वे सुरेन्द्रदत्त राजा के देश की सीमा मे आए।

उस समय सुरेंद्र दत्त राजा ने एक दूत को भेजा। उसने अभिमान से कहा—हमारे राजा इन्द्र जैसे पराक्रमी है। हमारे देश के मध्य में से गुजरने की उन्होंने तुम्हें अनुमति नही दी है।

अतः तुम हमारे देश की सीमा को छोड़कर अन्य मार्ग से चले जाओ। क्योंकि सिंह के रास्ते हिरन का गुजरना ठीक नही होता है।

बुद्धिमान मेघरथ ने कहा—"हमारे लिए यही सरल रास्ता है अतः इसे हम कैसे छोड सकते है?"

नदी खड्डों वृक्षो एवं चट्टानों के सामने भी अपना रास्ता छोड़ती नही है। हम भी इस सरल रास्ते को नही छोड़ेंगे। अतः हम इसी रास्ते से जाएंगे। हम तुम्हारे राजा का मुकाबला करने को तैयार है।

मेघरथ राजा की ये बाते दूत ने जाकर सुरेन्द्रदत्त राजा को कही। दूत की बातों से राजा क्रोधायम हो गया। उसने युद्ध की भेरी बजवाई। सेना एवं युवराज के साथ वह मैदान मे आ गया।

मेघरथ के साथ वे युद्ध करने लगे। परस्पर शस्त्रों का छेदन करने लगे।

मेघरथ एवं द्रढरथ ने कुछ समय में ही उसे पराजित कर दिया। शत्रुराजा को बंधन मे डाल दिया। राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर वे आगे बढ़ने लगे।

जब वे सुमंदिरपुर पहुंचे, तब राजा निहत् शत्रु उनके सामने आया। सम्मान के साथ उन्हें राजमहल मे ले गया।

प्रेम से उनका आतिथ्य किया।

शुभ मुहूर्त में प्रियमित्रा और मनोरमा नामक अपनी दो कन्याओं का विवाह किया। सुमति नामक छोटी कन्या की शादी द्रढरथ के साथ की।

धूमधाम के साथ विवाह करने के पश्चात् वे दोनों अपने नगर की ओर बढ़ने लगे। पुनः सुरेन्द्र दत्त राजा का देश आया। उसे राज्य पर स्थापित कर अपनी नगरी में पहुंचे।

सुखपूर्वक काल निर्गमन करने लगे। संसार के भोग भोगने लगे।

कुछ समय पश्चात् मेघरथ की दोनो रानियों ने पुत्रों को जन्म दिया। प्रियमित्रा के पुत्र का नाम दीपेण एवं मनोरमा के पुत्र का मेघसेन नाम रखा गया।

द्रढरथ की पत्नी सुमति ने भी उत्तम पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया रथसेन।

एक वार धनरंथ राजा रानियों एवं पुत्रों के साथ बैठा हुआ हंसी मजाक की बाते कर रहा था। उस समय एक वेश्या हाथ में मुर्गा लेकर आई। वहां आकर राजा को प्रार्थना करने लगी कि—हे राजन्! यह मेरा मुर्गा अति वलवान है। वह अन्य से पराजित नही होता है।

यदि किसी अन्य का मुर्गा इसे पराजित कर देगा तो मै उसे एक लाख स्वर्ण मोहरें दूंगी।

समीप खडी मनोरमा ने वेश्या की बात सुनकर कहा—स्वामीनाथ! मै अपने मुर्गे के साथ इसका युद्ध कराने के लिए तैयार हू।

राजा ने रानी को युद्ध केलिए आज्ञा प्रदान की। राजा के आदेश से रानी ने अपना वज्रतुंड नामक मुर्गा दासी के साथ मंगवाया। फिर दोनो मुर्गो को परस्पर मैदान मे खड़ा किया।

दोनों ही मुर्गे लडने लगे। एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। खून निकलने से उनके मुख लाल हो गए।

लडते हुए कभी मनोरमा एवं कभी वेश्या सुरसेना के मुर्गे के जीतने की भ्रांति होने लगी, किन्तु कोई भी मुर्गा जीत नही पाया।

काफी समय तक युद्ध देखने के वाद राजा धनरथ ने कहा कि दोनो में से किसी की भी जीत नही होगी। तव मेघरथ ने कहा दोनो मे से किसी की हारजीत क्यों नही होगी?

प्रत्युत्तर मे त्रिकालज्ञानी राजा धनरथ ने कहा—इन दोनों का पूर्वभव सूनो।

इस जंवूद्वीप के एरवत क्षेत्र मे रत्नपुर नामक नगर था।

उस नगर मे धनवसु और दत्त नामक दो परम मित्र वणिक रहत थे। उनकी धन की तृष्णा का कोई पार नही था।

धन केलिए वे अनेक प्रकार के पाप करते थे। वे वेईमानी एवं धोखेवाजी करते थे। लोगों से लडाई करते थे। उनका हृदय निर्दय एवं कठोर था। अतः उनका व्यवहार क्रूर था। मायामय उनका आचरण था।

पापमय प्रवृत्ति मे, आर्तध्यान से उन्होने तिर्यंच आयु का वंध किया।

एक वार श्री नदी तीर्थ मे दोनो ही परस्पर लडने लगे। वहां मरकर दोनो एरवत क्षेत्र की सुवर्णकला नदी के किनारे ताम्रकलश एवं कांचन कलश नामक हाथी हुए।

यौवन अवस्था मे वे स्वछंद रूप मे घूमने लगे। एक वार वे अलग-अलग ग्रुप के स्वामी होकर

विचरण कर रहे थे। अचानक वे इकट्ठे हो गए।

पूर्व जन्म के वैर से वे रुष्टमान हो गए। भयंकर रूप से वे लड़ने लगे। परस्पर दांत एव सूंढ से प्रहार करने लगे। दोनों एक साथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

वहां से मरकर जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी में नंदिमित्र नामक व्यक्ति था। जिसके पास सैकड़ों भैंसे थी। वे दोनों वहां भैंसे के रूप मे जन्मे।

एक दिन नगरी के शत्रुंजय राजा के धनसेन एवं नंदिपेण नामक राजकुमारो ने दोनों युवा भैसो को देखा।

कुमारों ने मजा लेने केलिए दोनो को भीड़ा दिया। भयानक रूप से लडते हुए दोनो मरण की शरण हो गए।

मरकर उसी नगरी में पुनः दोनों बकरे के रूप में उत्पन्न हुए। काल एवं महाकाल उनका नाम था। एक दिन सहसा दोनों इकट्ठे हो गए। वहां भी पूर्व के वैर से लड़ते हुए मर गए।

मरक़र दोनों समान बलवाले मुर्गे हुए है। पूर्व मे भी दोनो में से कोई किसी को जीत नही पाया।

समान बली होने से अभी भी कोई किसी को जीत नहीं पायेगा।

उस समय मेघरथ ने कहा—ये मुर्गे पूर्व जन्म के वैरी है। इतना ही नही ये दोनो विद्याधरो से अधिष्ठित है, अतः ये आपस में युद्ध करते है।

धनरथ ने ये बात भी कहने की मेघरथ को प्रेरणा दी। अतः मेघरथ ने दोनो हाथ जोडकर निम्न घटना बताई—

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में स्वर्णनाभ नामक नगर था। गरुडवेग नामक वहां का राजा था। धृतिषेणा नामक उसकी रानी थी।

उसने सूर्य चंद्र से सूचित दो पुत्रों को जन्म दिया। चंद्रतिलक एवं सुरतिलक उनके नाम रखे गए धीरे-धीरे वे युवावस्था को प्राप्त हुए।

एक बार दोनों कुमार मेरू पर्वत शिखर पर शाश्वत अरिहंत भगवान की प्रतिमा को वंदन के लिए गए।

प्रभु दर्शन के पश्चात वे घूमने लगे। चारों ओर दृष्टिपात करने लगे।

उस समय स्वर्णशिला पर बिराजमान सागरचंद्र नामक एक चारणमुनि के उन्हे दर्शन हुए। वंदना कर वे उनके समक्ष बैठ गए एवं जिनवाणी श्रवण करने लगे।

धर्मदेशना के अंत में नमस्कार कर उन्होंने कहा—"मुनिवर! आप परोपकारी है। हम पर कृपया

कीजिए एवं हमारे पूर्व जन्मों का स्वरूप बताइये।"

मुनि बोले--धातकी खण्ड के पूर्व एरवत क्षेत्र में वज्रीपुर नामक नगर था। वहां सर्व जीवों को अभय देने वाला अभयघोष नामक राजा था। उसे स्वर्णतिलका नामक रानी थी। उसने दो पुत्रों को जन्म दिया। जिसके विजय एवं जयंत नाम रखे गए।

अध्ययन कर वे विद्या मे पारंगत हुए एवं युवावस्था को प्राप्त हुए।

उस समय एरवत क्षेत्र के स्वर्णद्रुम नामक नगर था। शंख राजा उसका स्वामी था। पृथ्वी नामक उसकी रानी थी। पुष्पमाला से सूचित उसने एक पुत्री को जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया पृथ्वी सेना।

पुत्री के योग्य वर अभयघोष है, यह सोचकर शंख राजा ने अभयघोष के साथ ही पुत्री का विवाह किया।

राजा अभय घोष उसके साथ संसार सुख भोगने लगा।

एक दिन वसंत ऋतु के पुष्पों को हाथ में लेकर एक दासी राजा अभय घोष के पास आई। उसे देखकर रानी स्वर्णतिलका ने कहा--स्वामी! वसंत ऋतु ने हमारे षड्ऋतुक नामक उद्यान को सुशोभित कर दिया है। अत. हे स्वामी! वसंत ऋतु का आनंद लेने केलिए अपने परिवार के साथ चलें। उस समय पृथ्वी सेना मूल्यवान पुष्पो को लेकर राजा के पास आई। उसे देख राजा अति प्रसन्न हुआ। पृथ्वी सेना एव अन्य उचित परिवार को लेकर राजा उद्यान मे गया।

वहा अनेक प्रकार की क्रीडाए की। तत्पश्चात् रानी पृथ्वीसेना इधर-उधर घूमने लगी।

कुछ दूरी पर उसे दंतमंथन नामक एक ज्ञानी मुनि के दर्शन हुए। वह अत्यंत प्रसन्न हुई। वंदना कर वह मुनि के समक्ष बैठ गई। मुनि ने धर्मदेशना दी।

मुनि की वाणी से उसे वैराग्य हुआ। राजा की अनुमति से मुनि के पास दीक्षा स्वीकार की। पृथ्वीसेना की प्रशंसा करता हुआ राजा अभयघोष अपने महल में चला गया।

एक बार वह राजा अभयघोष अपने महल के गवाक्ष मे खड़े थे। छद्मस्थावस्था में विचरते हुए प्रभु अनंत जी को अपने महल मे प्रवेश करते हुए देखा।

राजा तत्काल उनके सामने गया। उन्हे नमस्कार किया। उसने प्रभु को भिक्षा प्रदान की। प्रभु ने पारणा किया। देवों ने पांच दिव्य प्रकट किए।

प्रभु ने अन्यत्र विहार किया। छद्मस्थ प्रभु अन्य मुनि की तरह स्थिर नही रहते हैं।

केवलज्ञान प्राप्त होने पर विहार करते हुए प्रभु वज्रीपुर नगर ने पधारे। देव रचित समवसरण में

बिराजमान हुए।

प्रभु का आगमन जानकर अभयघोष राजा भी उनके पास गया। तीन प्रदक्षिणा देकर वंदना की। प्रभु की वाणी सुनी।

धर्मदेशना के पश्चात् राजा ने कहा—प्रभो ! आप परोपकारी है। आप के चरणो में मेरी प्रार्थना है कि जब तक अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर नहीं आऊं तब तक आप यहीं बिराजें। आपके चरणो मे मै दीक्षा लेना चाहता हूं।

प्रभु ने कहा—शुभ कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए। राजा घर गया। दोनों पुत्रों को राज्य ग्रहण करने केलिए कहा। राजा ने कहा—यह राज्यभार सौपकर मै दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

पुत्रों ने कहा—पिताजी ! असार संसार का हम भी त्याग करना चाहते है। जिससे हमे आपकी सेवा एवं मोक्ष फल की प्राप्ति होगी।

राजा ने उन्हें धन्यवाद दिया। राजा ने राज्य किसी अन्य को प्रदान कर दिया।

दोनों पुत्रों के साथ वे अनंतनाथ प्रभु के पास गए। सभी ने प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार की। तीनो मुनियों में अक्षयघोष ने उग्र तप किया। वीश स्थान की आराधना से उन्होंने तीर्थंकर गोत्रकर्म उपार्जन किया।

आयुष्य पूर्ण होने पर तीनों अच्युत देवलोक में बावीश सागरोपम की आयु वाले देव हुए।

इस जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र की पुष्कलावती विजय में पुंडरीकिणी नामक नगरी है। उस नगरी में हेमांगद नामक राजा है। वज्रमालिनी नामक रानी है।

अच्युत देवलोक से च्यवकर अभयघोष की आत्मा वज्रमालिनी के गर्भ में उत्पन्न हुई।

परिपूर्ण समय होने पर वज्रमालीनी ने चौदह स्वप्नों से सूचित तीर्थंकर रूप पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रादी देवों ने उनका जन्माभिषेक महोत्सव किया।

पिता ने उनका धनरथ नाम रखा। वे धनरथ तीर्थंकर अभी गृहवास में रहकर पृथ्वी को पावन कर रहे है। विजय एवं जयंत तुम दोनों देवलोक से च्यवकर चंद्रतिलक एवं सूर्यतिलक नामक विद्याधर हुए हो।

इस प्रकार अपना पूर्भभव सुनकर वे अति प्रसन्न हुए। पश्चात् वे मुनि को नमस्कार कर पूर्व जन्म के पिता आपको देखने केलिए आए है।

हे स्वामी ! उन्होंने क्रीड़ा करने केलिए मुर्गे में प्रवेश किया एवं उनको लड़ाई कराई। आपके दर्शन का यह उपाय किया है।

अब वे भोगवर्द्धन गुरु के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करेंगे। संपूर्ण कर्मो का क्षय कर मोक्षपद प्राप्त करेगे।

इस घटना को सुनकर वे प्रकट हुए एवं धनरथ राजा को नमस्कार कर वे अपने घर की ओर गए।

सारी बात सुनकर मुर्गो को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। वे सोचने लगे। यह संसार दुःखों की खान है।

पूर्व जन्म में वणिक होकर हमने कोई सत्कर्म नही किया। मानव जन्म निरर्थक गंवा दिया।

परस्पर की हत्या कर दुर्गति के दुःख प्राप्त किए। धिक्कार हो इस पापमय जीवन को। इस प्रकार वे पश्चात् करने लगे।

राजा को नमस्कार कर उन्होने कहा— हे राजन ! आत्म हित केलिए हमें मार्गदर्शन दीजिए।

धनरथ राजा ने अवधिज्ञान से जानकर कहा—अरिहंत प्रभु एवं उनके धर्म की शरण स्वीकार करो।

धनरथ का वचन उन्होने स्वीकार किया। दोनों मुर्गे अनशन कर मृत्यु को प्राप्त हुए।

मरकर दोनों भूतरला नामक विराट जंगल में ताम्रचूल एवं स्वर्णचूल नामक महर्द्धिक भूतनायक देव हुए।

अवधिज्ञान से पूर्वजन्म को जानकर उपकारी मेघरथ के पास विमान मे बैठकर आए। उन्हे नमस्कार कर बोले।

हे स्वामी ! आपकी कृपा से हम व्यंतरेश्वर हुए है। मुर्गे के भव में आपने ही हमारा उद्धार किया है। अन्यथा न जाने हमारी क्या गति होती ?

हम पर अनुग्रह करो, विमान में विराजमान होकर पृथ्वी का अवलोकन करो।

मेघरथ ने उनकी विनती स्वीकार की। परिवार के साथ विमान मे बैठे। विमान आकाशमार्ग मे आगे बढने लगा।

पृथ्वी पर दर्शनीय वस्तु वे अंगुली से बताने लगे। मेघरथ को उन्होने मेरुगिरि की चुलिका, अरिहत प्रभु के अभिषेक स्थल, लवणसमुद्र पुष्पकर द्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत आदि अनेको स्थल बताए।

तत्पश्चात् पुंडरीकिणि नगर में उन्हे ले आए। राजमंदिर में उन्हें विराजमान किया।

नमस्कार कर रत्नो की वृष्टि की एवं अपने स्थान मे गए।

एक बार लोकांतिक देवो ने आकर धनरथ राजा को कहा— कि स्वामी ! जगत् हितकारी धर्मतीर्थ प्रवर्ताओ।

यह सुनकर स्वयंबुद्ध होने पर भी बोध को प्राप्त हुए। अत. मेघरथ को राज्य एवं दृढरथ को युवराज

पद देकर वर्षीदान देना प्रारंभ किया।

एक वर्ष पश्चात् उन्होंने संयम स्वीकार किया। आत्म ध्यान से उन्होने केवलज्ञान पाया। भव्यजीवों का कल्याण किया। कर्मो का क्षय कर मोक्षपद प्राप्त किया।

मेघरथ राजा द्रढरथ के साथ राज्य का सुचारू रूप से पालन करने लगा।

एक बार नगरजनो के आग्रह से मेघरथ क्रीड़ा करने केलिए देवरमण नामक उद्यान में गया।

वहां एक अशोक वृक्ष के नीचे रानी प्रियमित्रा के साथ बैठे एवं मधुर संगीत प्रारंभ करवाया।

उस समय उनके समक्ष हजारो भूत अपूर्व संगीत करने की इच्छा से प्रगट हुए। कोई बडे पेट वाले, कोई तालवृक्ष जैसे ऊंचे शरीरवाले, किसी के गले मे सांप लटक रहे थे। किसी ने व्याघ्रचर्म धारण कर रखा था, कोई ताल बजा रहे थे एवं कोई अट्टहास कर रहे थे।

इस प्रकार सभी भूत राजा को आनंद देने केलिए विभिन्न प्रकार की क्रीड़ा कर रहे थे।

उस समय आकाश मे एक उत्तम विमान प्रकट हुआ। विमान में एक रूपवान व्यक्ति रूपवती नारी के साथ बैठा हुआ था।

उसे देखकर रानी प्रियमित्रा ने राजा से पूछा—हे स्वामी ! यह पुरुष एक नारी के साथ बैठा है यह कौन है एवं यहां पर क्यों आया है ?

मेघरथ ने कहा—इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र के वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में अलका नाम की उत्तम नगरी है। वहां विधद्रथ नामक विद्याधर राजा है। उसे मानसवेगा नामक रानी है।

रथ में जुडे सिह के स्वप्न से सूचित पुत्र को उसने जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया सिहरथ।

युवावस्था में वेगवती नामक कन्या के साथ उसका विवाह किया गया।

राजा विधद्रथ ने उसे युवराज पद दिया। संसार के सुखों में वह जीवन यापन करने लगा।

एक बार विधद्रथ राजा को संसार की नश्वरता का भान हुआ। किसी गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा से पूर्व सिहरथ को राज्यभार सौप दिया।

आत्मध्यान से कर्मो का क्षय कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

सिहरथ ने अतिदुर्लभ विद्याधर राजाओं का चक्रवर्ती पद प्राप्त किया।

एक बार रात्रि समय में सिहरथ की निद्रा भंग हो गई। तब वह सोचने लगा—जंगल के पुष्प की तरह मेरा जीवन व्यर्थ जा रहा है।

संसार तारक अरिहंत प्रभु के मैने अभी तक दर्शन नही किए। उनकी पूजा भी नही की।

अव विहरमान तीर्थकर भगवान के साक्षात् दर्शन कर आत्मा को निर्मल करूं। उनका दर्शन भी संसार से तारने वाला है। शुभ भावो से भरा हुआ राजा पत्नी के साथ धातकी खण्ड के पश्चिम विदेह मे सीता नदी के तट पर सूत्र नामक विजय में खड्गपुर नामक नगर में गया।

वहा श्री अमित वाहन तीर्थकर भगवान के दर्शन किए। परमात्मा की अमृतमय वाणी का श्रवण किया।

धर्मदेशना के पश्चात् वह अपने नगर की ओर लौट रहा था। आकाश में उडान भरते हुए उसकी गति मे वाधा पड़ी। गति में अड़चन डालने वाला कौन है, यह जानने केलिए उसने नीचे देखा।

उस समय यहां रहे हुए उसने मुझे देखा। क्रोधायमान होकर मुझे उठाने के लिए वह मेरे पास आया। तब मैंने उसे बाएं हाथ से दबाया तो वह क्रंदन करने लगा।

पति के कष्ट से दुःखी होकर उसकी पत्नी मेरी शरण में आई। उसके प्रति दया के कारण मैंने उसे छोड दिया।

मेरे द्वारा छोड़ने पर वह विभिन्न रूप से संगीत बजाने लगा।

प्रियमित्रा ने पुनः पूछा—प्रिय ! पूर्वजन्म मे इसने क्या शुभ कर्म किया है, जिससे इसे महान ऋद्धि प्राप्त हुई है।

मेघरथ वोले—पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व भरत क्षेत्र में संघपुर नामक एक बडा नगर है।

उस नगर मे राज्य गुप्त नामक एक कुलपुत्र रहता था। वह दरिद्र था। अन्य के काम करके वह अपना निर्वाह करता था।

शंखिका नामक उसे पतिभक्ता स्त्री थी। एक बार फल लेने के लिए दोनों संघगिरि पर्वत पर गए। फल की खोज करते हुए उन्हे सर्वगुप्त नामक मुनि के दर्शन हुए। मुनि विद्याधरो को देशना दे रहे थे।

मुनि को नमस्कार कर वे उनके समक्ष बैठ गए। मुनि ने उन्हे भी धर्मबोध दिया।

दुःखी जीवो पर महापुरुषो का अधिक वात्सल्य होता है। देशना के अंत मे उन्होंने कहा—हे महामुनि ! जीवन के कल्याण के लिए हमारे योग्य कोई तप वताइये।

मुनि ने उनकी योग्यता को देखकर वत्तीश कल्याणक तप वताया।

तप को स्वीकार कर वे घर पर आए। वत्तीश उपवास करके उन्होने यह तप किया।

पारणा के समय वे मुनि की खोज करने लगे। द्वार पर खड़े होकर सुपात्रदान हेतु भावना भाने लगे।

उस समय धृतिधर नामक साधु को घर में प्रवेश करते हुए देखा। दोनों ने अत्यंत भक्ति से

सुपात्रदान का लाभ लिया ।

एक बार सर्वगुप्त मुनि विहार करते हुए पुनः पधारे । उनके पास जाकर उन्होंने धर्मदेशना सुनी । उन्हे वैराग्य हुआ । दोनों ने दीक्षा ग्रहण की ।

राजगुप्त मुनि ने गुर्वाज्ञा से आचामत्र वर्द्धमान नामक दुष्कर तप किया । अंत में अनशन द्वारा मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्मदेवलोक में दश सागरोपम की आयु वाले देव बने ।

वहां से च्यवकर विद्याधरपति यह सिंहस्थ हुआ है। उसकी स्त्री संखिका भी साधना कर ब्रह्मदेवलोक में देवता हुई ती वहां से च्यवकर उसकी पत्नी हुई है ।

अब यहां से अपने नगर जाकर पुत्र को राज्य सौप कर यह राजा मेरे पिता के पास दीक्षा ग्रहण करेगा । कर्मो का क्षय कर सिद्धिपद को प्राप्त करेगा ।

मेघरथ के ये वचन सुनकर उन्हें नमस्कार कर राजा सिहरथ अपने नगर गया । पुत्र को राज्य सौपकर सिहरथ ने धनरथ स्वामी के पास दीक्षा स्वीकार कर ली । साधना से सिद्धिपद प्राप्त किया ।

राजा मेघरथ परिवार के साथ देवरमण उद्यान से पुनः पुंडरीकिणी नगरी में प्रवेश किया ।

एक बार मेघरथ राजा साधना भवन में पौषध स्वीकार करके बैठे थे । उस समय भय से कपायमान एक कबूतर उनकी गोद मे गिरा ।

उसने मानव की भाषा में अभय की याचना की । अतः राजा ने कहा— भयभीत मत हो ।

राजा के आश्वासन से वह निःशंक होकर बैठ गया ।

कुछ समय पश्चात एक गरूड़ उसके पीछे आया एवं कहने लगा । हे राजन ! इसे छोड दो । यह मेरा भक्ष्य है ।

राजा ने कहा—हे बाज मै यह पक्षी तुझे दूंगा नही, क्योंकि शरणार्थी को सौप देना क्षत्रियो का धर्म नही, एवं तेरे जैसे बुद्धिमान केलिए अन्य प्राणो से अपने शरीर का पोषण करना उचित नही है ।

तेरे शरीर से एक पंख उखाड़ा जाय तो जैसी पीड़ा तुझे होती है वैसी पीड़ा दूसरे को भी होती हैं। अतः दूसरे को मारने से कितनी पीड़ा होती होगी इसका तूं विचार कर, पंचेन्द्रिय प्राणियों की हत्या से एवं मांस भक्षण से जीवात्मा नर्क में जाता है । वहां भयंकर दुःख भोक्ता है ।

क्षणिक सुख केलिए महान दुःख देने वाली हिसा करने केलिए कौन तैयार होगा ?

मेघरथ ने कहा—"हे पक्षी दुःखदायिनी तूं हिसा का परित्याग कर दे । धर्म का आचरण कर जिससे तेरा भवोभव कल्याण होगा ।"

पक्षी बोला—"हे राजन ! यह कबूतर मेरे भय से तुम्हारी शरण मे आया है । मै भी भूख से व्याकुल

होकर इसके पीछे आया हूं । मै भी कहां जाऊं ।"

"दयालु महापुरुष सभी का रक्षण करते हैं । आप जैसे कबूतर की रक्षा कर रहे हो वैसे मेरी भी रक्षा करो । अन्यथा भूख से मेरे भी प्राण चले जाएंगे । भूख से व्याकुल धर्मी कौन सा पाप नही करता ? धर्म की बात अब समाप्त कीजिए ।"

एक को मारना एवं एक को बचाना यह कौन सा धर्म है ? अतः मेरा भक्ष्य यह पक्षी मुझे प्रदान कर दो ।

हे राजन ! स्वयं के द्वारा मारे हुए पक्षी के ताजा मांस से ही मेरी तृप्ति होतीहै । अन्य भोजन से नही । मैं मांस ही खाता हूं ।"

राजा बोला—"हे पक्षी तूं व्याकुल मत हो एवं चिता मत कर ।

इस कबूतर के साथ स्वयं के शरीर को तोलकर मै तुझे ताजा मांस प्रदान करता हूं । गरुड ने राजा की बात स्वीकार की ।"

मेघरथ ने तराजू मंगाया । एक पल्ले मे कबूतर और दूसरे में स्वयं का मांस काट-काट कर रखने लगे । ज्यो-ज्यो राजा मांस रखने लगा, त्यों-त्यों कबूतर का भार बढने लगा ।

कबूतर के भार को बढता हुआ देखकर राजा ने अपना शरीर ही तुला में रख दिया । राजा को तुला मे आरुढ़ हुआ देखकर सर्व परिवार, मित्र एवं मंत्री सभी चिता में डूब गए ।

सभी राजा के समीप आकर कहने लगे—हे स्वामी ! आपका शरीर संपूर्ण जगत की रक्षा के लिए है अतः एक पक्षी के पीछे शरीर का त्याग करना आप केलिए उचित नही है ।

यह पक्षी भी कोई मायावी देव या दानव होना चाहिए क्योंकि सामान्य पक्षी में इतना वजन संभव नही है । इस प्रकार वे कह रहे थे, तभी हाथ में मुकुट एवं माला लेकर एक देव वहां प्रकट हुआ । वह बोला—हे राजन ! सचमुच आप महान है । मेरूपर्वत की तरह आप स्थिर है । इशानेन्द्र ने देवसभा मे तुम्हारी प्रशंसा की जो मुझ से सहन नहीं हुई । अतः तुम्हारी परीक्षा केलिए मैं यहां आ रहा था । रास्ते मे पूर्वजन्म के वैरी इन दो पक्षियो को लडते हुए देखा । इन में मै अधिष्ठित हुआ ।

आपको चलायमान करने केलिए देव भी समर्थ नही है । यह सर्व अपराध मेरा है, मुझे क्षमा करे ।

राजा को मुकुट आदि उपहार देकर वह देव देवलोक में गया ।

परिवार एवं नगरजनो ने विस्मित होकर पूछा हे राजन ! ये दोनों पक्षी पूर्व जन्म में कौन थे । उनके वैर का क्या कारण था । यह देव पूर्व भव मे कौन था । यह सर्व वताने की कृपा करे ।

मेघरथ राजा अवधिज्ञान से जानकर कहने लगे ।

इस जंबुद्वीप के एरवत क्षेत्र में पद्मिनीखंड नामक नगर था। उस नगर में सागरदत्त नामक श्रेष्ठि था। विजयसेना नामक उसकी पत्नी का नाम था।धन और नंदन नामक उन्हें दो पुत्र हुए। अनुक्रम से वे युवावस्था को प्राप्त हुए।

पिता की समृद्धि से वे सुखमय जीवन यापन करने लगे। एक वार उन्होंने पिता से कहा कि–हमे व्यापार केलिए विदेश जाने की अनुमति प्रदान करें।

प्रसन्न होकर पिता ने उन्हे अनुमति प्रदान की। नागपुर नामक एक बडे नगर में व्यापार केलिए पहुंचे।

वहां व्यापार करते हुए उनको दो श्वान के बीच एक भक्ष्य की तरह एक अति मूल्यवान रत्न की प्राप्ति हुई।

वे अपने नगर की ओर जाने लगे। रास्ते में शंख नदी के किनारे वे परस्पर युद्ध करने लगे। युद्ध करते हुए वे नदी के गहरे पानी मे गिरे एवं मृत्यु को प्राप्त हुए। लोभ से किसका विनाश नही होता है।

वहां से मरकर ये दोनों भाई पक्षी रूप में उत्पन्न हुए है।

पूर्व जन्म के द्वेष के कारण यहां भी झगड़ रहे है। अब देव का पूर्वभव सुनो—

इस जंबुद्वीप के पूर्व विदेह की सीता नदी के तट पर रमणीय नामक विजय है। वहां शुभा नामक विजय है। स्तिमितसागर नामक वहां का राजा था।'

आज से पंचम भव मे मैं उसका अपराजित नामक पुत्र हुआ। उस समय मै बलदेव था और यह द्रढरथ मेरा लघु भाई अनंतवीर्य नामक वासुदेव था।

उस समय दमितारी नामक प्रति वासुदेव था। उसे कनक श्री कन्या केलिए हमने मार दिया।

वहां से मरकर वह जंबुद्वीप के भ्रतक्षेत्र में अष्टापद गिरि के समीप निकृति नामक नदी के तट पर सोमप्रभ नामक तापस का पुत्र हुआ। अज्ञान तप से मरकर वह सुरूप नामक देव हुआ।

इशानेंद्र ने जब मेरी प्रशंसा की तो उसे ईर्ष्या हुई और वह मेरे पास आया। इन पक्षियों मे अधिष्ठित होकर इसने मेरी परीक्षा की।

मेघरथ राजा के ये वचन सुनकर गरुड एवं कबूतर दोनों पक्षियों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसी समय दोनो पक्षी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। राजा के सेवकों ने पवन डाला एवं जल का छिडकाव किया, जिससे उनकी मूर्छा टूटी।

उन्होने अपनी भाषा में कहा—हे स्वामी ! पूर्व जन्म के दुष्कर्म से हमें तिर्यच योनि प्राप्त हुई है। अति लोभ से हमने मानव जन्म निरर्थक गंवा दिया। अब हमारी रक्षा करो और सन्मार्ग बताओ जिससे हम

सद्गति को प्राप्त करें।

अवधिज्ञानी मेघरथ राजा ने उनकी योग्यता जानकर अनशन अंगीकार करने की आज्ञा प्रदान की। उन्होने भी अनशन स्वीकार किया। शुभ भावना में मरकर वे भुवन वासी देवरूप में उत्पन्न हुए।

मेघरथ राजा पोसह पारकर न्याय से पृथ्वी का पालन करने लगे।

एक बार कपोत और बाजपक्षी की घटना को याद करते हुए उन्हें वैराग्य हुआ। अतः अट्ठम तप कर काउसग्ग ध्यान मे स्थिर हुए। उस समय इशानेन्द्र ने अंतःपुर में बैठे-बैठे "नमो भगवते तुभ्यं" यह बोलकर उन्हे नमस्कार किया।

उस समय उनकी इन्द्राणियों ने पूछा कि हे स्वामी ! आप जग वंदनीय है। फिर आपने नमस्कार किसको किया।

इशानेन्द्र ने कहा—हे देवियो ! मानवलोक की पुंडरिकिणी नगरी में श्री धनरथ तीर्थकर प्रभु के पुत्र मेघरथ नामक राजा ने अट्ठम तप किया है। आत्म ध्यान में लीन होकर उन्होंने महाप्रतिमा धारण की है। वे इस भरत क्षेत्र में तीर्थकर होने वाले है।

उन्हे मैंने यहां बैठे हुए नमस्कार किया है।

आत्मध्यान से चलायमान करने केलिए उन्हें कोई भी देव या देवि समर्थ नही है।

इशानेन्द्र की सुरूपा और अतिरूपा नामक दो मुख्य इशानेन्द्र की इन्द्राणियों को यह प्रशंसा सहन नही हुई।

मेघरथ राजा को चलायमान करने केलिए वह उनके पास आई। उन्होंने कामदेव को भी परास्त करनेवाली नव यौवनाएं सर्जित की। वह उन्हे अनुकूल उपसर्ग करने लगी। काम विकार की अनेक चेष्टाएं की। फिर भी वे साधना से चलायमान नही हुए। अन्ततः हारकर वे उनके सम्मुख नतमस्तक हो गई। पश्चाताप करती हुई वे अपने स्थान मे गई।

प्रात काल राजा मेघरथ ने प्रतिमा एवं पोसह संपन्न किया। रात्रि घटना की स्मृति से उन्हें वैराग्य हुआ। राजा को देखकर प्रियमित्रा रानी को भी वैराग्य प्राप्त हुआ। सती स्त्रियां पति का ही अनुगमन करती है।

एक बार तीर्थङ्कर श्री धनरथ प्रभु विहार करते हुए नगर के वाहर समवसरण मे विराजमान हुए।

राजसेवकों ने राजा को प्रभु के आगमन की सूचना दी। राजा ने उन्हे पारितोपिक दिया। राजा मेघरथ परिवार के साथ आया। प्रभु ने जगहितकारी वाणी का उपदेश दिया।

उपदेश समाप्त होने पर राजा ने कहा कि प्रभो ! आप संसार तारक है, प्राणीमात्र का कल्याण

वाले प्रभु आप सर्वज्ञ है । अत: सब कुछ जानते हैं, फिर भी मेरी एक प्रार्थना है कि जब तक मैं कुमार को राज्य पर स्थापित कर आपके पास संयम स्वीकार न करूं तब तक आप विहार न करे ।

प्रभु ने कहा—राजन् ! शुभ कार्य में प्रमाद न करो । प्रभु की प्रेरणा से घर आकर द्रढरथ को कहा–हे बंधु मै संसार का त्याग कर संयम पथ पर जाना चाहता हूं । अतः तू राज्य का भार ग्रहण कर ।

यह सुनकर द्रढरथ ने कहा– हे पूज्य भ्राता ! दुःखमय संसार का त्याग ही उचित है । संसार सागर का भार मै वहन करना नही चाहता । मेरा मन भी संसार से उठ गया है । राज्य का भार किसी अन्य को सौपे । हे स्वामी ! मै भी आपके साथ ही दीक्षा ग्रहण करूंगा ।

बंधु की बात सुनकर मेघरथ ने अपने छोटे पुत्र मेघसेन को राज्य एवं द्रढरथ के पुत्र रथसेन को युवराज पद प्रदान किया ।

तत्पश्चात् मेघसेन ने दोनों का दीक्षा महोत्सव किया । द्रढरथ, सात सौ पुत्र एवं चार हजार राजाओ के साथ मेघरथ ने प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की ।

दुःसह परिश्रह एवं उपसर्ग सहन करते हुए वे कठोर साधना करने लगे । विभिन्न अभिग्रह एवं तप करते हुए वे विचरण करने लगे ।

वीश स्थानक की आराधना से मेघरथ ने तीर्थकर नामगोत्र कर्म उपार्जन किया । उन्होने सिंह निष्क्रिडित नामक दुष्कर तप भी किया । एक लाख पूर्व वर्ष तक अखंड संयम की आराधना की ।

अंबर तिलक पर्वत पर मेघरथ मुनि ने अनशन किया और सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने । उनके लघुभ्राता द्रढरथ मुनि भी वहां देवरूप में पैदा हुए। तेतीस सागरोपम तक का काल वहां महासुख मे यापन किया ।

इस जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र के कुरुदेश में हस्तिनापुर नामक महानगरी है । इक्ष्वाकुवंश का विश्वसेन नामक वहां का राजा था । अचिरा नामक उनकी महारानी थी । दोनों ही जीवन सुख में यापन करने लगे ।

उस समय मेघरथ की आत्मा ने सर्वार्थसिद्ध विमान की देव आयु पूर्ण की । वहां से च्यवकर वे भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन चंद्र के भरणी नक्षत्र में आने पर अचिरा रानी की कुक्षी में उत्पन्न हुए ।

नीद्राधीन माता ने रात्रि के शेष भाग में चौदह महास्वप्न देखे । जो इस प्रकार है– (१) हाथी (२) बैल (३) केसरीसिह (४) लक्ष्मी (५) माला (६) पूर्णचंद्र (७) सूर्य (८) महाध्वज (९) पूर्णकुंभ (१०) पद्म सरोवर (११) क्षीर समुद्र (१२) देव विमान (१३) रत्न राशि (१४) निर्धूम अग्नि

इन स्वप्नों को देखकर अचिरामाता जागृत हो गई । ये स्वप्न उसने विश्वसेन राजा को कहे । यह सुनकर राजा ने कहा– इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम पुत्ररत्न को जन्म दोगी । वह त्रिलोकपूज्य तीर्थकर

[illegible]गा। उत्तम लक्षणों से युक्त होगा।

प्रातःकाल राजा ने ज्योतिषियो को बुलाया। उन्हें स्वप्नो का फल पूछा।

उन्होने प्रत्युत्तर दिया कि इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम्हें चक्रवर्ती या धर्म चक्रवर्ती (तीर्थकर) पुत्र की [illegible]ाप्ति होगी। राजा ने सम्मान कर उन्हें विदा किया।

उस दिन से गर्भ की वृद्धि होने लगी। उस समय कुरूदेश में मरकी आदि रोग के कारण लोग मर [illegible]हे थे। चारो ओर अशांति का वातावरण छाया हुआ था। जानकार लोगों ने अनेक उपाय किए फिर भी शांति नही हुई।

किन्तु प्रभु जब गर्भ में उत्पन्न हुए, तब उनके प्रभाव से देश में शांति हो गई। जन्म से पूर्व ही प्रभु का महान प्रभाव होता है।

तत्पश्चात् नवमास और साढ़े सात दिन परिपूर्ण होने पर ज्येष्ठमास की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी के दिन सर्वग्रहों के उच्चयोग में चन्द्र के भरणी नक्षत्र में आने पर माता अचिरा ने मृग चिन्हवाले प्रभु को जन्म दिया। उनका वर्ण स्वर्णमय था।

उस समय तीनो जगत में प्रकाश हुआ। क्षणमात्र केलिए नारकीय जीवों को भी सुख की प्राप्ति हुई।

उस समय दिक्कुमारियों के आसन कंपायमान हुए। अवधिज्ञान से उन्होने जाना कि प्रभु का जन्म हुआ है। उन्हे अति आनंद हुआ।

प्रथम अधोलोक से आठ दिक्कुमारीकाएं विश्वसेन राजा के महल में आई। उन्होंने प्रभु और उनकी माता को नमस्कार किया। माता को उन्होने अपना परिचय दिया एवं भयभीत न होने केलिए कहा।

संवर्तक पवन के द्वारा उन्होने एक योजन तक पृथ्वी की रज दूर की। फिर प्रभु के समीप वे गुणगान करने लगी।

ऊर्ध्वलोक से आठ दिक्कुमारीकाएं आई। उन्होंने विधि से प्रभु को नमस्कार किया। मेघ का निर्माण कर एक योजन भूमि तक पानी बरसाया। फिर प्रभु के गुण गाने लगी।

पूर्वरुचक से आठ दिक्कुमारीकाएं हाथ मे दर्पण लेकर आई। उन्होंने भी नमस्कार किया। फिर पूर्व [illegible] में खड़ी होकर प्रभु के गुण गाने लगी।

[illegible] से हाथ में झारी लेकर आठ दिक्कुमारीकाएं आई। दक्षिण दिशा में खड़ी [illegible] प्रभु का गुणगान किया।

पश्चिम रूचक से हाथ में पंखा लेकर आठ दिक्कुमारीकाएं आई। पश्चिम दिशा मे खडी होकर उन्होने प्रभु के गुणगान किए।

उत्तर रूचक से आठ दिक्कुमारीकाएं चामर लेकर आई। उत्तर दिशा में वे खडी रही एवं प्रभु के गुण गाए।

चार विदिशा के रूचक गिरि से चार दिक्कुमारीकाएं हाथ में दीपक लेकर आई। प्रभु के गुण गाती हुई विदिशा में खडी रही।

रूचक द्वीप से चार दिक्कुमारीकाओं ने आकर प्रभु एवं माता को नमस्कार किया। पश्चात् चार अंगुल नाल का छेदन किया। फिर एक खड्डा खोदकर उसमे नाल को पधराया। खड्डे को रत्नो एवं हीरो से पूर दिया और उपर पीढी का बांध दी।

पूर्व उत्तर एवं दक्षिण दिशाओं में उन्होने तीन कदली गृह बनाए। सर्व प्रथम दक्षिण दिशा के कदली गृह में प्रभु एवं माता को ले गए। वहां मध्यभाग में रत्न सिहासन पर बिराजमान किया। दोनों का सुगंधी तैल से अभ्यंगन किया। मर्दन किया। फिर पूर्व दिशा के कदली गृह मे रत्न सिहासन पर बिराजमान कर उन्हें स्नान कराया। स्नान के बाद दिव्य वस्त्रालंकार धारण कराए।

तत्पश्चात् उत्तर दिशा के गृह में ले जाकर रत्न सिहासन पर बिराजमान किया। वहां आभियोगि देवो से हिमालय पर्वत से गोशीर्ष चंदन मंगवाया। उसे जलाकर रक्षापोटली बनाई। जो दोनो को बांधी गई।

प्रभु के कान में कहा कि तुम्हारी पहाड़ जितनी लम्बी आयु हो, इस प्रकार कहकर दो रत्न पाषाण गोलों का आस्फालन किया।

दिक्कुमारीयां सुतिकाकर्म करके स्वयं के स्थानो में गई।

तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र का सिहासन कपायमान हुआ। प्रभु का जन्म जानकर पालक नामक विमान मे बैठकर वह प्रभु के पास आया।

प्रभु को मेरू पर्वत पर ले गया। वहां लाखों देवों एवं इन्द्रो के साथ सौधर्मेन्द्र ने प्रभु का जन्मोत्सव किया।

इन्द्रों के जन्म महोत्सव के बाद राजा को पुत्र जन्म की बधाई मिली। उसने भी धूमधाम से पुत्र का जन्म महोत्सव किया।

प्रभु जब माता के गर्भ में आए तब देश में फैले हुए रोग शांत हुए यह सोचकर राजा ने उनका नाम शांतिनाथ रखा।

बीज के चन्द्रमा की तरह बढ़ते हुए प्रभु चौवन अवस्था को प्राप्त हुए। पिता विश्वसेन ने अनेक राजकन्याओ के साथ उनकी शादी की ।

पचीस हजार वर्ष की जब शांतिकुमार की आयु हुई । विश्वसेन राजा ने उन्हें राज्य सौप दिया । शातिकुमार न्यायनीति से प्रजा एवं राज्य का पालन करने लगे । विश्वसेन राजा आत्मसाधना में लग गए।

शातिनाथ कुमार पत्नियो के साथ संसार में सुख से रहने लगे । तीर्थकर प्रभु को भी निकाचित कर्म भोगने ही पडते है ।

एक बार पट्टरानी यशोमती ने स्वप्न मे आकाश में सूर्य की तरह मुख में प्रवेश करते हुए चक्र को देखा ।

उस समय द्रढरथ मुनि की आत्मा सर्वार्थसिद्ध विमान से आयुष्य पूर्ण कर यशोमती के उदर में उत्पन्न हुई । निद्रा से जागृत होकर यशोमती ने अपने स्वामी शांतिनाथ को बताई ।

तीन ज्ञान के धारक शांतिनाथ ने कहा—हे देवी ! पूर्वजन्म में द्रढरथ नामक मेरा एक छोटा भाई था, वह सर्वार्थसिद्ध विमान की आयु पूर्णकर तेरे गर्भ मे उत्पन्न हुआ है ।

पति की वाणी से रानी को अति आनंद हुआ । उसी दिन से उसने गर्भ धारण किया । समय पूर्ण होने पर रानी ने लक्षणो से युक्त पुत्र को जन्म दिया ।

जब वह गर्भ मे था, रानी ने स्वप्न में चक्र देखा था, अतः पिता ने उसका नाम चक्रायुध रखा ।

क्रम से वह युवावस्था को प्राप्त हुआ । तब पिता शांतिनाथ ने अनेक राजकन्याओ के साथ उसका विवाह किया ।

राज का पालन करते हुए जब शांतिनाथ को पच्चीस हजार वर्ष हुए। उस समय शस्त्रागार मे [illegible] चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । प्रभु ने उसका अट्ठाई महोत्सव किया । आचार अनुसार तीर्थकर भी पूजा करते है ।

[illegible]गार से निकलकर वह चक्र पूर्व दिशा की ओर चलने लगा । हजारो देव भी उसके साथ चलने लगे । शांतिनाथ भी अपनी सेना के साथ उसके पीछे चलने लगे ।

प्रतिदिन एक योजन चलकर चक्र स्थिर होता था । वहां शांतिनाथ प्रभु बारह योजन तक पडाव [illegible] ।

[illegible] करते हुए प्रभु मागधतीर्थ समीप पधारे । विजय की इच्छा वाले प्रभु [illegible] [illegible] पर बैठे । उस समय बारह योजन किनारे से उपर रहा हुआ मागधपति [illegible]

कंपायमान हुआ।

संदेह होने पर उसने अवधिज्ञान में समीप में आए हुए प्रभु को देखा।

सोलहवें तीर्थकर एवं पांचवे चक्रवर्ती शांतिनाथ मुझ पर अनुकंपा कर यहां बिराजमान है। मुझे उनकी सेवा करनी चाहिए, यह सोचकर उत्तम रत्न आदि लेकर उनके पास आया।

आकाश में स्थित होकर एवं नमस्कार करके कहा– हे स्वामी मैं पूर्ण दिशा का दिग्पाल हूं और आपकी आज्ञा को धारण करने वाला हूं। अतः निरंतर मुझे आदेश करना। इस प्रकार विनति करने के पश्चात् उसने प्रभु को दिव्य वस्त्र एवं अलंकार भेंट किए।

शांतिनाथ ने भी सम्मान कर उसे विदा किया।

पश्चात् चक्ररत्न दक्षिण दिशा की ओर बढने लगा। प्रभु भी उसके पीछे चलते हुए दक्षिण समुद्र के किनारे पर आए। वहां रत्नसिहासन पर बैठकर वरदाम देव की ओर लक्ष्य किया।

अवधिज्ञान से प्रभु के आगमन को जानकर वरदाम देव भेंट लेकर उनके सम्मुख आया। प्रभु को नमस्कार कर दिव्य अलंकार भेंट किए। शांतिनाथ ने भी सम्मान कर उसे विदा किया।

चक्ररत्न वहां से चलता हुआ पश्चिम समुद्र किनारे आकर खडा रहा। प्रभु भी वहां आकर बिराजमान हुए। सिहासन चलित होने पर प्रभासपति प्रभु के पास आए, उसने प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य की।

चक्ररत्न वहां से चलता हुआ दक्षिण दिशा की ओर बढने लगा। चलते हुए शांतिनाथ प्रभु दक्षिण समुद्र किनारे पहुंचे। सिधु देवी को लक्षित कर सिहासन पर बैठे। अवधिज्ञान से प्रभु के आगमन को जानकर देवी उनके समीप आई। नमस्कार कर कहा– हे स्वामी ! मै आपकी आज्ञा के आधीन हूं। इस प्रकार कहकर प्रभु को रत्न स्वर्णमय कलश एवं आभूषणादि भेंट किए।

वहां से चक्ररत्न के पीछे चलते हुए प्रभु सेना के साथ वैताढ्यगिरि पास पहुंचे। वहां वैताढ्याद्रिकुमार देव ने उनकी आज्ञा स्वीकार की। प्रभु को उसने भेंट प्रदान की। फिर चक्र के पीछे चलते हुए प्रभु तमिश्रा गुहा के पास पहुंचे। वहां रहे हुए कृतमाल देव को तत्काल वश कर लिया।

शांतिनाथ की आज्ञा से वहां सेनापति ने सिंधु नदी चर्मरत्न के द्वारा पार की। उसके दक्षिण निष्कुट को भी तत्काल साध लिया। वहां से आकर सेनापति ने प्रबल शक्तिशाली दंड रत्न से द्वार भेदन कर तमिश्रा गुफा खोली। फिर गजरत्न पर बैठकर प्रभु ने सेना के साथ गुफा में प्रवेश किया। गुफा के अंधकार को दूर करने केलिए हाथी के गंडस्थल पर मणिरत्न स्थापित किया। आगे चलते हुए गुफा के मध्य में आई उन्मग्ना एवं निमग्ना दो नदियों पर प्रभु ने वार्धकिरत्न से सेतु का निर्माण किया और उन्हे पार किया।

पराक्रमी पुरुषो को सर्वकार्य सरल है। प्रभु की दृष्टिमात्र से गुहा का उत्तर द्वार स्वयं खुल गया। उस द्वार से प्रभु सेना के साथ बाहर निकले।

गुफा मे से निकले हुए चक्रवर्ती और उनकी सेना को देखकर म्लेच्छ लोक उनका उपहास करने लगे कि यमराज के मुंह में ये कौन चले आए। सचमुच मौत ही उन्हे यहां बुला लाई है।

अब हमें इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अन्यथा ये हमें हानि करेंगे। इस प्रकार कहकर म्लेच्छों ने प्रभु की सेना पर आक्रमण कर दिया। जब उनकी अग्र सेना का नाश हुआ, तब सेनापति स्वयं अश्वरत्न पर बैठकर म्लेच्छो पर हमला किया तो वे सभी दशों दिशाओ में भाग खड़े हुए।

दुःखी म्लेच्छो ने अट्ठम तप किया एवं कुलदेव मेघकुमार की साधना की। देव तप एवं भक्ति से प्रसन्न होते है। उनकी भक्ति एवं तप से मेघकुमार देव प्रकट हुए।

देवो के पूछने पर उन्होने अपनी दुःख की कहानी बताई।

मेघकुमारो ने उनकी रक्षा केलिए प्रभु एवं उनकी सेना पर पानी बरसाना प्रारंभ किया। उस समय प्रभु ने अपने हाथ से चर्मरत्न का स्पर्श किया। जिससे चर्मरत्न बारह योजन तक फैल गया। जलयान की तरह वह खड़ा हो गया। समस्त सेना उस पर सवार हो गई।

फिर चर्मरत्न की तरह दंडरत्न का भी विस्तार किया। उसके मूल मे मणिरत्न स्थापित किया और अंधकार का नाश किया।

प्रातःकाल मे बोए हुए एवं मध्यान्ह काल मे तैयार हुए चावल आदि सेना खाने लगी। धान्य का शीघ्र पक जाना यह गृहिरत्न की महिमा है। शांतिनाथ चक्रवर्ती सेना के साथ समुद्र के जल मे सात दिन तक रहे।

उस समय प्रभु के सेवक देव कोपायमान होकर मेघकुमारो को कहने लगे— त्रिजग वंदनीय तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती शांतिनाथ महाशक्तिशाली है। तुम उनकी आत्मशक्ति से अनजान हो। अब हम तुम्हारे अपराध को माफ नहीं करेंगे। तुम शीघ्र ही यहां से चले जाओ।

उस समय मेघकुमारो ने म्लेच्छों को कहा—ये शांतिनाथ प्रभु ही तुम्हारे लिए शरण है। उनकी प्रेरणा से उन्होंने प्रभु के पास जाकर क्षमा मांगी और कहा आप हमारे स्वामी है। अब हम आपके सेवक बनकर रहेंगे। [illegible] प्रभु ने स्वीकार कर अनुग्रह किया।

पश्चात प्रभु ने सेनापति से सिंधु का उत्तर निष्कुट क्षेत्र स्वाधीन करवाया। वहा से गंगा एव सिंधु [illegible] हिमालय के पास आए। वहा के अधिष्ठायक हिमवंत कुमार देव ने गोशीर्ष चंदन [illegible]।

[illegible] काकिणी रत्न से वहा चक्रवर्ती के कल्प अनुसार पांचवे

चक्रवर्ती शांतिनाथ ये अक्षर लिखे ।

पश्चात् वहां से लौट कर प्रभु क्रम से वैताढ्य गिरि भूमि के पास आए। वहां दोनो श्रेणि के निवासी विद्याधर राजाओं ने चक्रवर्ती का स्वागत किया ।

वहां से गंगा के तट पर जाकर गंगादेवी को स्वाधीन किया । सेनापति से गंगा का उत्तर निष्कुट क्षे अपने आधीन करवाया । वहां से वैताढ्य के नीचे खंड प्रपाता नामक गुफा के पास आए। तत्रस्थ नाय्यमाल नामक देव को वश किया ।

सेनापति ने दंडरत्न से गुफा के द्वार खोले । गज रत्न पर बैठकर प्रभु भीतर गए। मणिरत्न ने अंधकार दूर किया । वार्द्धकि रत्न से भीतर की दो नदियां पार की । दक्षिण द्वार से निकल कर प्रभु ने गंगा तट पर पडाव डाला । वहां गंगा के मुख मे रहने वाली नैसर्प आदि नवनिधियां प्रभु के स्वाधीन हो गई। गंगातटवासी म्लेच्छों को प्रभु ने सेनापति से स्वाधीन किया ।

इस प्रकार शांतिनाथ चक्रवर्ती छ खंड जीतकर आठ सौ वर्ष के पश्चात् हस्तिनापुर नगर पधारे। नगर में उनका भव्य प्रवेश हुआ ।

देवों एवं राजाओं ने उनका चक्रवर्ती रूप मे अभिषेक किया ।

शांतिनाथ चक्रवर्ती चौदह रत्न एवं नवनिधि के स्वामी थे । चोसठ हजार उनकी रानियां थी।

चोराशी लाख हाथी, चोराशी लाख घोड़ा और इतने ही रथ, छियानवे करोड गाम छियानवे करोड पैदल सेना एवं बत्तीस हजार राजाओं के वे स्वामी थे ।

षट् खंड के स्वामी शांतिनाथ गीत, नाटक, नृत्य एवं जलक्रीडा आदि सुख में मग्न रहने लगे । आठ सौ वर्ष कम पचीस हजार वर्ष तक उन्होंने राज्य का पालन किया ।

दीक्षा समय समीप जानकर लोकांतिक देवो ने प्रभु को प्रार्थना की कि प्रभो ! जगतकल्याणकारी तीर्थ की स्थापना करो ।

वर्षीदान देकर प्रभु ने भी दीक्षा की तैयारी की । चक्रायुद्ध नामक पुत्र को राजसत्ता प्रभु ने सौंप दी।

तत्पश्चात् शांतिनाथ जी सर्वार्था नामक पालकी में बैठकर देवों एवं नगर जनो के साथ, भव्य जुलूस के साथ नगर बाहर सहस्राम्र वन में पधारे ।

ज्येष्ठमास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में सायंकाल प्रभु ने बेले की तपस्या करके एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की ।

मंदिर नामक नगर में सुमित्र राजा के घर प्रभु ने खीर से बेले का पारना किया ।

बार मास तक ग्राम एवं नगर आदि में विहार किया । फिर विहार करके पुनः प्रभु उसी सहस्राम्रवन

मे पधारे ।

पोष मास की शुक्ला नवमी के दिन भरणी नक्षत्र में दिन के पूर्व भाग मे, नंदि वृक्ष के नीचे छट्ठ की तपस्या वाले प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ.

उस समय उद्यानपालक ने चक्रायुद्ध राजा को समाचार दिए कि महाराज ! सहस्त्राम्रवन मे श्रीशातिनाथ प्रभु को केवलज्ञान हुआ है ।

चक्रायुद्ध परिवार के साथ देशना श्रवण के लिए गया ।

प्रभु अमृतमय वाणी मे बोले- चार गति का संसार दावानल की तरह महादुःखदायी है ।

क्रोध, मान माया और लोभ ये चारो कषाय संसार का मूल है । संयम एवं तप से ही संसार से मुक्ति पाई जा सकती है ।

प्रभु की वाणी श्रवण कर चक्रायुद्ध को वैराग्य हुआ ।

चक्रायुद्ध ने पुत्र कुरुचंद्र को राज गद्दी पर स्थापित किया । पश्चात् पैंतीस राजाओ के साथ प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार की ।

चक्रायुद्ध आदि प्रभु को छत्तीस गणधर हुए । उनके शासन मे सुअर के मुंहवाला, चार हाथो वाला गरुड़ यक्ष था । हाथी उसका वाहन था ।

गौर वर्ण वाली निर्वाणी नामक शासन देवी थी । शांतिनाथ प्रभु को बासठ हजार साधु थे । इकसठ हजार छ सो साध्वियां थी । आठ सौ चौदह पूर्वी, तीन हजार अवधिज्ञानी एवं चार हजार मनः पर्यवज्ञानी थे । चार हजार तीन सौ केवलज्ञानी, छ हजार वैक्रिय लब्धिवाले एवं दो हजार चार सौ वाद लब्धिवाले थे । दो लाख नव्वे हजार श्रावक एवं तीन लाख तिरानवे हजार श्राविकाएं थी । इस प्रकार प्रभु का सपूर्ण परिवार था ।

संयम एव केवली पर्याय मे पच्चीस हजार वर्ष पूर्ण होने पर ज्येष्ठ मास की त्रयोदशी के दिन भरणी नक्षत्र मे चद्र के योग मे सम्मेतशिखर पर नौ सौ मुनियो के साथ एक मास का अनशन कर प्रभु मोक्ष मे पधारे ।

कुमार अवस्था, राज्य अवस्था, चक्रवर्ती अवस्था एवं केवली पर्याय सहित चारित्र पर्याय मे प्रभु ने प्रत्येक अवस्था मे पच्चीस हजार वर्ष यापन किए । प्रभु शांतिनाथ की संपूर्ण आयु एक लाख वर्ष की थी ।

श्री शान्तिनाथ स्तवन

(तर्ज - देखो रे जिनंदा त्यारा)

सेवो रे जिनंदा प्यारा,
प्रभु श्री शांति जिनंद ॥सेवो ॥
विश्वसेन अचिरा जी के नंदा,
गजपुर नगरी नरींद ॥सेवो ॥१ ॥
चक्रवर्ती पंचम कहिये,
सोलमा शांति जिनंद ॥सेवो ॥२ ॥
अवसर दान संवत्सरी दीनो,
लीयो मुनि पद छंद ॥सेवो ॥३ ॥
तीरथ थापी कर्म खपावी,
होए सिद्ध आनंद ॥सेवो ॥४ ॥
शांतिनाथ जग शांतिकारी,
काटे कलिमल फंद ॥सेवो ॥५ ॥
पद्मावस्था प्रभु मुद्रा सोहे,
भवि चकोर मनचंद ॥सेवो ॥६ ॥
मन वच काया शुद्ध आराधे,
नर-नारी को वृन्द ॥सेवो ॥७ ॥
आतम लक्ष्मी निज गुण प्रगटे,
वल्लभ हर्ष अमंद ॥सेवो ॥८ ॥

स्तुति

सुधा-सोदर-वाग्-ज्योत्सना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः ।
मृग-लक्ष्मा तमःशान्त्यै, शान्तिनाथ जिनोऽस्तु वः ॥

प्रार्थना

शांतिनाथ प्रभु के दर्शन से, शांति के फूल खिले
अचिरानंदन के पूजन से, सुख-संपत्ति आन मिले ।
गजपुर नगर के चक्रवर्ती हो, धर्म तीर्थ के रखवाले
विश्वसेनसुत विश्वविजेता, तोडो कर्मो के जाले ॥

परिचय

१ माता का नाम	अचिरा रानी
२ पिता का नाम	विश्वसेन राजा
३ च्यवन कल्याणक	भाद्रपद कृष्णा ७/हस्तिनापुर
४ जन्म कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १३/हस्तिनापुर
५ दीक्षा कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १४ /हस्तिनापुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष शुक्ला ९/हस्तिनापुर
७ निर्वाण कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १३/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ६२ प्रमुख चक्रायुध
९ साधु	सख्या ६२ हजार
१० साध्वी	सख्या ८९ हजार प्रमुखा शुचि
११ श्रावक	सख्या २ लाख ९० हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ९३ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	नदी
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	गरुड
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायक देवी)	निर्वाणी
१६ आयुष्य	१ लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	हिरन
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सर्वार्थसिद्ध (अनुत्तर)
१९ तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	मेघरथ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	१२
२१ छद्मस्थ अवस्था	१ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	एक लाख वर्ष मे पोन पाद कम
२३ शरीर-वर्ण	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	सर्वार्था
२५ [illegible]	पूरे देश मे शान्ति स्थापित हो गई । उपद्रव शांत हो गये ।

श्री शान्तिनाथ स्तवन

(तर्ज - देखो रे जिनंदा त्यारा)

सेवो रे जिनंदा प्यारा,
प्रभु श्री शांति जिनंद ॥सेवो ॥

विश्वसेन अचिरा जी के नंदा,
गजपुर नगरी नरीद ॥सेवो ॥१ ॥

चक्रवर्ती पंचम कहिये,
सोलमा शांति जिनंद ॥सेवो ॥२ ॥

अवसर दान संवत्सरी दीनो,
लीयो मुनि पद छंद ॥सेवो ॥३ ॥

तीरथ थापी कर्म खपावी,
होए सिद्ध आनंद ॥सेवो ॥४ ॥

शांतिनाथ जग शांतिकारी,
काटे कलिमल फंद ॥सेवो ॥५ ॥

पद्मावस्था प्रभु मुद्रा सोहे,
भवि चकोर मनचंद ॥सेवो ॥६ ॥

मन वच काया शुद्ध आराधे,
नर-नारी को वृन्द ॥सेवो ॥७ ॥

आतम लक्ष्मी निज गुण प्रगटे,
वल्लभ हर्ष अमंद ॥सेवो ॥८ ॥

स्तुति

सुधा-सोदर-वाग्-ज्योत्सना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः ।
मृग-लक्ष्मा तमःशान्त्यै, शान्तिनाथ जिनोऽस्तु वः ॥

प्रार्थना

शांतिनाथ प्रभु के दर्शन से, शांति के फूल खिले
अचिरानंदन के पूजन से, सुख-संपत्ति आन मिले ।
गजपुर नगर के चक्रवर्ती हो, धर्म तीर्थ के रखवाले
विश्वसेनसुत विश्वविजेता, तोडो कर्मो के जाले ॥

परिचय

१ माता का नाम	अचिरा रानी
२ पिता का नाम	विश्वसेन राजा
३ च्यवन कल्याणक	भाद्रपद कृष्णा ७/हस्तिनापुर
४ जन्म कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १३/हस्तिनापुर
५ दीक्षा कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १४ /हस्तिनापुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	पोष शुक्ला ९/हस्तिनापुर
७ निर्वाण कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा १३/सम्मेतशिखर
८ गणधर	संख्या ६२ प्रमुख चक्रायुध
९ साधु	सख्या ६२ हजार
१० साध्वी	सख्या ८९ हजार प्रमुखा शुचि
११ श्रावक	सख्या २ लाख ९० हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ९३ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	नदी
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	गरुड
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायक देवी)	निर्वाणी
१६ आयुष्य	१ लाख वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	हिरन
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सर्वार्थसिद्ध (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	मेघरथ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	१२
२१ छद्मस्थ अवस्था	१ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	एक लाख वर्ष मे पौन पाद कम
२३ शरीर-वर्ण	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	सर्वार्था
२५ नाम-अर्थ	पूरे देश मे शांति स्थापित हो गई । उपद्रव शाति हो गये ।

ચૌદ રાજલોક
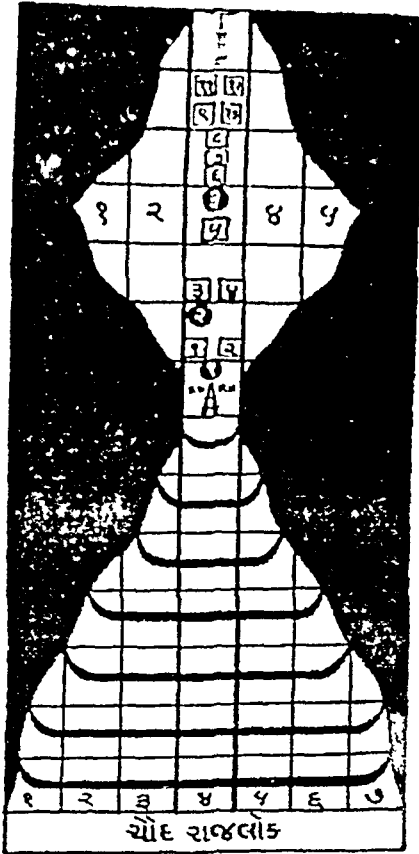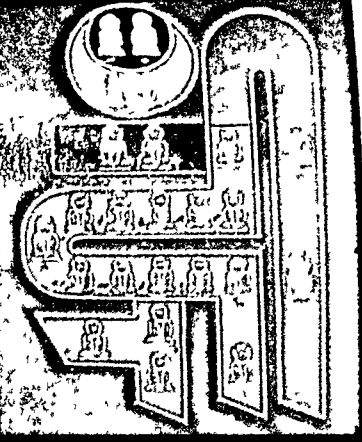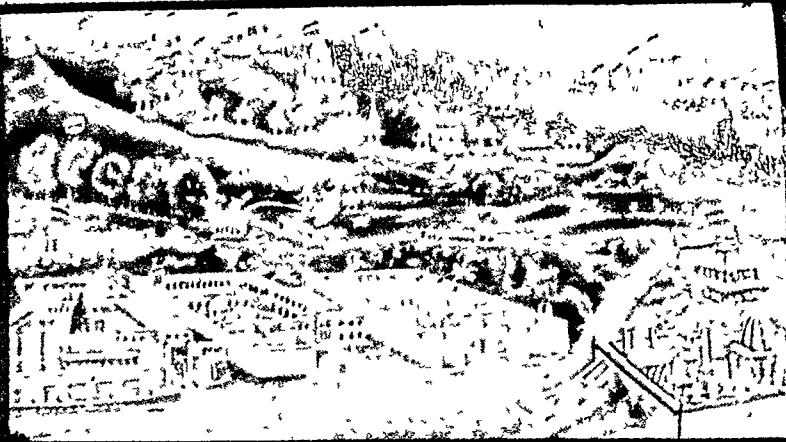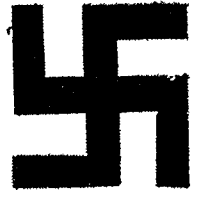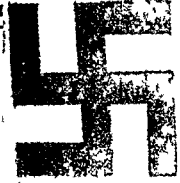
SHRI JAIN ATMANAD SABHA
KHAR GATE, BHAVNAGAR

SHRI JAIN ATMANAD SABHA
KHAR GATE, BHAVNAGAR

।। श्री कुंथुनाथ ।।

SHRI KUNTHUNATHO BHAGAWAN SANATHO TISHAYARDHIBHIHI
SURASURANRU NATHANA MEKANATHO STU VAH SHRIYE

श्री कुंथुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरासुरनृनाथाना, - मेकनाथोऽस्तु वः श्रिये ॥१७॥

श्री कुंथुनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—कुंथुनाथ कामित दीये, गजपुरनो राय,
सिरि माता उर अवतर्यो, शुर नरपति ताय ॥१ ॥

काया पात्रीश धनुषनी, लंछन जस छाग,
केवल ज्ञानादिक गुणो, प्रणमो धरी राग ॥२ ॥

सहस पंचाणुं वरसनुं अे, पाली उत्तम आय,
पदमविजय कहे प्रणमीये, भावे श्री जिनराय ॥३ ॥
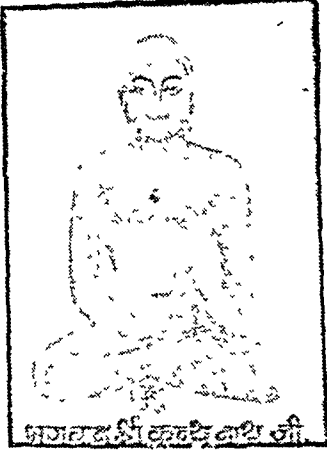
श्री कुंथुनाथ प्रभु चरित्र

इस जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह के आवर्त नामक विजय में खड्गपुरी नामक पुरी है। सिहावह नामक वहां का राजा था।

संसार मे रहते हुए उसे वैराग्य हुआ। संवराचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर उसने उग्र साधना की। वीश स्थानक की आराधना से उसने तीर्थकर नामकर्म उपार्जन किया।

समाधिमरण से मरकर वे सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में उत्पन्न हुए।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक नगर है। वहां सूर नामक राजा था। श्री नामक उनकी महारानी थी।

सिहावह की आत्मा सर्वार्थसिद्ध विमान से तेत्तीस सागरोपम की आयु पूर्ण होने पर श्रावण मास की कृष्ण पक्ष की नौवी तिथि के दिन कृतिका नक्षत्र मे जब चन्द्र का योग था उस समय श्री देवी के उदर मे उत्पन्न हुई।

गर्भकाल परिपूर्ण होने पर वैशाख मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन कृतिका नक्षत्र के चन्द्र योग मे बकरे के लंछन वाले एवं स्वर्णमय कांति वाले सत्तरहवें प्रभु को श्री माता ने जन्म दिया।

जब प्रभु गर्भ मे थे तब माता ने कुंथु के अग्रमुख वाले रत्नों के समूह को देखा, अतः पिता ने कुंथु नाम रखा।

तेइस हजार सात सौ पचास वर्ष जब प्रभु की आयु मे पिता ने उन्हें राजसत्ता प्रदान की। पुनः तेइस हजार सात सौ पचास वर्ष के पश्चात् आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने छः खंड की साधना की। उपरोक्त वर्ष तक चक्रवर्ती रूप में रहे।

संसार से अनासक्त प्रभु वैशाख मास की कृष्णपक्ष की पंचमी के दिन कृतिका नक्षत्र में विजया नामक पालकी मे बिराजमान होकर नगर के बाहर निकले ।

सहस्राम्र नामक उद्यान में प्रभु ने एक हजार राजाओ के साथ बेला का तप कर दीक्षा स्वीकार की ।

चक्रपुर नगर में व्याघ्रसिह नामक राजा के घर प्रभु ने खीर से बेले का पारना किया ।

छद्मस्थ अवस्था मे प्रभु ने सोलह वर्ष तक विचरण किया, पश्चात् पुनः सहस्राम्र वन में पधारे, तिलक वृक्ष के नीचे प्रभु आत्मध्यान मे स्थिर हुए । बेले की तपस्या करके ध्यान मे स्थिर हुए प्रभु को चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन केवल ज्ञान प्राप्त हुआ ।

प्रभु ने समोवसरण मे बिराजित होकर, मन.शुद्धि का उपदेश दिया । मनशुद्धि के बिना आत्मशुद्धि असंभव है । आत्मविशुद्धि से ही परमपद को पाया जा सकता है ।

इस प्रकार प्रभु की देशना से अनेक आत्माओ ने दीक्षा ग्रहण की ।

श्री स्वयभु आदि प्रभु के पैतीस गणधर हुए । प्रभु के शासन मे श्याम वर्ण वाला हंस वाहन वाला एवं चार हाथो वाला गंधर्व नामक यक्ष था । गौरवर्णवाली एवं मयूर वाहन वाली बला नामक उनकी शासनदेवी थी ।

प्रभु के शासन में साठ हजार साधु, साठ हजार छ सौ साध्विया, छसौ सित्तर चौदह पूर्वी, पचीस सौ अवधि ज्ञानी एवं तीन हजार तीन सौ चालीस मनःपर्यव ज्ञानी थे ।

बत्तीस सौ केवलज्ञानी, पांच हजार एक सौ वैक्रिय लब्धिवाले एवं दो हजार वादी थे ।

एक लाख एक हजार कम अस्सी श्रावक एवं तीन लाख इक्यासी हजार श्राविकाएं थी । इस प्रकार प्रभु कुंथुनाथजी का संपूर्ण परिवार था ।

केवलज्ञान से तेइस हजार सात सौ चोतीस वर्ष पूर्ण होने पर प्रभु सम्मेत शिखर गिरि पर पधारे ।

वैशाख मास की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन कृतिका नक्षत्र मे जब चन्द्र का योग था एक मास का अनशन कर एक हजार साधुओं के साथ प्रभु ने मोक्ष पद प्राप्त किया ।

कुमार अवस्था, राज्य, चक्रवर्ती अवस्था एवं चारित्र अवस्था इन प्रत्येक अवस्था के २३७५० वर्ष मिलाकर प्रभु की संपूर्ण आयु पिचानवे हजार वर्ष की थी ।

श्री कुंथुनाथ स्तवन

सिरी कुंथुनाथ स्वामी शिवसुख धाम है ।
मुक्ति फल मेवा लेवा, करे नर नारी सेवा ।
देवाधिदेव देवा, गावे प्रभु-नाम है ॥१ ॥

महा निशीथ गावे, प्रभु पूजा द्रव्य भावे,
कर भवी मोक्ष जावे, कटे कर्म तमाम है ॥२ ॥

सुरयाभ देव कीनी, रायपसेणी साख दीनी ।
फल पूजा मुक्ति लीनी और नही काम है ॥३ ॥

उपासकानंद ज्ञाता, द्रौपदी भू विख्याता ।
अंबड़ उवाइ जाता, प्रभु का कलाम है ॥४ ॥
काम क्रोध मान माया, लोम मोह दुःख दाया ।
राग द्वेष दूर थाया, शिवपुर ठाम है ॥५ ॥

अजर-अमर अज, अचर अलख भग ।
दूर होवे कर्म रज, मुक्ति मुकाम है ॥६ ॥

आतम-लक्ष्मी हर्ष भावे, सत चित आनंद पावे ।
सिद्ध रूप धारी थावे, वल्लभ आतमराम है ॥७ ॥

स्तुति

श्री कुन्थुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरासुर-नृ-नाथानामेकनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥

प्रार्थना

शूर राजा और श्रीदेवी के लाडले कुन्थुनाथजी है
चक्रवर्ती की आज्ञा सारी दुनिया झुक के मानती है ।
धर्मतीर्थ के सारथि जिनवर ! भवसागर मे नैया से !
जीवननैया पार लगेगी, प्रभुजी है खेवैया-से ॥

परिचय

१ माता का नाम	श्रीरानी
२ पिता का नाम	शूर राजा
३ च्यवन कल्याणक	श्रावक कृष्णा ९/हस्तिनापुर
४ जन्म कल्याणक	वैशाख कृष्णा १४/हस्तिनापुर
५ दीक्षा कल्याणक	वैशाख कृष्णा ५/हस्तिनापुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र शुक्ला ३/हस्तिनापुर
७ निर्वाण कल्याणक	वैशाख कृष्णा १/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ३५ प्रमुख साब
९ साधु	सख्या ६० हजार प्रमुख साब
१० साध्वी	सख्या ६० हजार ६ सौ प्रमुख दामिनी
११ श्रावक	सख्या १ लाख ७९ हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ८१ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	तिलक
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	गधर्व
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	अच्युता
१६ आयुष्य	९५ हजार वर्ष
१७ लछन (चिह्न)	बकरा
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सर्वार्थसिद्ध (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	सिहावह के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१६ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	७१ हजार २५० वर्ष
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	विजया
२५ नाम-अर्थ	स्वप्न मे मा ने जमीन मे रहे हुए रत्न स्तूप को देखा।
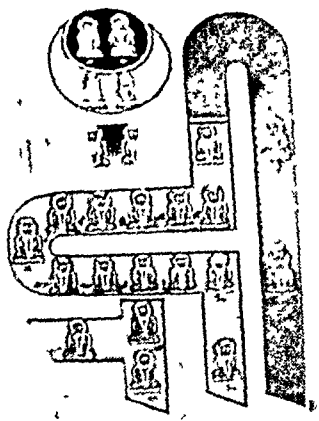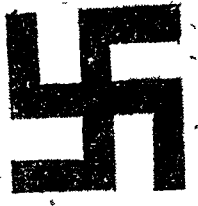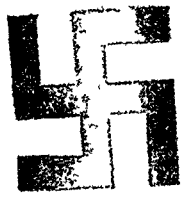
श्री अरनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—नागपुरे अर जिनवरु, सुदर्शन नृप नंद,
देवि माता जनमीयो, भविजन सुखकंद ॥१ ॥

लंछन नंदावर्तनुं, काया धनुष त्रीश,
सहस चोराशी वरषनुं, आयु जास जगीश ॥२ ॥

अरुज अजर अर जिनवरु अे, पाम्या उत्तम ठाण,
तस पद पद्म आलबतां, लहीये पद निर्वाण ॥३ ॥
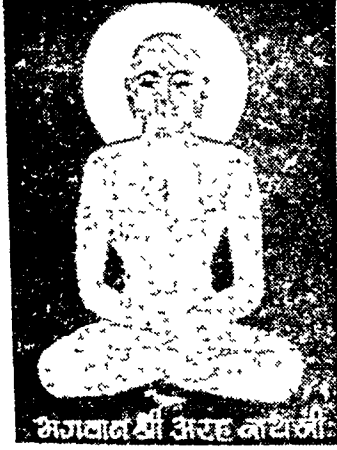
श्री अरनाथ चरित्र

इस जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह की वत्स विजय में सुशीमा नामक नगरी मे धनपति नामक राजा था। जो नीतिमान एव प्रजापालक था।

संसार मे रहते हुए राजा को जब वैराग्य हुआ उन्होंने संवर गुरु महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। वे कठोर साधना करने लगे। वीश स्थानकों की आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया। समाधिमरण प्राप्त कर धनपति मुनि नवमे ग्रैवेयक में देवता हुए।

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर है। वहां सुदर्शन नामक राजा था। उनकी महारानी का नाम महादेवी था। उनके साथ राजा सुख से जीवन यापन करने लगा।

धनपति की आत्मा नवम देवलोक की आयु परिपूर्ण होने पर फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन रेवती नक्षत्र के चन्द्र योग में महादेवी की कुक्षी मे उत्पन्न हुई।

माता ने तीर्थकर सूचक चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष मास की शुक्लपक्ष की दशमी तिथि के दिन रेवतीं नक्षत्र के चंद्र योग में स्वर्णमय वर्ण वाले एवं नंद्यावर्त चिन्ह वाले प्रभु को जन्म दिया।

प्रभु जब गर्भ में थे उस समय माता ने स्वप्न मे अर (बैलगाड़ी के पहिए के आरा) देखा था। अतः प्रभु का नाम अरनाथ रखा।

जन्म से इक्कीस हजार वर्ष होने पर प्रभु राज सिहासन पर विराजमान हुए। २१००० हजार वर्ष पश्चात् शस्त्रागार मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। जिससे प्रभु ने छः खंड की साधना की। इक्कीस हजार

प्रभु चक्रवर्ती अवस्था में रहे।

तत्पश्चात् अरनाथ जी ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया। अपने पुत्र अरविंद कुमार को राज्य प्रदान कर दीक्षा की तैयारी की।

विजयंती नामक पालकी मे बैठकर प्रभु सहस्राम्रवन उद्यान मे पधारे।

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन रेवती नक्षत्र के चन्द्र योग मे बेले की तपस्या करके एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की।

बेले की तपस्या का पारणा राजपुर नगर मे अपराजित राजा के घर प्रभु ने खीर से किया। तीन वर्ष तक प्रभु ने उग्र आत्म साधना की। तत्पश्चात् पुनः सहस्राम्र वन उद्यान में पधारे। आम्रवृक्ष के नीचे प्रभु आत्मध्यान मे लीन हो गए। उस समय प्रभु ने बेले का तप भी किया। कार्तिक मास की शुक्ला द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्र के चन्द्र योग में प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवों ने समवसरण की रचना की। भवि जीवों के कल्याण केलिए प्रभु ने देशना का प्रारंभ किया।

प्रभु ने कहा— धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ है। इनमें मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है। मोक्ष पुरुषार्थ की साधना से आत्मा शुद्धि को प्राप्त करती है। परम विशुद्धि से ही मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। राग और द्वेष बंधन का मूल है। इनसे मुक्त होने वाला ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर हजारों व्यक्तियों ने दीक्षा स्वीकार की। कुंभ आदि प्रभु को तेत्तीस गणधर हुए।

प्रभु के शासन में तीन नेत्र वाला, श्याम वर्णवाला, शंख वाहन वाला एवं बारह भुजाओ वाला षण्मुख नामक यक्ष था।

नील कर्णवाली, कमल पर बैठने वाली चार भुजाओं वाली धारिणी नामक उनके शासन मे देवी थी।

प्रभु का सर्व परिवार इस प्रकार था। पचास हजार मुनि, पेसठ हजार साध्वियां, छसौ दश चौदह पूर्वधारी, दो हजार अवधिज्ञानी, अढी हजार एकावन मनःपर्यव ज्ञानी, दो हजार आठ सौ केवलज्ञानी, सात हजार तीन सौ वैक्रिय लब्धिवाले एवं एक हजार छ सौ वाद लब्धिवाले थे।

एक लाख चौरासी हजार श्रावक एवं तीन लाख बहत्तर हजार श्राविकाएं थी।

तीन कम इक्कीस हजार वर्ष तक केवलज्ञान के पश्चात् निर्वाण समय समीप जानकर प्रभु सम्मेतशिखर गिरि पर पधारे। एक हजार मुनियों के साथ प्रभु ने वहां एक मास अनशन किया।

मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन रेवती नक्षत्र के चन्द्र योग मे प्रातःकाल प्रभु ने परम पद प्राप्त किया।

कुमार अवस्था, राज्य अवस्था, चक्रवर्ती अवस्था एवं चारित्र पर्याय में प्रत्येक अवस्था के इक्कीस हजार वर्ष मिलाकर प्रभु की कुल आयु चौरासी हजार वर्ष की थी।

श्री अरनाथ स्तवन

(तर्ज.- विमलाचल धारा)

अरनाथ जिनंदा शिवसुखकंदा,
वंदुं श्री भगवान।
प्रभु ज्ञान-दिनंदा, आनंदकंदा,
मुनिगण चंदा ॥वंदुं ॥

गजपुर नगर सोहामणो रे,
जीहां लिया प्रभु अवतार।
सुदर्शन राजा धरे रे रानी,
श्री देवी सार रे ॥अरनाथ ॥१ ॥

फागन सुदि द्वितीया दिन रे,
सर्वार्थसिद्धि विमान।
पूर्णायु चव के हुए रे,
माता उदरे निधान रे ॥अ ॥२ ॥

मिगसर सुदि दसमी दिन रे,
जनमे प्रभु सुखकार।
सुर सुरपति उत्सव करे रे,
मेरू शैल उदार रे ॥अ ॥३ ॥

चक्रवर्ती पदवी लही रे,
पूर्व पुण्य के जोग।
तीर्थंकर शुभ योग से रे,
दो पदवी संयोग रे ॥अ०४ ॥

मिगसर सुदि एकादशी रे,
त्यागन कर संसार।
मौन एकादशी पर्व में रे,
लीनो संयम धार रे ॥अ०५ ॥

दीक्षा कल्याणक जानिये रे,
अष्टादश जिनदेव.
मौन व्रत धारण करि ने,
भाव से कीजे सेव रे ॥अ०६ ॥

कार्तिक शुक्ला द्वादशी रे,
प्रगट्यो केवलज्ञान ।
समवसरण सुरवर रचे रे,
दे प्रभु देशना दान रे ॥अ०७ ॥

मिगसर सुदि दसमी तिथि रे,
मोक्ष गए भगवान ।
सम्मेत शिखर गिरि ऊपरे रे
कल्याणक निर्वाण रे ॥अ०८ ॥

आतम लक्ष्मी साधना रे,
अमृतसर मझधार ।
मौन एकादशी पर्व में रे,
वल्लभ हर्ष अपार रे ॥अ०९ ॥

स्तुति

अरनाथस्तु भगवान् चतुर्थार-नभो-रविः ।
चतुर्थ-पुरुषार्थ-श्री-विलासं वितनोतु वः ॥

प्रार्थना

ओ अरनाथ अनंत सुखदाता, देवी रानी के जाए हो,
राजा सुदर्शन के सुत प्यारे, प्राणी मात्र को भाए हो ।
शरण तुम्हारी जो भी आए, चित्त प्रसन्नता को पाये
तुम चरणों की सेवा करके, आत्मा उज्ज्वल हो जाए ॥

परिचय

१ माता का नाम	देवी रानी
२ पिता का नाम	सुदर्शन राजा
३ च्यवन कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला २/हस्तिनापुर
४ जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा १०/हस्तिनापुर
५ दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/हस्तिनापुर
६ केवलज्ञान कल्याणक	कार्तिक शुक्ला १२/हस्तिनापुर
७ निर्वाण कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला २०/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या ३३ प्रमुख कुभ
९ साधु	सख्या ५० हजार प्रमुख कुभ
१० साध्वी	६० हजार प्रमुख रक्षिका
११ श्रावक	सख्या १ लाख ८४ हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ७२ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	आम्र
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	यक्षराज
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	धारिणी
१६. आयुष्य	८४ हजार वर्ष
१७ लछन (चिह्न)	नदावर्त
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	सर्वार्थविद्ध (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	धनपति के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	३ वर्ष
२२ गृहस्थ अवस्था	६३ हजार वर्ष
२३ शरीरवर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	वैजयन्ती
२५ नाम-अर्थ	स्वप्न मे मां ने महारत्न देखा।
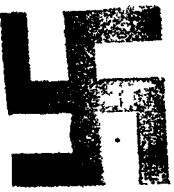
॥ श्री मल्लिनाथ ॥

SURASURNARADHISH MAYURNAV VARIDAM
KARMADRUNMULANE HASTI MALLAM MALLI MABHISHTUMAH

सुरासुरनराधीश,-मयूरनववारिदम् ।
कर्मद्रुन्मूलने हस्ति,-मल्लं मल्लीमभिष्टुमः ॥१९॥
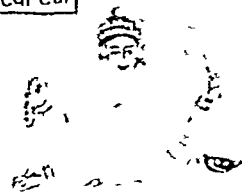
श्री मल्लिनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—मल्लिनाथ ओगणीशमां, जस मिथिला नयरी, प्रभावती
जस मावडी टाले कर्म बयरी ॥१ ॥

तात श्री कुंभ नरेसरू धनुष पचवीशनी काय,
लंछन कलश मंगलकरु, निर्मम निरमाय ॥२ ॥

वरस पंचावन सहसनुं अे जिनवर उत्तम आय,
पद्म विजय कहे तेहने, नमतां शिवसुख थाय ॥३ ॥

श्री मल्लिनाथ चरित्र

इस जंबूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में लीलावती नामक विजय में वीतशोका नामक श्रेष्ठ नगरी थी। वहां बल नामक राजा था। उसे धारिणी नामक महारानी थी।

उन्हे सिह के स्वप्न से सूचित महाबल नामक राजकुमार था। युवावस्था मे उसने कमल श्री आदि पांच सौ राजकन्याओ के साथ शादी की।

महाबल को अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रवण और अभिचंद्र ये छ राजा बचपन से ही बाल मित्र थे।

एक बार नगर के बाहर इन्द्र कुब्ज नामक उद्यान में गुरु महाराज पधारे। बलराजा उनके पास गया। वहा उनकी वाणी श्रवण कर उन्हें वैराग्य हुआ। राजसिहासन पर पुत्र महाबल को स्थापित किया।

बल राजा ने संयम ग्रहण कर उग्र साधना की। कर्म का क्षय कर मोक्षपद प्राप्त किया।

महाबल एवं उनके मित्रो ने अपने-अपने राज का परिपालन चिरकाल तक किया।

महाबल को वलभद्र नामक एक पुत्र था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब उसे युवराज पद प्रदान किया।

एक बार महाबल ने अपने मित्रों को कहा— मै असार संसार का परित्याग करना चाहता हूं। अतः दीक्षा ग्रहण करूंगा। तुम्हारा क्या विचार है?

मित्रो ने कहा—जैसे हम संसार में साथ रहे है, वैसे ही हम मोक्षमार्ग मे भी साथ ही रहेंगे।

महाबल ने पुत्र बलभद्र को राज सोंपा अन्य मित्रों ने भी अपने पुत्रो को राज सौंपकर सभी ने साथ ही दीक्षा स्वीकार की ।

वरधर्म मुनि के पास दीक्षा लेकर उन्होंने प्रतीज्ञा की कि हम सभी एक ही प्रकार की तपस्या करेगे । यह संकल्प कर उन्होंने बेले आदि की तपस्या प्रारंभ कर दी ।

सातों मित्रो में महाबल मुनि अधिक फल प्राप्ति की इच्छा से पेट दर्द, सिरदर्द एवं भूख नही है का बहाना करके पारना के दिन भी पारना नही करते थे, माया करके उपवास कर लेते थे ।

माया मिश्रित तप से, स्त्री वेद एवं वीश स्थानक की आराधना से तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया ।

चौरासी हजार वर्ष तक तप एवं संयम की आराधना की । अनशन कर समाधिमरण से वे वैजयंत नामक अनुत्तर विमान मे देव हुए ।

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में मिथिला नामक नगरी है । वहां कुंभ नामक राजा था । प्रभावती नामक उनकी महारानी थी । महाबल की आत्मा तेतीस सगरोपम की देवभव की आयु पूर्ण कर फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन प्रभावती की कुक्षि में उत्पन्न हुई ।

गर्भकाल परिपूर्ण होने पर मार्गशीर्ष मास की शुक्ला एकादशी के दिन मेष राशि के चन्द्रयोग में माता ने नील वर्ण की कांति वाली एवं कुंभ चिन्ह वाली कन्या को जन्म दिया । यह पुत्री तीर्थकर रूप थी ।

यह कन्या जब गर्भ में थी तब माता को माल्य (पुष्प का दोहद हुआ । अतः कुंभ राजा ने उनका नाम मल्लि रखा ।

अचल की आत्मा वैजयंत से च्यवकर भरतक्षेत्र के साकेत नामक नगर मे प्रतिबुद्ध नामक राजा हुआ । धरण की आत्मा भी वैजयंत से च्यवकर चंपा नामक नगरी में चन्द्रच्छाय नामक राजा हुआ । पूरण की आत्मा भी वैजयंत से च्यवकर श्रावस्ति नगरी मे रुक्मि नामक राजा हुआ । वसु की आत्मा वाराणसी में शंख नामक राजा हुआ । वैश्रमण की आत्मा हस्तिनापुर में अदीनशत्रु नामक राजा हुआ अभिचंद्र की आत्मा कांपिल्य नगर में जितशत्रु नामक राजा हुआ ।

उन राजाओं ने मल्लिनाथ के रूप की प्रशंसा सुनी । उन्हें वरने की इच्छा से उन्होंने अपने-अपने दूत भेजे ।

उस समय कुंभ राजा ने दूतों को कहा— मेरी कन्या से विवाह करने केलिए देवों मे भी योग्य नही है फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

कुभ राजा के इस प्रत्युत्तर से सभी दूत निराश होकर लौट गए। दूतों ने अपने-अपने राजा को कुभ राजा की बात बताई।

अपमानजनक बात सुनकर सभी राजा रुष्टमान हो गए। अपमान का बदला लेने और मल्लिकुमारी को प्राप्त करने की जिद्द से उन्होने मिथिला पर चढाई कर दी।

मल्लि प्रभु ने पूर्वभव के छ मित्र राजाओं को अवधिज्ञान से जान लिया। उन्हे प्रतिबोध देने केलिए अभिनव प्रयोग किया।

अशोक वाटिका में सुंदर एक महल बनवाया। जिसमें छ कमरे भी निर्माण कराए। मध्य में रत्नमय पीठिका की रचना की उस पर स्वयं की स्वर्णमय प्रतिमा स्थापन की। प्रतिमा के पीछे की दीवार में भी एक द्वार बनवाया।

प्रतिमा सचमुच मे मल्लिकुमारी जैसी ही लगती थी। प्रतिमा में मुख से उदर तक एक छिद्र भी रखा था। भोजन से पूर्व मल्लिकुमारी स्वादिष्ट और मधुर भोजन का एक ग्रास प्रतिमा मे डालती थी।

मिथिला नगरी को शत्रुओ से ग्रस्त देखकर कुंभ राजा चिता मे गिर गए। चितित पिता को मल्लिकुमारी ने आश्वासन दिया और कहा- आप कोई चिता न करें। सभी राजाओ को सम्मान के साथ अशोक वाटिका के महल मे ठहरा दें। मै आपकी समस्या का समाधान कर दूंगी।

कुभ राजा मल्लि कुमारी की बात स्वीकार कर छहो राजाओं को महल में प्रेम से ले आया। महल के कमरो मे उन्होंने स्थिरता की। मध्य में मल्लिकुमारी की साक्षात जैसी दिव्य प्रतिमा को देखकर वे मुग्ध हो गए। वे सभी एकटक उसे निहारने लगे। मन मे सोचने लगे यह मुझे मिल जायेगी।

एक गुप्तमार्ग से मल्लिकुमारी प्रतिमा के पीछे जाकर खडी हो गई। धीरे से उसने प्रतिमा के मस्तक पर बना कमल आकृति का ढक्कन खोला। ढक्कन खुलते ही भयंकर दुर्गंध उछलने लगी। राजाओं का दम घुटने लगा।

कपडो से नाक-मुंह बंद कर इधर-उधर भागने लगे। निकलने की जगह नही थी। दरवाजे पहले से ही बन्द थे। उनकी आकुल-व्याकुलता को देखकर मल्लिकुमारी ने सामने आकर कहा—हे राजाओ मणिजडित स्वर्णमय मूर्ति मे डाला गया आहार भी असह्य दुर्गधमय हो जाता है। फिर जो देह शुक्र एवं खून से पैदा होता है उसका तो पूछना ही क्या?

जिस शरीर केलिए तुम लालायित हो उसी मे भी यही दुर्गधि है। इस सुन्दर और मनोहर प्रतीत होने वाली त्वचा के भीतर ही यह गंदगी छिपी है।

हमारा यह देह अशुचिमय और दुर्गधमय है।

उन्होने आगे कहा कि— आप भूल गए है, गत जन्म मे हम सातो धनिष्ट मित्र थे। हमने साथ मे ही

दीक्षा ली तपस्या की और साथ ही अन्त में अनशन कर स्वर्ग में गए। मैंने आप लोगों के साथ कपट किया था, अतः इस जन्म में स्त्रीवेद मिला है। हमें मोहदशा को मिटाना है। वितराग पद को प्राप्त करना है।

भगवती मल्लि की बात सुनकर उन्हे भी जाति स्मरणज्ञान हुआ। अपना पूर्व संबंध देखा। सभी राजा पश्चाताप करते हुए मल्लिकुमारी से माफी मांगने लगे, और बोले अब हमें क्या करना चाहिए।

मल्लि स्वामी ने कहा– कर्मो के बंधन से मुक्त होने केलिए, परम पद को पाने केलिए मै संयम स्वीकार करूंगी। आप भी दीक्षा ग्रहण कर लें। सभी राजा दीक्षा की तैयारी केलिए अपनी राजधानियो में गए।

मल्लि स्वामी ने भी एक वर्ष तक वर्षीदान देना प्रारंभ किया।

तत्पश्चात् पचास धनुष की काया वाले प्रभु जयंति नामक पालकी में विराजित होकर नगर के बाहर निकले। वहां सहस्त्राम्रवन उद्यान में मार्गशीर्ष मास की शुक्ला एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र के चन्द्रयोग में अट्ठम का तप कर दीक्षा ग्रहण की।

उस समय उनके साथ अभ्यंतर परिवार में तीन सौ नारियां एवं बाह्य परिवार में तीन सौ पुरुषों ने भी साथ ही दीक्षा ग्रहण की। अशोक वृक्ष के नीचे आत्मध्यान में लीन प्रभु मल्लि स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

प्रभु के समोसरण की रचना हुई। प्रभु ने देशना का प्रारंभ किया। उन्होंने अमृतमय वाणी मे कहा- यह संसार दुःखों की खान है। दुःख का कारण राग-द्रेष है जो जीवात्मा समता रूप जल मे स्नान करता है उसका राग-द्वेष रूप मल धूल जाता है। करोड़ों जन्मों तक तीव्र तप से जो पापों का क्षय नही होता, वह समता जल में स्नान करने से क्षणमात्र में हो जाता है।

ज्ञान दर्शन एवं चारित्र की आराधना समता से ही सफल होती है।

प्रभु देशना से अनेकों आत्माओं ने दीक्षा ग्रहण की छ राजाओं ने भी दीक्षा ली। भिषक आदि प्रभु के अट्ठाईस गणधर हुए।

सहस्त्राम्रवन उद्यान में ही विश्वसेन राजा के हाथों खीर से प्रभु का पारना हुआ।

मल्लिनाथ प्रभु के शासन में वज्र जैसी कांति वाला चार मुखवाला, हाथी के वाहनवाला कुबे नामक यक्ष था। चार हाथों वाली, श्यामकांतिवाली एवं कमल के आसनवाली वैरोट्या नामव मल्लिनाथ की शासनदेवी हुई।

प्रभु का सर्व परिवार इस प्रकार था। चालीस हजार साधु एवं पचपन हजार साध्वियां थी। छस

अडसठ चौदह पूर्वी थे ।

दो हजार दो सौ अवधिज्ञानी, सत्रह सौ पचास मनःपर्यवज्ञानी दो हजार दो सौ केवलज्ञानी थे । सौ कम तीन हजार वैक्रिय लब्धिवाले, एवं एक हजार चार सौ वाद लब्धिवाले थे ।

एक लाख तिरासी हजार एवं तीन लाख सत्तर हजार श्राविकाओ की संख्या प्रभु के शासन मे थी ।

निर्वाण समय समीप जानकर मल्लिनाथ प्रभु सम्मेत शिखर पर पधारे । पांच सौ साधु और पांच सौ साध्वियो के साथ प्रभु ने अनशन किया । फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन भरणी नक्षत्र के चन्द्र योग में काउसग्ग ध्यान में खड़े हुए प्रभु ने मोक्ष पद प्राप्त किया । मल्लिनाथ प्रभु की संपूर्ण आयु पचपन हजार वर्ष की थी ।

श्री मल्लिनाथ स्तवन

गाम भोयणी वाले,
तुम को लाखो प्रणाम ॥अचली ॥

मल्लीनाथ प्रभु नाथ हमारे,
हम सघरे प्रभु दास तुम्हारे ।
दीजे पद अभिराम,
तुम को लाखो प्रणाम ॥१ ॥

मगसर सुदि एकादशी सांरी
जन्मे प्रभु तुम जग हितकारी ।
मल्लि जिनेश्वर नाम ॥२ ॥

आज ही लीनो संजम धारी,
निज आतम को उजियारी ।
परमातम विसराम ॥३ ॥

आज ही घाती कर्म निवारी,
केवल ज्ञान उपायो भारी ।
जय-जय आतमराम ॥४ ॥

समवसरण रचना सुर कीनी,
पर्षद द्वादश देशना दीनी ।
तीर्थंकर पद धाम ॥५ ॥

संवत ओगणीसौ चोराणुं,
मगसर सुदि एकादशी टाणुं ।
दर्शन कीनो स्वाम ॥६ ॥

आतम लक्ष्मी हर्ष पामी,
आप हुए सिद्ध अंतर्यामी ।
वल्लभ आतमराम ॥७ ॥

स्तुति

सुरासर—नराधीश—मयूर—नव—वारिदम् ।
कर्म्मद्रून्मूलने हस्ति-मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ॥

प्रार्थना

राजा कुंभ व प्रभावती रानी के कुल को कीर्ति दी
मल्लिजिनेश्वर स्त्री तीर्थंकर बनकर सबको विरति दी ।
उन्नीसवें तीर्थंकर का आराधन भव से पार करे
भोयणीमंडन मल्लि प्रभु का, सुमरिन सब संसार करे ॥

परिचय

१ माता का नाम	प्रभावती रानी
२ पिता का नाम	कुभ राजा
३ च्यवन कल्याण	फाल्गुन शुक्ला ४/मिथिला
४ जन्म कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
५ दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
६ केवलज्ञान कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
७ निर्वाण कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला १२/सम्मेत शिखर
८ गणधर	सख्या २८ प्रमुख भीक्षक
९ साधु	सख्या ४० हजार भीक्षक
१० साध्वी	सख्या ५५ हजार प्रमुख बधुमती
११ श्रावक	सख्या १ लाख ८४ हजार
१२ श्राविका	सख्या २ लाख ६५ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	अशोक
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	कुबेर
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	वैरोट्या
१६ आयुष्य	५५ हजार वर्ष
१७ लछन (Mark)	कलश-कुभ
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	जयत (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	वैश्रमण के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	१ प्रहर
२२ गृहस्थ अवस्था	१०० वर्ष
२३ शरीर-वर्ण	नील
२४ दीक्षा दिनकी शिबिका का नाम	जयन्ती
२५ नाम-अर्थ	मा की इच्छा पुष्प मालाओ की शय्या पर सोने की हुई।
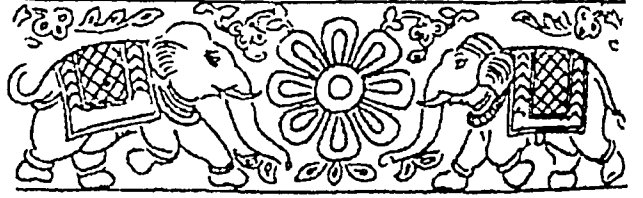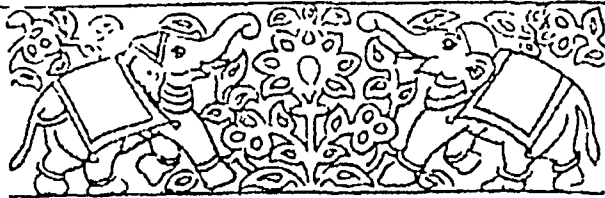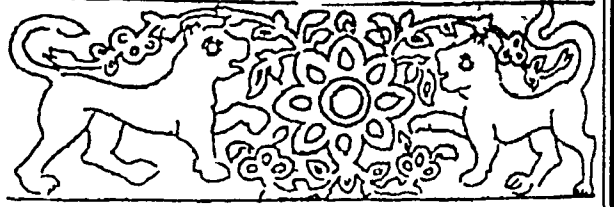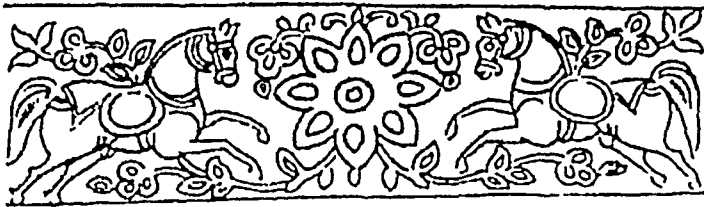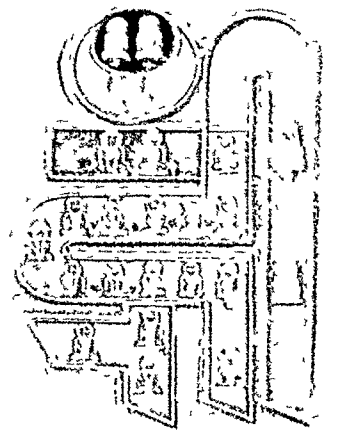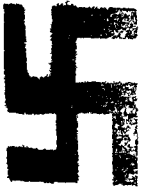
।। श्री मुनिसुव्रतस्वामी ।।

JAGNMAHA MOHNIDRA PRATYUSH SAMAYOPAMAM
MUNISUVRUTA NATHSYA DESHANA VACHANAM STUMAH

जगन्महामोहनिद्रा,-प्रत्यूषसमयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशनावचनं स्तुमः ।।२०।।

श्री मुनिसुव्रत जिन देववंदन

चैत्यवंदन—मुनिसुव्रत जिन वीशमा, कच्छपनुं लछन,
पदमा माता जेहनी सुमित्र नृपनंदन ॥१ ॥

राजगृही नयरी धणी, वीश धनुष शरीर,
कर्म निकाचित रेणु व्रज उदाम समीर ॥२ ॥

त्रीश हजार वरसतणुं अे, पाली आयु उदार,
पदम विजय कहे शिव लहया, शाश्वत सुख
निरधार ॥३ ॥
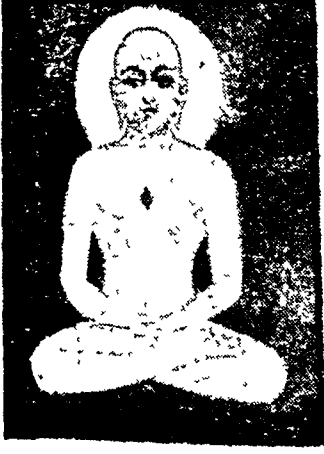
श्री मुनिसुव्रत स्वामी चरित्र

इस जंबूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में भरत नामक विजय में चंपानामक नगरी है। सुर श्रेष्ठ नामक वहां का राजा था।

एक बार नंदन नामक मुनि नगर के बाहर उद्यान में पधारे। उनको वंदना करने केलिए राजा गया। उनकी वाणी श्रवण की राजा को वैराग्य हुआ। उनके पास राजा ने दीक्षा ग्रहण की। वीश स्थानक की आराधना से तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया। समाधिमरण प्राप्त कर प्राणत नामक देवलोक मे देव हुए। वहां से च्यवकर वे हरिवंश मे उत्पन्न हुए। हरिवंश की उत्पत्ति इस प्रकार से है।

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र मे कौशांबी नामक नगरी मे सुमुख नामक राजा था। एक बार वसत ऋतु मे हाथी पर पर बैठकर वह राजा बाहर उद्यान मे गया।

रास्ते मे अत्यंत रूपवान वीर शालवी की वनमाला नामक स्त्री को देखकर राजा कामातुर हो गया। कामाग्नि से दुःखी राजा को देखकर सुमित्र नामक मंत्री ने आत्रेयी नामक परिव्राजका द्वारा वनमाला के साथ उसका मिलन करा दिया।

राजा ने उसे पट्टरानी बना दिया। पत्नी के विरह से शालवी उन्मत्त हो गया। वनमाला को याद करता हुआ वह निरंतर नगर मे घूमता था। बालक भी उसके पीछे घूमते थे और उसकी मजाक उडाते थे।

एक बार विलाप-प्रलाप करता हुआ वह राजा के राजमहल के प्रांगण में आया। राजा और वनमाला ने उसे देखा। उसकी दयनीय स्थिति देखकर दोनो को अति दुःख हुआ। वे पश्चाताप करने लगे। आत्मनिंदा करने लगे। जब वे दुष्कृत की निंदा कर रहे थे, उस समय सहसा उन पर बिजली गिरी।

राजा और वनमाला शुभ ध्यान में मरे। मरकर वे हरिवर्ष नामक क्षेत्र में युगलीक बने। पिता ने उनका नाम हरि और हरिणी रखा। कल्पवृक्ष से उनकी इच्छाएं पूर्ण होती थी। वे सुख से रहने लगे।

वनमाला के पति वीरशालवी ने कठोर बालतप किया। वह मरकर सौधर्म कल्प में देव बना। अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव जाना। हरि एवं हरिणी को देखकर एवं पत्नी के अपहरण के दुःख को याद कर वह अत्यंत कोपायमान हुआ। उनका संहार करने केलिए वह हरिवर्ष क्षेत्र में गया।

वहां उसने सोचा कि आयु पूर्ण हुए विना युगलिक की मौत नहीं हो सकती एवं क्षेत्र के प्रभाव से मरकर वे अवश्य देवगति को प्राप्त करते है। अतः इन पूर्वभव के शत्रुओं को ऐसे क्षेत्र में ले जाऊ जहां इनकी अकाल मौत हो और दुर्गति भी हो। यह सोचकर देव उन्हें कल्पवृक्ष सहित उठाकर भरतक्षेत्र की चंपापुरी मे ले आया।

उस समय चंपानगरी के राजा चंद्र कीर्ति की मौत हो गई थी। वह पुत्र रहित था। अतः नगर जन एवं मंत्री आदि अति चिंतित थे। उनको देव ने आकाश में रहकर प्रत्यक्ष रूप से कहा– हे नगरजनों एव मंत्रियों तुम्हारे भाग्योदय से मै हरवर्ष क्षेत्र से राज के योग्य हरि नामक पुरुष को लेकर आया हूं। उसके साथ पैदा हुई हरिणी नामक स्त्री को भी लाया हूं।

उनके भोग के लिए कल्पवृक्ष भी साथ लाया हूं। इसे तुम राजा के रूप मे स्वीकार करो। उन्हें भोजन मे कल्पवृक्ष के फलो के साथ मांस मिश्रित मदिरा दो।

देवकी वाणी स्वीकार करने पर उसने उन्हें युगलिक दिया। देव ने अपनी शक्ति से उनकी आयु अल्प कर दी और सौ धनुष ऊंची काया भी कर दी। मंत्रियों ने राजा का सिहासन पर अभिषेक किया। अंत में नर्क देने वाले राज को देकर देव प्रसन्न होता हुआ चला गया। यह राजा शीतलनाथ तीर्थ मे हुआ। इस राजा के नाम से हरिवंश प्रसिद्ध हुआ।

उस हरिराजा को हरिणी से पृथ्वीपति नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वह बड़ा राजा हुआ। उसे महागिरी नामक पुत्र हुआ। उसे भी हिमगिरि नामक पुत्र हुआ। तत्पश्चात् वसुगिरि नामक राजा हुआ। इस प्रकार हरिवश मे अनेक राजा हुए।

इसीभरत क्षेत्र में मगधदेश की राजगृह नामक नगरी अन्दर हरिवंश में सुमित्र नामक राजा पैदा हुआ। पद्मावती नामक उसे महारानी थी।

सुरश्रेष्ठ राजा की आत्मा प्राणत कल्प से च्यवकर श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्र योग मे पद्मावती की कुक्षि में पैदा हुई।

गर्भकाल पूर्ण होने पर ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्रयोग में

श्यामवर्ण वाले कच्छप लंछन वाले वीशवें तीर्थकर पुत्र को माता ने जन्म दिया। प्रभु जब गर्भ में थे उस समय माता ने मुनि की तरह सुव्रतो की पालना की अतः प्रभु का नाम पिता ने मुनिसुव्रत रखा।

वीश धनुष की प्रभु की काया थी। युवावस्था में प्रभावती आदि अनेक कन्याओं के साथ प्रभु का विवाह किया। प्रभावती से पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम रखा गया सुव्रत।

तत्पश्चात् प्रभु को राजसिहासन पर बिराजमान किया गया। पन्द्रह हजार वर्षो तक प्रभु ने न्याय नीति से प्रजा का पालन किया।

दीक्षा काल निकट जानकर प्रभु ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया। वर्षीदान पश्चात् प्रभु ने दीक्षा की तैयारी की। पुत्र सुव्रत को राजसिहासन पर स्थापित किया।

अपराजिता नाम की पालकी में आरूढ होकर नीलगुहा नामक उद्यान में पधारे। वहां फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्रयोग में एक हजार राजाओं के साथ बेले की तपस्या करके दीक्षा ग्रहण की।

राजगृह नगर में ब्रह्मदत्त राजा के घर प्रभु ने खीर से बेले का पारना किया।

प्रभु ने छद्मस्थ अवस्था मे ग्यारह मास तक पृथ्वी पर विहार किया। पश्चात् पुनः जहां दीक्षा ली थी प्रभु उस नीलगुहा नामक उद्यान मे पधारे। वहां चंपक वृक्ष के नीचे प्रतिमा अवस्था मे एवं बेले की तपस्यावाले प्रभु को फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्रयोग मे दिन के पूर्वभाग मे केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

देवो ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने मेघ गंभीर वाणी मे उपदेश देते हुए कहा- खारे समुद्र मे जैसे रत्न प्राप्त किया जाता है। वैसे ही संसार में धर्म ग्रहण करना चाहिए। दस प्रकार के यतिधर्म की एवं बारह प्रकार के गृहस्थधर्म की प्ररूपणा की। मार्गानुसारी के पैतीस गुणों का भी प्रभु ने प्रतिपादन किया।

प्रभु की तेजस्वी वाणी से हजारों नर-नारी प्रतिबुद्ध हो गए। कइयो ने दीक्षा ली एव कईयो ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। अरिहंत की देशना सफल ही होती है।

प्रभु को इन्द्र आदि अठारह गणधर हुए।

प्रभु केशासन मे तीन नेत्रवाला, चार मुखवाला श्वेतवर्णी, वृपभ वाहनवाला एवं आठ हाथो वाला वरुण नामक शासन देव था। भद्रासन पर बैठने वाली, गौरवर्ण वाली नर दत्ता नामक प्रभु की शासनदेवी थी।

पूर्वभव का मित्र जो मरकर घोड़ा बना था उसे प्रतिवोध देने केलिए प्रभु विहार करते [illegible] भृगुकच्छ (भरुच) नगर मे पधारे। वहां अश्व पर वैठकर जितशत्रु राजा प्रभु को वंदन करने [illegible]

आया।

प्रभु की अमृतमय वाणी का राजा एवं घोड़े ने श्रवण किया।

देशना के अंत में गणधर ने भगवान से पूछा कि हे प्रभो ! इस समवसरण में किसको प्रतिबोध हुआ। तब प्रभु ने कहा कि—आज जितशत्रु के राजा के अश्व के बिना किसी को प्रतिबोध नही हुआ है।

यह सुनकर आश्चर्यचकित राजा जितशत्रु ने परमात्मा से पूछा—हे प्रभो ! यह कौन है, जिसे यहां धर्म की प्राप्ति हुई है। तब प्रभु ने कहा—पद्मिनिखंड नामक नगर में द्रढधर्मी जैन धर्म पालक जिनधर्म नामका परम श्रावक था। उस नगर में श्रेष्ठिवर्य सागरदत्त नामक श्रेष्ठि उसका मित्र था। मित्रता एवं भद्रिकता से वह हमेशा जिनधर्म के साथ अरिहंत भगवान के साथ मंदिर में जाता था।

दान के स्वभाव वाला एवं विशाल तृष्णावाला वह सागरदत्त तुम्हारा (अश्व) घोडा हुआ है।

एक बार मुनि भगवंत से उसने सुना कि जो अरिहंत प्रभु की प्रतिमा भराता है, वह दूसरे भव मे ससार को पार कर जाता है।

यह सुनकर सरल परिणामी सागरदत्त ने अरिहंत प्रभु की प्रतिमा निर्मित कर स्थापना कराई।

सम्यक्त्व को प्राप्त किए बिना ही दान के स्वभाव वाला एवं विशाल तृष्णावाला वह मरकर तुम्हारा घोड़ा हुआ है, हे राजा इसको प्रतिबोध देने केलिए ही मै यहां आया हूं।

प्रभु मुनिसुव्रत स्वामी जी ने तीन दिन में घोडे को प्रतिबोध देने के लिए साठ योजन का विहार किया था। पूर्व भव में निर्मित अरिहंत प्रभु की प्रतिमा के प्रभाव से उसे बोध हुआ है। भगवान के वचन सुनकर राजा ने घोड़े को छोड़ दिया। स्वतंत्र कर दिया। तब से यह भरूच शहर अश्वाव बोध नामक महातीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

जग उपकारी प्रभु भी वहांसे विहार करते हुए हस्तिनापुर में पधारे। उस नगर में जितशत्रु नामक प्रसिद्ध राजा था। नगर में कार्तिक नामक उत्तम श्रावक था। वह दृढ समकितधारी था। एक बार मासोपवासी परिव्राजक को पारणा कराने के लिए कार्तिक शेठ को राजा ने बुलाया। अपने महल मे कार्तिक शेठ के हाथों भोजन परोसाया। सम्यक्त्व धारी कार्तिक शेठ को इस घटना से वैराग्य हुआ। अतः कार्तिक शेठ ने भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी के चरणों में एक हजार वणिकों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

कार्तिक मुनि ने बारह वर्षो तक उग्र तपस्या की। बारह अंगों का अभ्यास किया। समाधिमरण प्राप्त कर वह सौधर्मकल्प में इन्द्र हुआ। वह परिव्राजक मरकर इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी हुआ।

मुनिसुव्रत प्रभु का परिवार इस प्रकार था। तीस हजार साधु, पचास हजार साध्विया, पांच सौ चौदह पूर्वी, एक हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, एक हजार पांच सौ मनःपर्यवज्ञानी, एक हजार आठ सौ

केवलज्ञानी, दो हजार वैक्रियलब्धि वाले, एक हजार दो सौ वादलब्धि वाले मुनि थे ।

एक लाख बहत्तर हजार श्रावक एवं साढ़े तीन लाख श्राविकाएं प्रभु के परिवार मे थी ।

केवलज्ञान के पश्चात् श्री मुनिसुव्रतस्वामी को ग्यारह मास कम साढ़े सात हजार वर्ष पूर्ण हुए, तव वे सम्मेत शिखर पर पधारे । ज्येष्ठ मास की कृष्ण पक्ष की नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र के चन्द्रयोग में दिन के पूर्वार्ध में एक हजार मुनियों के साथ अनशन कर प्रतिमा अवस्था मे खड़े हुए प्रभु ने मोक्षपद प्राप्त किया ।

मुनि श्री सुव्रतस्वामी स्तवन

(तर्ज- भजनियों की, वाला वेगे आवोरे)

सरणे तुम आयो रे, शिवसुख दाया रे,
स्वामी सुनो विनती हो जी ।
मुनि सुव्रत नाम आप अवधार,
करूणासिधु सेवक पार उतार ॥सरण० ॥

जगदीश्वर जगनाथ जी, जगबंधु, जगस्वाम ।
जगतारक जगवत्सला, जगनायक जिननाम ।
करूणासिधु अपना विरुद्ध संभार ॥सरणे ॥१ ॥

वीतराग निर्दोष छै, तीर्थकर भगवान ।
चार अनंता पायके, चिदधन सुख की खान ।
करूणासिधु अजर अमर पद धार ॥सरणे ॥२ ॥

दुरित टरे दरिसन किये, वंदन वांछित दाय ।
पूजन लक्ष्मी कारणे, कल्पतरू सम भाय ।
करूणासिधु तू जगजीवन आधार ॥सरणे ॥३ ॥

क्रोध मान माया रति, लोभ प्रेम भय खास ।
मत्सर अरति शोक मद, झूठ अदत्त विलास ।
करूणासिधु हिसा दूर निवार ॥सरणे ॥४ ॥

नीद अज्ञान अठार ए, दोष नहीं तुम देव ।
दोषरहित होने लिए, करते जन तुम सेव ।
करूणासिधु गुणमणि रयण भंडार ॥सरणे ॥५ ॥

आतमलक्ष्मी पामिया, हे जिन दीनदयाल ।
तो सेवक को दीजिए शरण परयो तुम बाल ।
करूणासिंधु पुरुषोत्तम आचार ॥सरणे ॥६ ॥

इंदु रिसि निधि चन्द्रमा मौन एकादशी सार ।
तीर्थ अगासी में हुओ, मंगल जय जयकार ॥
करूणासिंधु वल्लभ हर्ष अपार ॥सरणे ॥७ ॥

स्तुति

जगन्महामोह-निद्रा-प्रत्यूष-समयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशना-वचनं स्तुमः ॥

प्रार्थना

बीसवें मुनिसुव्रत स्वामी प्रभुवर है सब के उपकारी
पद्मानंदन प्रसन्नता दे जाप जपे जो नरनारी ।
इक अश्व को प्रतिबोध के कारण रात में कितना बिहार किया
जो ध्यायें मनवांछित पाये, शरणागत को तार दिया ॥

परिचय

१ माता का नाम	पद्मावती रानी
२ पिता का नाम	सुमित्र राजा
३ च्यवन कल्याणक	श्रावण शुक्ला १५/राजगृही
४ जन्म कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा ८/राजगृही
५ दीक्षा कल्याणक	फाल्गुन शुक्ला १२/राजगृही
६ केवलज्ञान कल्याणक	फाल्गुन कृष्णा १२/राजगृही
७ निर्वाण कल्याणक	ज्येष्ठ कृष्णा ९/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या १८ प्रमुख मल्लि
९ साधु	सख्या ३० हजार प्रमुख मल्लि
१० साध्वी	सख्या ५० हजार प्रमुख पुष्पवती
११ श्रावक	सख्या १ लाख ७२ हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ५० हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	चपक
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	वरुण
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	नरदत्ता
१६ आयुष्य	३० हजार वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	कछुआ
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	अपराजित (अनुत्तर)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	श्रीवर्मा के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	९
२१ छद्मस्थ अवस्था	११ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	२२ हजार ५०० वर्ष
२३ शरीर-वर्ण	श्याम
२४ दीक्षा देने की शिविका का नाम	अपराजिता
२५ नाम-अर्थ	गर्भ मे आने पर मा को मुनि की तरह सुव्रत पालन की इच्छा जगी।
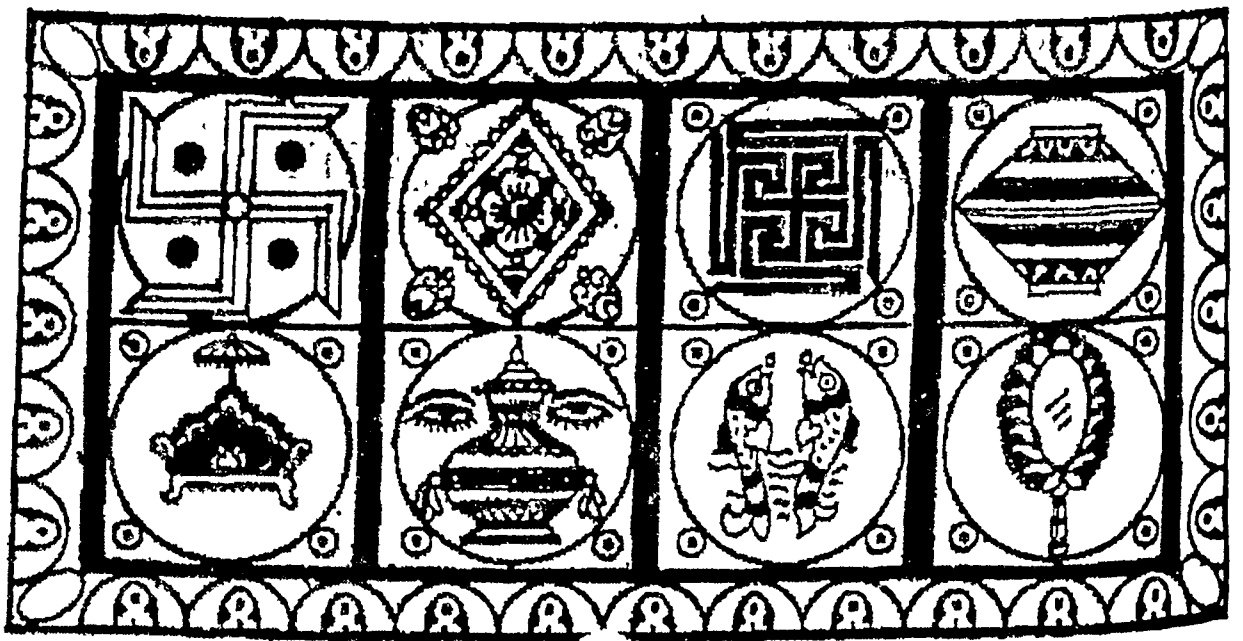
॥ श्री नमिनाथ ॥

॥ श्री नमिनाथ ॥

LUTHANTO NAMATAM I MURDHNI NIRMALIKAR KARNAM
VARIPLAVA IVA NAMEHE PANTU PAD NAKHANSHAVAH

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि, निर्मलीकारकारणम् ।
वारिप्लवा इव नमेः, पान्तु पादनखांशव ॥२१॥

सहस्राम्र वन नामक उद्यान मे पधारे। वहां आपाढ़ मास की कृष्णपक्ष की नवमी के दिन दिनके पिछ भाग मे एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की।

प्रभु ने वीरपुर नगर में दत्त नामक राजा के घर खीर से बेले का पारना किया। नवमास तक पृथ्वीतल पर प्रभु ने विचरण किया। पुनः प्रभु सहस्राम्रवन उद्यान में पधारे और बकुल नामक वृक्ष के नीचे प्रतिमाध्यान में स्थिर हुए।

मार्गशीर्ष मास की शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र के चन्द्रयोग में दिन के पूर्वार्ध में बेले की तपस्या वाले प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने आगार धर्म और अणगार धर्म पर दिव्य देशना दी। प्रभु की वाणी से हजारों नर-नारियों ने दीक्षा ग्रहण की।

श्री कुंभ आदि प्रभु के सत्रह गणधर हुए।

प्रभु के शासन में तीन नेत्रवाला, चार मुखवाला बैल वाहनवाला एवं स्वर्णमय कांतिवाला भृकुटी नामक यक्ष था। श्वेत वर्णवाली हंस वाहनवाली गांधारी नामक प्रभु की शासनदेवी थी।

प्रभु का सर्व परिवार इस प्रकार था। वीश हजार साधु इकतालीश हजार साध्वीयां, साढे चार सौ चौदहपूर्वी, एक हजार छ सौ अवधिज्ञानी, एक हजार दो सौ मनःपर्यवज्ञानी, एक हजार छ सौ केवलज्ञानी थे।

पांच हजार वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार वादलब्धि वाले एक लाख सत्तर हजार श्रावक थे एव तीन लाख अड़तालीस हजार श्राविकाएं थी।

केवलज्ञान के पश्चात् ढाई हजार में नवमास कम वर्ष हुए तब प्रभु सम्मेतशिखर पर पधारे। वहां प्रभु ने एक मास का अनशन किया। वैशाख मास की कृष्णपक्ष की दशमी के दिन अश्विनी नक्षत्र के चन्द्रयोग में एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा ध्यान में खड़े हुए प्रभु ने दिन के पूर्वार्ध मे मोक्षपद प्राप्त किया।

कुमार अवस्था में ढाई हजार वर्ष, राज्य अवस्था में पांच हजार वर्ष एव चारित्र पर्याय में ढाई हजार वर्ष, इस प्रकार कुल मिलाकर प्रभु श्री नमिनाथ की आयु दस हजार वर्ष की थी।

श्री नमिनाथ जिन स्तवन

तर्ज :- सोहणी

नमिनाथ प्रभु का ध्यान धर,
मानुष जनम का सार है ।
दृष्टांत दश जिम दोहिला
मानुस जनम अवतार है ॥नमि-१ ॥

आरज देश पैदाश का,
कुल जाति उत्तम फार है ।
अति लम्बी आयु इद्री पूरण,
रोग से छुटकार है ॥नमि-२ ॥

गुरु जोग शुभ पाया सुना,
जिनवर वचन विस्तार है ।
सरधान शुद्ध मनसा करी,
रहा बाकी उद्यमकार है ॥नमि-३ ॥

उद्यम किए मिली सब सामग्री,
सफल होने हार है ।
कर दान अर्चन नियम तप जप,
ध्यान भावना बार है ॥नमि-४ ॥

मत क्रोध माया मान कर
नर लोभ देना वार कै ।
सब से बड़ा दुःखदाई जोधा,
नाम जिसका मार है ॥नमि-५ ॥

प्रभु ध्यान से मरे काम जोधा,
होना रहित विकार है ।
प्रभु वचन अमृतपान कर
आतम आनन्द सार है ॥नमि-६ ॥

प्रभु वीतराग जिनन्द चन्द,
चकोर चित मनोहार है ।
प्रभु ज्ञान धर मन भाव से
वल्लभ हर्ष अपार है ।नमि-७ ॥

श्री नमिनाथ भगवंत

स्तुति

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि, निर्मलीकार-कारणम् ।
वारिप्लवा इव नमेः पान्तु पाद-नखांशवः ॥

प्रार्थना

विजयराजा-वप्रा रानी के कुलदीपक नमिनाथ प्रभु
मिथिला के राजा तीर्थकर सर पर रख दो हाथ प्रभु !
जब तक कर्म छूटे ना सारे कमल पत्र सा जीवन जीऊं
प्रभुकृपा की सुधा के प्याले भक्ति मे हो मगन पीऊं ॥

परिचय

१ माता का नाम	वप्रा रानी
२ पिता का नाम	विजय राजा
३. च्यवन कल्याणक	आश्विन शुक्ला १५/मिथिला
४ जन्म कल्याणक	श्रावण कृष्णा ८/मिथिला
५ दीक्षा कल्याणक	आषाढ कृष्णा ९/मिथिला
६ केवलज्ञान कल्याणक	मार्गशीर्ष शुक्ला ११/मिथिला
७ निर्वाण कल्याणक	वैशाख कृष्णा १०/सम्मेतशिखर
८ गणधर	सख्या १७ प्रमुख शुभ
९ साधु	सख्या २० हजार प्रमुख शुभ
१० साध्वी	सख्या ४१ हजार प्रमुख अनीला
११ श्रावक	सख्या १ लाख ७० हजार
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ४८ हजार
१३ ज्ञानवृक्ष	बकुल
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	भ्रुकुटि
१५ यक्षिणी (अधिष्ठायिका देवी)	गाधारी
१६ आयुष्य	१० हजार वर्ष
१७ लछन (चिह्न-Mark)	नीलकमल
१८ च्यवन किस देवलोक से ?	प्राणत (१० वा)
१९ तीर्थकर नामकर्म उपार्जन	सिद्धार्थ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	३
२१ छद्मस्थ अवस्था	९ महीना
२२ गृहस्थ अवस्था	७ हजार ५०० वर्ष
२३ शरीर-वर्ण (आभा)	सुवर्ण
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	देवकुरु
२५ नाम-अर्थ	गर्भ मे आने पर विरोधियो के भी [illegible]
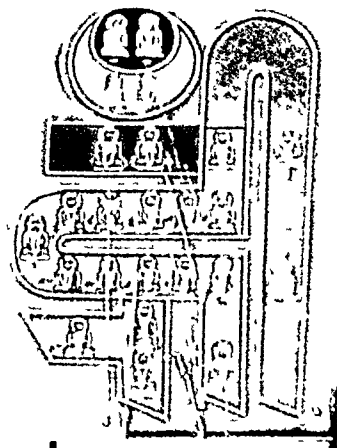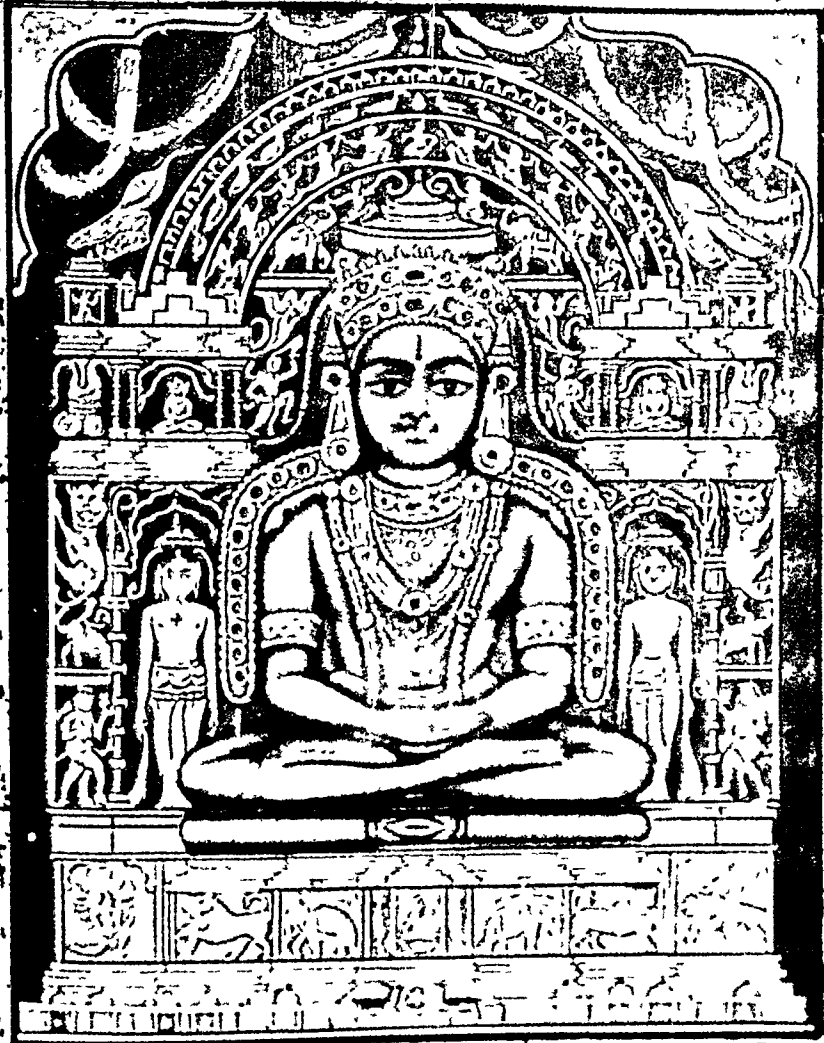
॥ श्री नेमिनाथ ॥

॥ श्री नेमिनाथ ॥

YADUVANSHA SAMUDRENDU KARMAKAKSHA HUTASHANAH
ARISHTANEMIR BHAGAWAN BHUYADYO RISHTNASHANAM

यदुवंशसमुद्रेन्दुः, कर्मकक्षहुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्वोऽरिष्टनाशनः ॥२२॥

धर्मचक्र वंदना
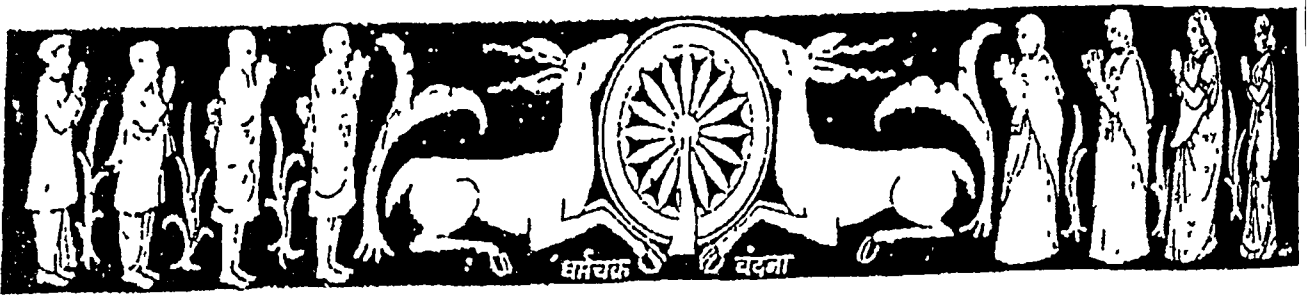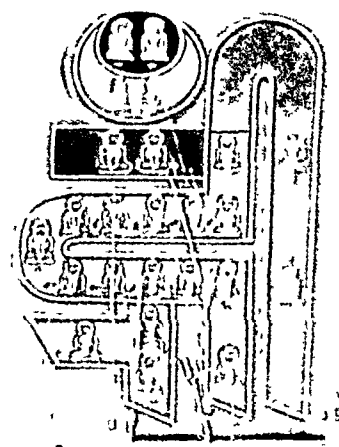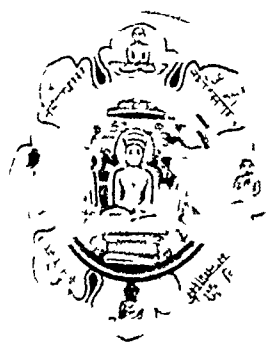
॥ श्री नेमिनाथ ॥

॥ श्री नेमिनाथ ॥

YADUVANSHA SAMUDRENDU KARMAKAKSHA HUTASHANAH
ARISHTANEMIR VHAGAWAN BHUYADVO RISHTNASHANAM

यदुवंशसमुद्रेन्दुः, कर्मकक्षहुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्वोऽरिष्टनाशनः ॥२२॥

श्री नेमिनाथ जिन देववंदन

चैत्यवंदन—नेमिनाथ बावीशमा, शिवादेवी माय,
समुद्रविजय पृथिवी पति, जे प्रभुना ताय ॥१ ॥

दशह धनुषनी देहडी, आयु वरस हजार, शंख
लंछनधर स्वामीजी, तजी राजुल नार ॥२ ॥

सौरीपुर नयरी भली अे, ब्रह्मचारी भगवान,
जिन उत्तम पद पद्मने, नमतां अविचल ठाणं ॥३ ॥
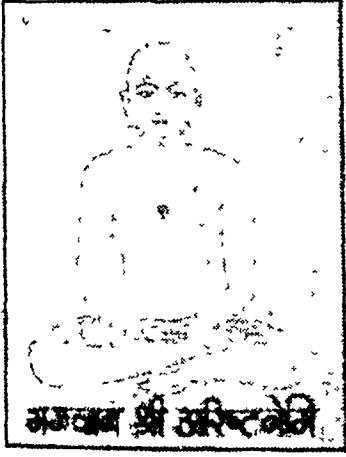
नेमिनाथ भगवान

इस जबूद्वीप के भरतक्षेत्र मे अचलपुर नामक नगर मे विक्रमधन नामक राजा था। उसे धारिणी नामक रानी थी।

एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर मे रानी ने स्वप्न मे आम्रवृक्ष देखा। स्वप्न मे एक तेजोमय पुरुष ने कहा- आज यह आम का वृक्ष तुम्हारे आंगन मे लगाया जा रहा है। भविष्य मे यह नौ स्थानो पर लगेगा। उत्तरोत्तर इसकी समृद्धि बढ़ती जायगी।

स्वप्नलक्षण पाठको से पूछने पर उन्होने- उत्तम पुत्र प्राप्ति का फल बताया। नौ बार लगने का फल वे बता नहीं पाए।

नौ मास पूर्ण होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका धन कुमार नाम रखा। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ। अनेक विधाओं मे वह पारगामी हुआ।

कुसुमपुर के राजा की सुपुत्री धनवती के साथ उसका विवाह किया गया।

एक बार अचलपुर के उद्यान मे वसुंधर नामक मुनि पधारे। विक्रमधन राजा उनके पास गया। वाणी श्रवण के पश्चात् राजाने पूछा- हे मुनि भगवंत जब यह कुमार गर्भ मे था। तब उस की माता ने स्वप्न देखा कि आम्रवृक्ष नौ बार लगेगा, इस प्रकार एक तेजपूज पुरुष ने कहा- इस स्वप्न का फल क्या है ?

ज्ञानि मुनि ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा- धन कुमार नौ भव में मुक्ति प्राप्त करेगा। [illegible] बावीशवां तीर्थंकर नेमिनाथ होगा।

एक बार धनकुमार धनवती के साथ सरोवर पर क्रीडा करने गया वहा उन्होंने [illegible]

को देखा। उनकी सेवा से मुनि की मूर्च्छा टूट गई।

सेवा से मुनि प्रसन्न हुए। मुनि ने उन्हे धर्मोपदेश दिया। उसके विचारो की शुद्धि हुई। उसे निर्माण सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। कुमार की पत्नी धनवती ने भी सम्यक्त्व को पाया। उन्होने श्रावक धर्म भी स्वीकार किया। अन्त में धनकुमार ने राज्य का त्याग कर धनदत्त और धनदेव दो भाईयो एवं धनवती रानी के साथ दीक्षा ग्रहण की। चारित्र की शुद्ध आराधना की समाधिमरण प्राप्त कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुए।

तीसरा एवं चौथा भव

वैताढय पर्वत पर सुरतेज नामक नगर मे सूर नामक राजा राज्य करता था। वह विद्याधर था। उसे विद्युन्मती नामक रानी थी। सौधर्म देवलोक से अपनी आयु पूर्ण कर धनकुमार उसके गर्भ मे उत्पन्न हुआ। परिपूर्ण समय होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। माता-पिता ने उसका नाम चित्रगति रखा। कुछ समय पश्चात् रानी ने दो और पुत्रो को जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया चपलगति और मनोगति।

शिवमंदिर नामक नगर मे अनंगसिह राजा को शशिप्रभा नामक रानी थी। सौधर्म देवलोक से च्यवकर धनवती का जीव रानी के गर्भ मे पुत्री रूप में पैदा हुआ। समय होने पर रानी ने पुत्री को जन्म दिया। उनका नाम रखा गया रत्नवती।

एक बार अनगसिह ने एक ज्योतिषी से पूछा- कि रत्नवती का पति कौन होगा? ज्योतिषी ने कहा-युद्ध मे जो तुम्हारी तलवार खिच लेगा एव सिद्धायतन मे जिसके ऊपर पुष्पवृष्टि होगी वह रत्नवती का पति होगा। कुछ समय पश्चात् शशिप्रभा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया कमल।

उस समय चक्रपुर नगर मे सुग्रीव नामक राजा राज्य करता था। उसे यशस्वती और भद्रा नामक दो रानियां थी। दोनो ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। यशस्वती के पुत्र का सुमित्र और भद्रा के पुत्र का नाम पद्म रखा गया।

सुमित्र विनयी एव गुणवान था। पद्म क्रुर एव अविनयी था। उसकी माता भद्रा ने एक दिन सोचा जब तक सुमित्र जीवित रहेगा, मेरे पुत्र को राजसिहासन प्राप्त नही होगा, अत: उसने सुमित्र को जहर खिला दिया। राजा को यह बात ज्ञात हुई। उसने मंत्रवादी एवं वैद्यो को बुलाया। उनके उपायों से भी विष नही उतरा।

भद्रा रानी भाग खडी हुई। सारा परिवार शोकमग्न हो गया। उस समय चित्रगति विमान मेबैठकर वहा से गुजर रहा था।

उसने सुग्रीव राजा एव परिवार को शोकमग्न देखा। उसने विमान को नीचे उतारा। सुमित्र पर मत्रजल छिड़का। राजकुमार मे चेतना आई। परिवार मे आनंद छा गया।

सुमित्र जैसे निद्रा मे से उठा हो, इस प्रकार उठकर वह सभी को पूछने लगा कि- यहां सभी एकत्रित क्यो हुए है ? तब राजा ने सपूर्ण घटना बताई । तत्पश्चात् चित्रगति का परिचय मंत्रीपुत्र ने दिया । सभी अति प्रसन्न हुए । चित्रगति और सुमित्र दोनो मित्र बने ।

वहा एक केवली भगवान पधारे । दोनो ने उपदेश सुनकर सम्यक्त्व के साथ बारह व्रत स्वीकार किए । अंत मे सुग्रीव ने केवली भगवान से पूछा—भद्रा भागकर कहा गई ?

केवली ने कहा—उसे रास्ते मे चोर मिले । चोरो ने उसे लूटा फिर किसी को बेच दिया । अत मे मरकर वह प्रथम नरक मे जाएगी, पश्चात् चंडालनी बनकर अनेक भव करेगी ।

सुग्रीव को वैराग्य हुआ । सुमित्र को राज्य सौपकर उसने दीक्षा ग्रहण की । सुमित्र ने कुछ हिस्सा पद्म को सौपा और सुख से राज करने लगा ।

एक दिन अनगसिह के पुत्र कमल ने सुमित्र की बहन का अपहरण किया । सुमित्र ने सहायता के लिए चित्रगति को बुलाया । बहन को लाने केलिए वह शिवमंदिर नगर गया । वहां उसने कमल को मार दिया ।

अनंग सिह के साथ उसका युद्ध हुआ । चित्रगति ने उसकी तलवार खीच ली ।

सुमित्र को बहन लाकर सौप दी । पश्चात् सुमित्र ने दीक्षा ग्रहण की । एक बार सुमित्र मुनि कायोत्सर्ग ध्यान मे खडे थे । उस समय सोतमाता का भाई पद्म ने आकर छाती मे तीर मारा । मुनि मरकर देवलोक मे गए । उसी समय पद्म को साप ने डंक मारा । वह मर कर सातमी नर्क मे गया ।

एक बार चित्रगति यात्रा केलिए सिद्धायतन मे गया । वहा रत्नवती के साथ अनगसिह विद्याधर भी आया था । उस समय ब्रह्मदेवलोक से आए सुमित्रदेव ने चित्रगति पर पुष्पवृष्टि की । चित्रगति को देखकर रत्नवती मोहित हो गई ।

यह देखकर अनंगसिह को रत्नवती के वर का निश्चय हुआ । सभी अपने स्थानो में गए ।

तत्पश्चात् एक बार रत्नवती का सबंध जोडने केलिए अनगसिह राजा ने सुरराजा के पास अपने आदमी को भेजा । दोनो का विवाह किया । मनोगति और चपलगति के साथ यात्रा की । कुछ समय बाद चित्रगति राजा हुआ । अंत मे पुरंदर नामक पुत्र को राज्य सौपकर दोनो भाई एवं रत्नवती के साथ चित्रगति ने दीक्षा ग्रहण की । समाधिमरण प्राप्त कर वे चारों महेन्द्र देवलोक मे देव हुए ।

पांचवां एवं छट्ठा भव अपराजित राजा व देव

पश्चिम महाविदेह मे पद्म नामक विजय मे सिंहपुर नामक नगर था । [illegible] राज्य करता था । प्रियदर्शना नामक उसकी रानी थी महेन्द्र देवलोक मे [illegible] उत्पन्न हुई ।

परिपूर्ण समय होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। पिता ने उसका नाम अपराजित रखा। उस समय मंत्री को भी पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा विमलबोध। दोनों बालक जब बडे हुए, दोनों में अपूर्व मैत्री भी हुई। मनोगति और चपलगति भी देवलोक से च्यवकर राजा के पुत्र हुए जिसका नाम रखा गया सूर और सोम।

एक बार अपराजित और विमलबोध दोनो मित्र घोड़े पर बैठे। बैठते ही घोडे भागने लगे और उन्हे जंगल में ले गए। वहा घोड़े मर गए। दोनों मित्र जंगल मे घूमने लगे।

इतने में एक चोर वहां आया और कहने लगा— मुझे बचाओ मुझे बचाओ। अपराजित और विमलबोधि ने उसे शरण दी। चोर के पीछे राजा के सैनिक आए। कुमार ने उन्हें पराजित किया। अत सुकोशल राजा स्वयं लड़ने केलिए आया किन्तु उसे देखकर पहचान गए कि यह मेरे मित्र हरिनंदी का पुत्र है। उसने अपराजित का सम्मान किया। अपने नगर ले गया और कनकमाला नामक पुत्री के साथ उसका विवाह किया।

एक दिन अपराजित कुमार विमलबोधि के साथ सुकौशल के वहां से चुपचाप निकल गया। रास्ते में जाते हुए उन्होंने आकाशमार्ग से अपहृत कर श्रीषेण विद्याधर के द्वारा ले जाती एवं रोती हुई रत्नमाला को देखा।

कुमार ने विद्याधर को घायल कर दिया और उसे छुड़वा लिया। विद्याधर दोनों का पराक्रम देखकर प्रसन्न हुआ। उसने अपने घाव पर औषधि लगाने को कहा। औषधि लगाने पर उसने अपराजित कुमार को घाव मिटाने की औषधि और मूल्यवान मणियां दी। विमलबोधि को वेश परिवर्तन की गुटिका दी।

उस समय रथनुपुर से रत्नमाला के पिता राजा अमृतसेन भी वहां पर आ पहुंचा। उसने रत्नमाला के साथ अपराजित कुमार का पाणिग्रहण कर दिया।

श्वसुर की अनुमति लेकर अपराजित कुमार मित्र के साथ आगे बढ़ने लगा। चलते हुए वे एक जंगल में पहुंचे। कुमार को प्यास लगी। विमल बोधि जल लेने केलिए गया। जल लेकर आया तो कुमार उसे वहां मिला नहीं। वह कुमार की खोज करने लगा। उसे वहां दो विद्याधर मिले। उन्होने उसे कहा—भानु नामक राजा की दो कन्यां कमलिनी और कुमुदिनी के साथ कुमार को विवाह के लिए राजा प्रार्थना कर रहा है, किन्तु तुम्हारे वियोग से दुःखी वह शादी नही कर रहा है। विमलबोधि को लेकर वे वहां गए। पश्चात् कुमार ने उनके साथ विवाह किया।

इसके पश्चात् कुमार मित्र के साथ श्री मंदिर नामक नगर में गया। वहां के सुप्रभ नामक राजा जो अति बीमार था, उसे कुमार ने औषधि से स्वस्थ किया। प्रसन्न राजा ने रंभा नामक अपनी कन्या के साथ उसकी शादी की।

वहां से निकलकर अपराजित कुमार मित्र के साथ कुंडपुर पहुंचा। वहां केवली भगवान देशना दे रहे थे। उसने उनकी वाणी सुनी। पश्चात् प्रश्न पूछा—प्रभो ! क्या हमे भी मोक्ष की प्राप्त होगी ?

केवली ने कहा—कुमार तुम आगामी समय में बाईसवे तीर्थकर अरिष्ट नेमि बनोगे। तुम्हारा मित्र विमलबोधि वरदत्त नामक तुम्हारा प्रथम गणधर होगा।

केवली के उत्तर से दोनों प्रसन्न हुए। फिर वे वहां से आगे चल पडे।

दोनो आनंदपुर नामक गांव पहुंचे। जितशत्रु नामक वहां राजा था। धारिणी नामक उसकी रानी थी। महेन्द्र देवलोक से च्यवकर रत्नवती की आत्मा धारिणी के गर्भ में पुत्री रूप मे उत्पन्न हुई। उसका नाम रखा गया प्रीतिमती।

वह सर्वकला और विद्या में पारंगत हुई। उसे अपनी बुद्धि पर गर्व था। उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे प्रश्नो का उत्तर देगा, मै उसी के साथ विवाह करूंगी।

राजा ने प्रीतिमती केलिए स्वयंवर रचा। देश विदेश के राजकुमार एवं विद्याधर राजा आए। अपराजित कुमार भी विद्याधर द्वारा दी गई गुटिका के द्वारा रूप बदला और सामान्य वेश मे स्वयवर मण्डप मे बैठ गया।

अनेक बुद्धिमान और वीर पराक्रमी राजा वहां बैठे हुए थे, किन्तु किसी मे राजकुमारी के प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता नही थी।

राजकुमारी प्रीतिमती प्रतिहारी के साथ हाथ में वरमाला लेकर स्वयंवर मण्डप में प्रविष्ट हुई। राजकुमारी के लावण्य को राजा निहारने लगे।

प्रीतिमती ने चार प्रश्न पूछे—गुरु कौन ? धर्म कौन सा है। मानव को क्या करना चाहिए ? एवं [illegible] क्या है ?

प्रश्नो को सुनकर सभी राजकुमार मौन रहे। कोई प्रश्न का प्रत्युत्तर दे नहीं सका। सहसा अपराजित कुमार खडा हुआ, उसने चारो प्रश्नों का उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिया— (१) तत्व का जानकार (२) जीवदया (३) संसार से मुक्ति (४) जीवात्माओं का हित करना।

प्रत्युत्तर से प्रसन्न होकर राजकुमारी ने सामान्य वेश में रहे हुए अपराजित कुमार के गले में वरमाला आरोपित कर दी। साधारण आदमी के गले में माला डालने से राजकुमारो को ईर्ष्या हुई। उन्हें [illegible] [illegible] अपमान महसूस हुआ।

[illegible] ने कहा—यदि इसी साधारण आदमी के साथ शादी करनी थी तो [illegible] क्यों [illegible]

[illegible] राजा उसके साथ युद्ध करने को तैयार हो गए। [illegible]

अपराजित कुमार ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि कोई राजा उसके सामने टिक नही पाया। उसने अकेले ने सभी राजाओं को परास्त कर दिया। उस समय सोमप्रभ राजा ने कुमार को पहचान लिया कि यह तो हरिनंदि राजा का पुत्र है। अपराजित कुमार ने भी अपना स्वरूप प्रकट किया। जितशत्रु राजा ने धूमधाम से प्रीतिमती के साथ कुमार की शादी की।

अपराजित कुमार के वियोग से उसके माता-पिता भी अति दुःखी थे। उनके दुःख के समाचार सुनकर कुमार शीघ्र ही अपने नगर की ओर विमलबोधि के साथ गया। माता-पिता को मिलने पर उन्हे अपार आनंद हुआ।

कुछ दिनो के बाद हरिनन्दी ने अपराजित को राज्य सौप दिया। स्वयं दीक्षा लेकर आत्मा साधना मे लग गए। कर्मो का क्षय कर परमपद प्राप्त किया।

राजा अपराजित न्याय नीति से प्रजा का पालन करने लगा। सुखपूर्वक जीवन यापन करने लगा।

एक बार वह घूमने केलिए उद्यान मे गया। वहां एक सार्थवाह का युवा पुत्र भी क्रीडा कर रहा था। उसका शरीर भी सुंदर था।

दूसरे दिन राजा ने उसकी मौत के समाचार सुने अकस्मात् बीमार पड़ा और चल बसा।

सहसा युवक की मौत ने राजा को जगा दिया। धन, यौवन एवं नारी मौत से बचाने मे सभी असमर्थ है। राजा को वैराग्य हुआ। उसने प्रीतिमति रानी विमलबोधि मत्री सूर और सोम नामक दो भाईयों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

कठोर साधना की समाधिमरण प्राप्त कर चारो ग्यारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए।

सातवां एवं आठमा भव

शंखराजा और अपराजित विमान में देव

इस जबूद्वीप के हस्तिनापुर नगर में श्रीषेण नामक राजा था। उसे श्रीमति नामक रानी थी। आरण देवलोक से च्यवकर अपराजित कुमार की आत्मा रानी के गर्भ में उत्पन्न हुई। रानी ने स्वप्न मे शंख देखा।

परिपूर्ण समय होने पर रानी श्रीमती ने पुत्र को जन्म दिया। राजा ने पुत्र का नाम शंख रखा।

श्रीषेण राजा के मंत्री सुबुद्धि के वहां विमलबोधि का पुत्र रूप में जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया मतिप्रभ।

राजपूत्र और मंत्रीपुत्र की पूर्वभव की तरह यहां भी मैत्री हुई।

एक बार नगर जनों ने राजा से शिकायत की कि राजन्! अपने राज्य मे पल्लीपति लूट मचाता है।

पहाड मे वह छिप जाता है और वहां आराम से रहता है। हम उससे दुःखी हो गए है। आप हमारी रक्षा करें। सभा में बैठे हुए शंख कुमार ने उसे गिरफ्तार करने जाने केलिए अनुमति मांगी। पिता ने भी इसकेलिए अनुमति प्रदान की।

राजकुमार मंत्रीपुत्र के साथ पहाड़ के किले में गया। पल्लीपति को उन्होंने पकड लिया। उसने राजकुमार की शरण ली। नगर की ओर लौटते हुए राजकुमार ने रात्रि विश्राम हेतु एक स्थान पर पडाव डाला। चारों ओर भयानक वन था। सेना गहन निद्रा में थी।

रात्रि के शांत वातावरण में उसे एक नारी का करूण रूदन सुनाई दिया। करूणामय हृदय वाले राजकुमार को रहा नही गया। वह शीघ्र खड़ा होकर रूदन की दिशा मे चल पड़ा। वहां जाकर देखा- अधेड आयु की एक स्त्री आंखों से आंसू बहा रही है। विलाप कर रही है।

कुमार ने उसे पूछा—तुम क्यो रो रही हो? उसने कहा—राजन्! चंपापुरी के राजा जितारी की पुत्री यशोमती है और मैं उसकी धायमाता हूं। यौवन वय प्राप्त होने पर उसने हस्तिनापुर के राजा श्रीषेण के पुत्र शंख कुमार के गुणो की प्रशंसा उसने सुनी। उसने उसी राजकुमार से विवाह करने का संकल्प कर लिया है।

जितारी राजा ने यह बात स्वीकार की। हस्तिनापुर नगर में श्रीषेण राजा के पास विवाह निश्चित करने केलिए आदमी को भेजा। इधर राजकुमारी यशोमती के रूप एवं गुणो में आसक्त मणिशेखर विद्याधर ने राजकुमारी का अपहरण किया। मै राजकुमारी के साथ चिपट कर यहां तक आ गई हूं। उसने मुझे यहां गिरा दिया है और राजकुमारी को ले गया है। मेरे बिना बिचारी का क्या होगा? उसके वियोग के दुःख मे मै रो रही हूं।

शंखकुमार ने कहा—माता! तुम धीरज रखो। मै उसकी खोज में जाता हूं। वह जहां भी होगा उसे पकड कर कुमारी को छुडा कर तुम्हारे पास लाता हूं।

कुमार वहा से चला। विशाल पर्वत के शिखर पर विद्याधर मणिशेखर को पकडा। शंख कुमार ने उसे ललकारा। दोनो मे भारी युद्ध हुआ। शख कुमार ने मणिशेखर को पराजित कर दिया।

मणिशेखर ने क्षमा मांगी। उसने कहा—तुम्हारी वीरता से मै प्रसन्न हूं। तुम मेरे पर उपकार करो और मेरे साथ वैताढ्य पर्वत पर चलो। वहां तुम्हे शाश्वत् जिन मंदिरो के दर्शन होंगे। अनेक विद्याओं की [illegible] होगी।

कुमार ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। दो विद्याधरो को भेजकर सेना को हस्तिनापुर [illegible] [illegible] को अपने पास बुला लिया। तत्पश्चात् कुमार यशोमती धायमाता एवं मणिशेखर के साथ [illegible] पर्वत के मंदिरो के दर्शन किए और मणिशेखर के नगर गया।

वहां उसे अनेक विधाएं प्राप्त हुई। अनेक विद्याधरों ने अपनी पुत्रियों को स्वीकार करने का आग्रह किया। किन्तु उसने यशोमति के साथ शादी किए बिना अन्य से विवाह करने का इनकार कर दिया।

मणिशेखर आदि विद्याधरों की पुत्रियों के साथ एवं यशोमती को लेकर शंखकुमार चपा नगरी मे गया। यशोमती के पिता राजा जितारी को अति आनंद हुआ। उसने शंख कुमार के साथ यशोमती का विवाह धूमधाम से किया। तत्पश्चात् शंखकुमार ने अनेक विद्याधर की कन्याओ के साथ विवाह किया।

श्री वासुपूज्य भगवान के मंदिरों की यात्रा की। कुछ समय पश्चात् यशोमती आदि पत्नियो के साथ शंखकुमार हस्तिनापुर आया।

आरण देवलोक से च्यवकर पूर्वभव के भाई शूर और सोम क्रम से यशोधर एवं गुणधर नामक लघु बंधु हुए। कुछ समय पश्चात् राजा श्रीषेण ने शंख कुमार को राज्य सौप दिया। दीक्षा लेकर वे कठोर आत्मसाधना करने लगे। धाती कर्मो का क्षय होने पर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। विहार करते हुए वे हस्तिनापुर में पधारे।

शंखकुमार परिवार के साथ वंदन करने केलिए आया। वंदन कर उसने पूछा—प्रभो! मुझे यशोमती पर इतना अधिक अनुराग क्यों है?

केवली ने कहा—राजन् यशोमती के साथ तुम्हारे सात जन्मों के संबंध है। सात जन्मो का सबंध विस्तार से बताया और कहा आगामी भव में तुम नेमिनाथ नामक बाईसवें तीर्थकर बनोगे एवं यह यशोमती राजीमती होगी।

केवली की वाणी सुनकर शंख राजा को वैराग्य हुआ। पुत्र पुंडरिक को राज सौप दिया। पश्चात् यशोमती के साथ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उग्र आत्मसाधना करने लगे। वीशस्थानक तप की आराधना से उन्होंने तीर्थकर नामकर्म उपार्जन किया। अंत में समाधिमरण प्राप्त कर शंखमुनि और यशोमती अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे देव हुए।

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में शौर्यपुर नामक नगर था। वहां समुद्र विजय नामक राजा था। उसे शिवादेवी नामक रानी थी। कार्तिक वदी द्वादशी के दिन चित्रा नक्षत्र के योग मे अपराजित विमानसे तेत्तीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर शंख राजा की आत्मा शिवादेवी माता के गर्भ मे उत्पन्न हुई।

परिपूर्ण समय होने पर श्रावण मास की शुक्ला पंचमी के दिन, मध्यरात्रि मे चित्रा नक्षत्र और कन्या राशि में जब चन्द्र था, उस समय शिवादेवी माता ने अंजन जैसी कांति वाले, शंख लछन चिन्ह युक्त बावीसवें तीर्थकर पुत्र को जन्म दिया।

प्रभु जब गर्भ मे थे तब माता ने चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् रिष्ट रत्नमय चक्रधारा देखी थी। अतः पिता ने उनका नाम अरिष्ट नेमि रखा। बाल्यकाल प्रभु का सुखमय यापन होने लगा।

क्रम से प्रभु युवावस्था को प्राप्त हुए। माता-पिता आदि के प्रार्थना करने पर भी प्रभु ने शादी नही की। विवाह के लिए हरदम वे मना करते रहे।

यशोमती की आत्मा अपराजित विमान से च्यवकर मथुरा नगर में उग्रसेन राजा की धारिणी नामक रानी के गर्भ मे उत्पन्न हुई। पूर्ण समय होने पर उसका जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया राजिमती। अनुक्रम से वह युवावस्था को प्राप्त हुई। वह कामदेव की रति के समान रूपवती एवं सौन्दर्यवती थी। राजिमती के साथ विवाह केलिए श्री कृष्ण की रुक्मणी आदि रानियों ने प्रभु से आग्रह किया। प्रभु उस समय मौन रहे। अतः रानियो ने घोषणा की कि प्रभु विवाह केलिए मान गए है। यह सुनकर श्री कृष्ण ने विवाह की तैयारी करवाई। श्री नेमिनाथ जान के साथ रथ में बैठ कर विवाह के लिए जाने लगे।

राजीमती के नगर तक पहुंच गए। नगर के बाहर हजारों पशुओं की आर्तनाद प्रभु ने सुनी। खरगोश, हरिण, सारथि से जाना कि ये अपने विवाह के निमित्त मांस भोज केलिए इन्हे लाया गया है। दयासागर प्रभु ने इन्हे बंधन से मुक्त करवा दिया। सारथि को रथ वापस मोड़ने की आज्ञा दी। राजीमती का त्यागकर वे तोरणद्वार से मुड़ गए।

उन्होने राज्यपद भी ग्रहण नही किया। उत्तर कुरु नामक शिबिका मे बैठकर उज्जयंत (गिरनार) पर्वत पर सहस्राम्र नामक वन मे श्रावण मास की शुक्ला अष्टमी के दिन चित्रा नक्षत्र मे जब चन्द्र का योग था। उस दिन के पूर्व भाग मे एक हजार राजाओ के साथ बेले की तपस्या करके श्री नेमिनाथजी ने दीक्षा ग्रहण की।

वरदत्त राजा के घर प्रभु ने बेले का पारना किया। चौवन दिन अन्यत्र विहार कर प्रभु पुन· गिरनार गिरि के सहस्राम्र वन मे पधारे। वहां वेतस वृक्ष के नीचे ध्यान प्रतिमा मे बिराजित श्री नेमिनाथ प्रभु को आसो मास की अमावस्या के दिन चित्रा नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था। उस समय केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उस दिन प्रभु को (अट्ठम) तेले का तप था।

देवो ने समवसरण की रचना की। भगवान ने भव्यजीवो के कल्याण केलिए उपदेश दिया। श्री कृष्ण ने राजीमती के राग का कारण पूछा—प्रभु ने धनवती से लेकर आठ भव तक के संबंध बताए। प्रभु [illegible] अनेक लोगो ने दीक्षा ली। वरदत्त कुमार ने दो हजार कुमारो के साथ दीक्षा ग्रहण की। पूर्वभव के [illegible] विमलबोधि ने प्रभु के पास संयम स्वीकार किया। वरदत्त आदि भगवान के ग्यारह गणधर हुए।

भगवान नेमिनाथ के शासन मे तीन मुखवाला श्यामवर्णवाला, मनुष्य वाहन वाला गोमेध नामक [illegible] शेर के वाहन वाली एवं शेर के स्वर्णमय वाहन वाली अंबिका नामक उनकी शासन देवी थी। [illegible] हजार उनके साधु थे। चालीस हजार साध्वियां थी। चार सौ चौदह पूर्वधर थे। पन्द्रह सौ अवधि [illegible] पन्द्रह सौ वैक्रिय लब्धिवाले, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, एक हजार मनपर्यवज्ञानी [illegible] मुनि थे।

समुद्र विजय, महानेमि, सत्यनेमि, द्रढनेमि, सुनेमि, रहनेमि, जयसेन, महीजय, तेजसेन एवं नय आदि दश दशार्ह एवं उग्रसेन, वासुदेव बलराम आदि प्रभु के एक लाख उन हत्तर हजार श्रावक थे। शिवादेवी रोहिणी, देवकी एवं रुक्मिणी आदि श्राविकाएं तीन लाख उनचालीश हजार थी। राजीमती भी दीक्षा लेकर मोक्ष में गई।

आषाढ शुक्ला अष्टमी के दिन चित्रा नक्षत्र में संध्या समय गिरनार पर्वत पर पांच सौ छत्तीस मुनियों के साथ एक मास का अनशन कर श्री नेमिनाथ भगवान मोक्ष में पधारे

तीन सौ वर्ष प्रभु कुमार अवस्था में रहे, सात सौ वर्ष छद्मस्थ एवं केवलीपर्याय में रहे, इस प्रकार नेमिनाथ भगवान की संपूर्ण आयु एक हजार वर्ष की थी।

श्री नेमिनाथ स्तवन

नेमिनाथ भगवान रे, मोहे पार उतारो।
पार उतारो अर्ज अवधारो ॥नेमिनाथ० ॥अंचली ॥

बावीसमा प्रभु नेन जी रे,
करुणा के हो निधान रे ॥मोहे ॥१ ॥

तोरण से रथ फेर लिया रे,
पशुओं की दया जान रे ॥मोहे ॥२ ॥

ठाकुर अब तो चाकर को रे,
तारो प्रभु गुणवान रे ॥मोहे ॥३ ॥

वीतराग प्रभु आप भये रे,
भक्ति भक्त प्रमाण रे ॥मोहे ॥४ ॥

शीत निवारण आग को रे,
सेवे प्राणी आन रे ॥मोहे ॥५ ॥

तिम सेवे भवि आप को रे,
परमारथ को पिछान रे ॥मोहे ॥६ ॥

हंस कांति प्रभु निर्मल दर्शन,
पायो जालना पुरान रे ॥मोहे ॥७ ॥

सात आठ नव एक के साले,
पूनम फाल्गुन मान रे ॥मोहे ॥८ ॥

आतम लक्ष्मी नाथ से रे,
वल्लभ हर्ष अपार रे ॥मोहे ॥९ ॥

स्तुति

लुभावे ललना अपने ललित से, त्रिलोक के नाथ को,
डरावे गगनभेदी हवा की लहरें, क्या स्वर्ग के पहाड़ को,
क्या स्वार्थ के वशीभूत पशु की, आत्म पीड़ा ना सुने ?
नेमि प्रभु के भजन से, क्या-क्या जगत मे ना मिले,

प्रार्थना

राजुल वर नारी, रूप से रतिहारी,
मुक्त बने प्रभु तुम, बाल्य से ब्रह्मचारी
पशु को उभारी, हुआ चरित्रधारी
केवल श्री सारी, पामीया घाती वारी ।

परिचय

१ माता का नाम	शिवारानी
२ पिता का नाम	समुद्र विजय राजा
३ च्यवन कल्याणक	कार्तिक कृष्णा-१२, शौरीपुर
४ जन्म कल्याणक	श्रावण शुक्ला-५
५ दीक्षा कल्याणक	श्रावण शुक्ला-६
६ केवलज्ञान कल्याणक	आश्विन कृष्णा ०) गिरनार (सहस्राम्रवन)
७ निर्वाण कल्याणक	अषाढ शुक्ला-८, गिरनार
८ गणधर	सख्या ११ वरदत्त
९ साधु	सख्या १८ हजार प्रमुख वरदत्त
१० साध्वी	सख्या ४० हजार प्रमुख यक्षदत्त
११ श्रावक	संख्या १ लाख ६९ हजार प्रमुख नद
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख ३६ हजार प्रमुखा महासुव्रता
१३ ज्ञानवृक्ष	वेतस
१४ यक्ष (अधिष्ठायक देव)	गोमेध
१५ यक्षिणि अधिष्ठायिका देवी	अबिका
१६ आयुष्य	१ हजार वर्ष
१७ लछन (चिन्ह-Mark)	शख
१८ च्यवन किस देवलोक से	अपराजित अनुत्तर
१९ तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन	सुप्रतिष्ठ के भव मे
२० पूर्वभव कितने ?	७
२१ छद्मस्थ अवस्था	५४ दिन
२२ गृहस्थ अवस्था	३०० वर्ष
२३ शरीर वर्ण (आभा)	श्याम
२४ दीक्षा दिन की शिबिका का नाम	धारवती
२५ नाम अर्थ	गर्भ के समय मा ने अरिष्ट रत्नमय चक्र देखा
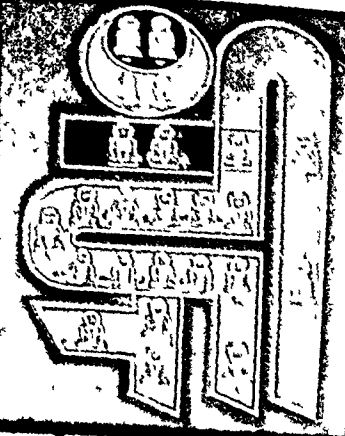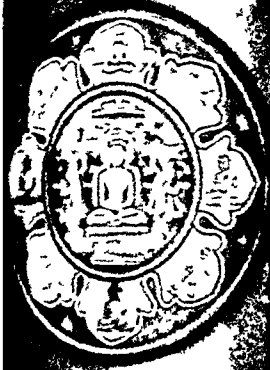
॥ श्री पार्श्वनाथ ॥
॥ श्री पार्श्वनाथ ॥
कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
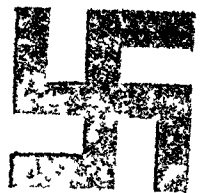
श्री पार्श्वनाथ जिन चैत्यवंदन

भगवान श्री पार्श्वनाथ

चैत्यवंदन—आश पूरे प्रभु पासजी, त्रोडे भव पास,
वामा माता जनमीया, अहिलछन जास ॥१ ॥

अश्वसेन सुत सुखकरु, नवहाथनी काया,
काशी देश वाराणसी, पुण्ये प्रभु आया ॥२ ॥

अेक सो वरस नुं आउखुं, अे, पाली पास कुमार.
पद्म कहे मुक्ते गया, नमता सुख निरधार ॥३ ॥
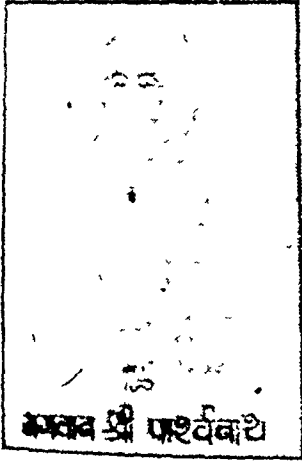
श्री प्रभु पार्श्वनाथ जीवन

अनेको द्वीप और समुद्र के बीच यह जंबू द्वीप है । इसी द्वीप मे परम पावन पुण्यमय भारत भूमि है । महान भरत क्षेत्र है, जो अनेको ऋषि, मुनियो की, तीर्थकरो की जन्मस्थली रही है । जिससे इस धरा की रज एव कण-कण पावन है ।

सचमुच यह धरा रत्नों की खान है, जहां महान आत्माओ ने जन्म लेकर इसे कृतार्थ किया है । इसका गौरव बढाया है । अतः यह कहना कि यह धरा रत्नप्रसूता है अतिशयोक्ति नही ।

इसी भारत मे अत्यंत रमणीय दर्शनीय, एवं प्रशंसनीय मदिरो से शोभायमान विशाल पोतनपुर नामक नगर है ।

सूर्य सा कांतिमान वहा अरविन्द नामक राजा था । अद्भुत सौंदर्य एवं रुपधारिणी रतिसुंदरी नामक धर्मपत्नी थी । बुद्धिनिधान महामंत्री मतिसागर राजा का प्रधान था ।

उस नगर मे विश्वभूति नामक ब्राह्मण पुरोहित था, जो राजा का परम प्रीति पात्र था । [illegible] सम्पन्न उसे अनुरुद्धा नामक पत्नी थी । उन्हें रुपवान एवं गुणवान दो पुत्र प्राप्त हुए । एक का नाम कमठ [illegible] दूसरे का मरुभूति रखा गया । यह परिवार जन्मना ब्राह्मण था, किन्तु फिर भी जैन धर्म मे उनकी अनन्य [illegible] थी । वे जैनधर्म का परिपालन करते थे ।

श्री संभूतमुनि नामक जैन साधु के समागम से जैनधर्म के स्वरूप का उन्हे बोध [illegible] [illegible] ज्ञान मे दोनो भाई परिपूर्ण हुए । प्रभुपासना एव धर्माराधना मे वे [illegible]

[illegible] वे युवावस्था को प्राप्त हुए तो उन दोनो का दो कुलिन ब्राह्मण [illegible]

[illegible] की पत्नी का वरुणा और मरुभूति की पत्नी का नाम [illegible]

गुणवती थी।

समय की धारा अबाध गति से अस्खलित रुप से प्रवाहित है।

उसकी गति में स्थिति नहीं है, वह निरंतर प्रवहमान है, जिसमें कोई अवरोधक एवं बाधा नही।

काल न किसी का हुआ न होने वाला है, न होगा। समय की धारा में एक दिन विश्वभूति और अनुरुद्धा भी बह गये।

विश्वभूति को मौत की पदचाप सुनाई दी। आयु की समाप्ति जान उन्होंने गुरुमहाराज से पापों की आलोचना की, सर्वजीवो को खमाया और अनशन ग्रहण किया। पंचपरमेष्ठि में लीन हो, समाधिमरण को प्राप्त हुए। उन्होंने सौधर्म देवलोक में देवगति प्राप्त की। पति की मौत से अनुरुद्धा को भी आघात लगा। संसार की असारता एवं नश्वरता को उसने जाना। उसने भी अपने तन व मन को तप-जप में, धर्माराधना में लगाया और वह भी सद्गति को प्राप्त हुई।

माता पिता की मौत से दोनों भ्राता अत्यंत व्यथित हो गये। दुःख व संताप में डूब गये। शोक संताप में जीवन यापन होने लगा।

एक दिन उन्हें हरिचंद्र मुनि नामक गुरु भगवंत का समागम हुआ। गुरु महाराज ने उन्हे सद्बोध दिया। गुरुभगवंत ने कहा—जहां जन्म है वहां मृत्यु भी है, और जहां मृत्यु वहां जन्म भी निश्चित है।

मृत्यु की मौत करने वाला मौत पर विजय पा लेता है, फिर वह कभी मौत नही पाता, क्योंकि वह उससे परे हो जाता है। मुक्त हो जाता है। अनन्त बार तुम्हें मौत ने परास्त किया है। बार-बार उससे तुम पराजित हुए। अब ऐसा धर्म पुरुषार्थ करो कि मौत की मौत हो जाय। मृत्यु अवश्यंभावी है, अत माता-पिता की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं।

विनश्वर संसार में धर्म ही रक्षणहार है। देव गुरु एवं धर्म की शरण को पाने वाला परमपद को पा लेता है। सभी दुःखों से वह मुक्त हो जाता है।

गुरु के इस प्रतिबोध से मरुभूति के जीवन में अपूर्व परिवर्तन आया। उसे संसार की असारता का बोध हो गया। वह वैराग्य मार्ग की ओर बढ़ने लगा। संसार की प्रवृत्तियों से मुंह मोड़ने लगा। गुरुदेव से उसने बारह व्रत भी अंगीकार कर लिए। अपनी युवा पत्नी से भी उसे विरक्ति हो गई। संयम प्राप्ति के लिए वह लालायित हो उठा। संयम के विचारों मे वह रमण करने लगा। उसके लिए उसकी भावना प्रबल होने लगी।

वह सोचता है—अपूर्व एवो क्यारे क्यारे थइशुं बाहयाभ्यंतर निर्ग्रथ जो, सर्व संबंधना बंधंन छेदीने, विचरशुं महत पुरुष ने पंथजो, वह धन्य घड़ी वह धन्य दिन कब आयेगा, जब मै भगवती दीक्षा अंगीकार करुंगा।

गृहवास में, संसार में रहते हुए भी वीतराग परमात्मा के सच्चे अनुयायी में, श्रावक व श्राविका मे दीक्षा की भावना अवश्य होनी चाहिए। प्रातः काल भावना भी भानी चाहिए कि जीवन मे संयम का उदय हो।

ज्येष्ठ भ्राता कमठ को गुरु के बोध का लेशमात्र भी असर नही हुआ। अनीति और अनाचार के पथ पर उसके कदम बढने लगे। धन का मद एवं कुमित्रों की संगत से उसका अधःपतन हुआ। जुआ मांस मदिरा आदि सातों व्यसनों का वह सेवन करने लगा। सदाचारियों की धर्मियो की वह निदा करने लगा। दुष्कर्मो की ओर वह बढने लगा। एक दिन सुंदर वस्त्राभूषणो से सज्जित मरुभूति की पत्नी वसुधरा को कमठ ने देखा।

वह उस पर लुब्ध हो गया। उसने उसे वश में करने का निश्चय किया।

वसुंधरा मे रूप का सौंदर्य था परन्तु गुणो का गौरव न था, क्योकि उसमें धार्मिक संस्कारो का अभाव था। मरुभूति का व्यवहार भी उसके साथ सामान्य रुप में था। वह उदासीन था। स्नेहपूर्ण दृष्टि से वह उसे देखता भी नही था।

एक दिन वसुंधरा गृह कार्य कर रही थी। कमठ उससे विलासपूर्ण एवं हास्य युक्त वचनो से बोलने लगा। वह उसके रूप की प्रशंसा करने लगा। उसके असभ्य एवं लोक विरुद्ध वचनो को सुनकर वह आश्चर्य मे गिर गई अनिच्छा के बावजूद वह उसके जाल मे आ गई।

उसने कहा—तेरा स्वामी तेरी परवाह कहां करता है? मैं तेरा दास बनकर रहूंगा। उसकी बातों मे आकर उसने अपनी मर्यादा छोड दी। वह अनाचार मे प्रवृत हो गई।

कमठ की पत्नी वरुणा को यह अनुचित कर्म सहन न हुआ। वह ईर्ष्या की आग मे जलने लगी। एक दिन उसने अवसर देखकर मरुभूति को दोनो के दुष्कृत्य की घटना बताई।

मरुभूति भद्रपुरुष था, उसे इस बात पर विश्वास नही हुआ। किन्तु नगर, पडोस एवं गृहसेवकों की चर्चा मे, आलोचना से उसे संदेह हुआ। वह सोचने लगा क्या यह बात सत्य होगी? कर्म की गति को कौन जान सकता है? कहानी की सच्चाई ज्ञात करने के लिए परीक्षा का उपाय सोचा।

कुछ दिन पश्चात एक दिन मरुभूति ने अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहा—मैं व्यापार के लिए [illegible] जा रहा हू। पांच छ दिन पश्चात संभवत. आगमन हो। यह जानकर कमठ को [illegible] हुआ।

मरुभूति समीपवर्ती गाव मे चला गया। वहां जाकर उसने वेश परिवर्तन किया [illegible] धारण किया। वह बाबा बन गया।

दूसरे दिन वह अपने गाव आया। स्वयं के घर आकर [illegible] भी उसे जान नही पाया कि यह वेशधारी मरुभूति [illegible]

मरुभूति की समता

सो जयइ जिणो, जस्स सिरे सोहइ फणि ।

प्मकडयसत्व पायडियसत्व, जीवाईतत्त संखं व दाविता ।

पूर्ण वेश परिवर्तन कर वह बाबा के वेश मे घर में प्रांगण में आकर खडा हो गया। उसे कोई पहचान न पाया । उस के रूप रंग को मुखाकृति को कोई पहचान न पाया ।

कमठ ने पूछा—"आपका पावन पदार्पण कहां से हुआ है ।" कमठ ने बाबा जी को सादर समान से पूछा । बाबाजी ने कहा—"मन में तीर्थो की यात्रा का संकल्प था । वह संकल्प, वह भावना पूर्ण हो गई। अनेकों तीर्थो की यात्राएं संपन्न कर, दीर्घ अवधिकाल के पश्चात् लौट रहा हूं ।"

यात्रा के लम्बे सफर से बुरी तरह थक गया हूं । परिश्रान्त हूं । पांवो ने जवाब दे दिया है । दो तीन दिन पूर्ण विश्राम चाहता हूं । इस नगर मे मै अनजान हूं, अपरिचित हूं । यदि दो तीन दिन आपके मकान मे आश्रय मिल जायें, रहने की जगह मिल जाये तो बड़ा ही धर्म होगा । पुण्य होगा । भारतीय सस्कृति मे हमेशा ही संतों का आदर सत्कार रहा है । अतः बाबाजी ने कहा "इतनी व्यवस्था आप अवश्य करे ।"

कमठ ने मकान के एक हिस्से के कमरे मे बाबाजी के लिए रुकने की व्यवस्था कर दी । कमठ भी उसी कमरे के आगे से मकान मे प्रवेश करता था । बाबाजी ने कमठ और वसुंधरा का हीन चरित्र अपनी आंखो से देखा ।

मरुभूति दो दिन पश्चात् वहां से निकलकर उस गांव में आ गया, और अपना मूल वेश धारण कर लिया । उसका संदेह सत्य निकला । उसे सच्चाई का पता लग गया । दोनो के प्रति मन आक्रोश एव घृणा से भर गया । मन में ग्लानि हो गई । वह प्रतिशोध की आग मे जलने लगा । मरुभूति अब मरुभूति न रहा, शांति का देवता मरुभूति, आग की ज्वाला बन गया ।

संयमी व तपस्वी मरुभूति समता रहित हो गया । वह विषमता मे आ गया । उसके मन का सतुलन बिगड़ गया । मनः शांति भंग हो गई । आत्म रमणता रूप समता भी गवा दी ।

मन ही मन ज्येष्ठ भ्राता को कठोर दंड, सख्त सजा दिलाने का संकल्प किया । दूसरे दिन मरुभूति ने राज्यसभा मे राजा अरविन्द के समक्ष शिकायत की । फरियाद की । राजा ने साक्ष्य एव प्रमाण जुटाए। खोजबीन करने पर कमठ का अपराध प्रमाणित हुआ । कमठ के दुष्कृत्य प्रमाणित होने पर राजा ने कमठ को सख्त सजा का आदेश दिया । उसके नाक कान छेद दिए गए । कालिमा मुंह पर लगाई गई व गधे पर बिठाकर उसे राज्य से निष्कासित कर दिया गया । देश निकाला दे दिया गया ।

इस घोर अपमान से कमठ क्रोधायमान हो गया । मन ही मन वह सोचने लगा—लघुभ्राता ने मेरे किए उपकार भुला दिए । मुझे प्रताडित एवं अपमानित करवाया ।

क्रोध में जलता हुआ भाई की हत्या करने, बैर का बदला लेने के विचारो मे वह चलता ही जा रहा था।

क्रोध प्रत्यक्ष रूप से मानसिक शांति भंग करता है हृदय को जलाता है। व्यक्तिगत व पारिवारिक शांति को वह हर लेता है। तन, मन एवं वचन की शक्ति का वह ह्रास करता है।

क्रोधावेश में व्यक्ति को सार-असार का, भाषा के प्रयोग का विवेक नही रहता। कमठ की भी यही स्थिति थी।

क्रोधावेश मे चलते-चलते वह एक भयंकर जंगल मे पहुंच गया। उस जंगल मे, वन मे एक ज्वलनशर्मा नामक योगी का तपोवन था, आश्रम था। उसने योगी को श्रद्धा से प्रणाम किया, अपना मस्तक झुकाया एवं एक ओर उदास हो बैठ गया। योगी ने पूछा—तू कौन है? कहां से आया है, और किधर जाना है। तब उसने अपनी सत्य बात छुपाई और मनकल्पित बाते बताई। भाई का दोष निकाला, उसके द्वारा अपमानित होने की बात कही। सारा दोष भाई पर मढ़ दिया। योगी को आश्रय देने की प्रार्थना की।

योगी ने उसे निराश्रित एवं दुःखी जान अपने आश्रम मे स्थान दिया। आश्रय दिया। योगी से उसने ससार का स्वरूप जाना। आत्मा एवं परमात्मा का उसे बोध हुआ।

कुछ समय पश्चात् कमठ ने तापसी दीक्षा अंगीकार की। संन्यासी तापस बनकर वह कठोर तप करने लगा। महीने-महीने के व्रत करने लगा। उपवास एवं तप ही उसके जीवन का लक्ष्य बन गया। उपासना जीवन का अंग बन गई। तप साधनामय जीवन वह यापन करने लगा। तप से उसकी काया सूखकर कांटे जैसी बन गई। किन्तु क्रोध का विकार न मिटा। मन के एक कौनेमें क्रोध रूपी नाग जागृत था। वह गया नही था। अवसर व निमित्त मिलते ही वह जागृत हो जाता है।

समतामय तप ही सार्थक है। कल्याणकारी है, अन्यथा क्रोध सहित तप निरर्थक हो जाता है। क्रोध की चिंगारी तप फल को भस्म कर देती है।

तपस्वी किन्तु क्रोधायमान ज्येष्ठ भ्राता के पास लघु भाई मरुभूति जाना है उसके [illegible] पश्चाताप है कि मैंने भाई को विपत्ति एवं महान् सकट मे डाल दिया है। वह पश्चाताप की [illegible] मन को निर्मल कर रहा है।

मैंने व्यर्थ भाई की अवहेलना कराई। उसका नगर मे घोर अपमान कराया, [illegible] अपयश का भागी बनना पडा। मै आराधक के बदले विराधक बन गया। [illegible] यह स्थिति न होती। मुझ व्रतधारी को संयम रखना [illegible] क्रोध से [illegible] कर्म का बंध किया है।

अरे ! मैने अपने पूर्वज परिवार एवं धर्म को कलंकित किया है, मैंने अत्यन्त निन्दनीय घृणित कर्म किया है । वह सोचता है—मैं भाई के पास जाऊं और क्षमा मांगू, भाई को ससम्मान पुनः घर ले जाऊं तभी मुझे आत्म शान्ति होगी ।

पश्चाताप से मन बदला । जीवन मे अपूर्व मोड आया । मरुभूति कमठ के पास तपोवन में जाता है । जैसे ही वह ज्येष्ठ भ्राता के पास पहुंचता है और भाई के पावों में गिर जाता है । नयनो से आसुओ की धारा बहने लगती है ।

वह भाई से क्षमा मांगता है, किन्तु कमठ क्षमा प्रदान न कर भाई को मौत के घाट उतार देता है। मरुभूति की हत्या कर देता है ।

पश्चाताप की गंगा मे डुबकी लगाने वाला पापी भी पावन बन जाता है । शुद्धात्मा बन जाता है ।

ज्येष्ठ भ्राता के प्रति किए अपराध से मरूभूति का मन ग्लानि से भर जाता है । कृत अपराध की वह क्षमा मांगता है । वह ज्येष्ठ भाई के चरणों मे गिर जाता है । क्षमा याचना करता है ।

किन्तु कमठ पूर्व अपमानित दिनो की स्मृति से रुष्टमान हो जाता है । क्रोध की ज्वाला उग्र रूप से प्रकट होती है । फलस्वरूप एक अनर्थकारी घटना घट जाती है.

कमठ क्रोधावेश में भान भूल गया । समीप ही पड़ी उसने विशाल पत्थर की शिला उठाई, और मरूभूति के मस्तष्क पर जोर से फैकी ।

मरूभूति का मस्तक फट गया । मस्तक एवं मुख से लहू की धारा बहने लगी । वह जमीन पर गिर गया असह्य वेदना से वह कराहने लगा । मृत्यु की अंतिम घड़ी में समाधि न रह पाई । धर्मध्यान न रह पाया । "अन्त मति सो गति" अनुसार उसने मानव जीवन व्यर्थ गंवा दिया ।

अशुभ ध्यान में मरकर वह तिर्यच योनि मे पशुगति मे हाथी बना । उसने हाथी का रूप पाया ।

अंतिम घड़ी मे अरिहन्त प्रभु की शरण, गुरु एवं धर्म की शरण ही तारक है । भवसागर मे नौका है । परम आलंबन है । समाधि से मौत पाने वाली आत्मा ही सद्गति की भागी बनती है । समाधि हेतु सतत जागरुकता, देव व गुरू की निरन्तर उपासना अत्यन्त अनिवार्य है अन्यथा मौत का पंजा न जाने कहा ले जाएगा । मौत किसी की परवाह नही करती, वह कर्म का प्रतिफल दे देती है । मौत ने पार्श्वनाथ प्रभु की आत्मा को भी दुर्गति में डाल दिया । अन्तिम समय के अशुभ ध्यान से वे कहां पहुंच गए ।

मरूभूति की शिला के द्वारा हत्या करने पर आश्रम के योगी एवं उनके गुरु कमठ का तिरस्कार करने लगे । उसे उपालम्भ देने लगे, वे कहने लगे—"भाई की हत्या करने वाले तेरे जैसे महापापी को इस धरा पर जीने का अधिकार नही । तेरे से हमारा तपोवन भी कलंकित बन गया है । दूषित बन गया है । पावन तपोवन मे रहने की तेरी अब पात्रता नही है ।"

उसे आश्रम से अपमानित कर निकाल दिया जाता है । शेष आयु वह दुखी अवस्था मे यापन करता है। असहाय एवं निराधार अवस्था में, अशुभ भाव में मरकर वह कुर्कट जाति का सांप बनता है। नागजाति मे पैदा होता है ।

पोतनपुर नगर का राजा अरविन्द जिसने कमठ को सजा दी थी, एक दिन वह अपने राजमहल को छत पर बैठा था । वर्षा ऋतु के दिन थे । सुहावना मौसम था । राजा की दृष्टि आकाश की ओर थी । संध्या को वे इन्द्रधनुष एवं बादलों को देखने लगे । कुछ क्षण में ही यह सुहावना दृश्य बिखर गया ।

यह दृश्य देखकर राजा को जीवन की नश्वरता का भान हुआ। संसार भी उन्हे असार रूप दृष्टिगोचर होने लगा। संसार से उनका मन उठ गया। उन्हें विराग हो गया। उन्होने अपने पुत्र को राजसिहासन पर बिठाया और संसार एवं राज्य का परित्याग कर दिया ।

समंत भद्राचार्य के समीप उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर ली । अति उत्तम साधना आराधना व तप करने लगे । शास्त्रों के पास ज्ञाता हुए । उग्र तप साधना से उन्हें अवधि ज्ञान की प्राप्ति हुई । जिनशासन की अत्यन्त प्रभावना की । शुभभाव में कालधर्म पाकर वे देवगति को प्राप्त हुए ।

दूसरा भव : हाथी (मरूभूति) , कुर्कुट सांप (कमठ)

मरुभूति के जीवन में कैसा अचानक मोड आया । उसे धर्म की प्राप्ति भी हुई । सम्यक्त्व की प्राप्ति भी हुई । कर्म के विचित्र संयोग से, निमित से अशुभ भाव मे मृत्यु पाकर दंडकारण्य नामक जगल मे हाथी रुप मे जन्मे । सैकडो हथिनियों का स्वामी बना । वह स्वच्छंद विचरण करता था । क्रीडा करता था । [illegible] राजा होकर घूमता था ।

अवधिज्ञानी अरविन्द मुनि संघ के साथ विहार करते हुए जंगल में पहुचे । वे अष्टापद तीर्थ की यात्रा के लिए निकले थे । जंगल में ही स्वच्छ एवं पावन स्थल मे रात्रि विश्राम हेतु विराजमान हुए ।

समीप ही निर्मल सरोवर था, तालाब था । भोजन एवं जल स्नान आदि मे सभी लोग [illegible] ।

उस समय हथिनियो से परिवृत हाथी रुप मरुभूति जलपान करने तालाव पर आया, [illegible] जलक्रीडा भी करने लगा । पश्चात् वह सरोवर के किनारे आकर खड़ा हो गया और [illegible] अवलोकन करने लगा ।

दूर से ही संघ, मुनि एवं लोगों को देखा । उस समय मुनि अरविन्द [illegible] तीर्थ की गौरव गाथा का प्रतिपादन कर रहे थे, तीर्थ यात्रा की [illegible]

[illegible] अचानक हाथी का मूड बदला । उसने विकराल रुप [illegible] लगा । तेजी से भागता हुआ वह लोगों की ओर [illegible]

विकराल रूप को देखकर सभी भयभीत हो गए। भय के मारे लोगों में भी भगदड मच गई। जान बचाने लोग विभिन्न दिशाओं में भागने लगे। प्राण सभी को प्यारे हैं। मौत से कौन नही डरता?

किन्तु अरविन्द मुनि निर्भय थे। उनके मन में लेश मात्र भय नही था। मुनि अवधि ज्ञानी थे। उन्होने ज्ञान मे देखा कि हाथी के बोध का यह योग्य समय है, अवसर है।

अरविन्द मुनि काउसग्ग ध्यान मे खड़े हो गए। स्थिर हो गये। जातिस्वभाव से क्रोधी हाथी मुनि की ओर दौड़ा, किन्तु मुनि के तप प्रभाव से वह नूतन शिष्य की तरह खड़ा हो गया। वह शक्तिहीन हो गया। निर्बल हो गया।

मुनि करुणा के सागर है, दया के अवतार है। निःस्वार्थ परोपकारी है। उन्होने मधुरवाणी से हाथी को सम्बोधित किया। मुनि बोले—"गजराज! तू चितन कर, विचार कर। तू कौन है? पूर्वजन्म मे तू क्या था? वर्तमान में तेरी दशा क्या है? पूर्व जन्म के मरूभूति भव को याद कर। उस जन्म को तू याद क्यो नही करता? पूर्व मरूभूति भव आराधित जिन धर्म को, देव व गुरू को याद कर। अब भी सोच समझ और जीवन मे जागृत हो जा।"

मुनि भगवंत के ये अमतृ वचन हाथी ने सुने। हाथी आत्म निरीक्षण करने लगा। सोचने लगा। विचारने लगा। शुभ विचारो मे उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व मरूभूति का भव चलचित्र की भांति दृष्टिगोचर होने लगा। उस जन्म की स्मृतियां स्मृति पटल पर उभर आई। अरविन्द मुनि को उसने अरविद राजा के रूप मे देखा। राजा के साथ अपना पूर्व संबंध जाना।

हाथी मुनि को वन्दना करने लगा। सूंड से वह नमस्कार करने लगा। वह मुनि के चरणो में लौट गया। नयनों से आंसुओ की धारा बहने लगी।

हाथी का पश्चाताप

हाथी रूप मरूभूति को जंगल मे श्री अरविन्द मुनि का समागम हुआ। वह मुनि समक्ष उपद्रव मचाता हुआ आया, किन्तु मुनि के तप तेज से वह शान्त हो गया। शिष्य की तरह खडा हो गया। मुनि ने हाथी के बोध का समय जान लिया। परम करूणासागर परोपकारी मुनि ने कायोत्सर्गध्यान समाप्त किया और उस हाथी को प्रतिबोध दिया।

मुनि दर्शन से एवं प्रतिबोध से उसे पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है। जाति स्मरण ज्ञान हो जाता है। वह मन में पश्चाताप करता है। खेद करता है। मरूभूति के भव में आराधित जिन धर्म को वह याद करता है। आंखो से अस्खलित आंसुओ की धारा बह रही है। पशु जीवन से तारने के लिये, उद्धार के लिये वह मुनि से प्रार्थना करता है। मार्गदर्शन देने हेतु निवेदन करता है।

मुनि ने गजराज से कहा—संसार रूपी रंग मंच पर यह जीवात्मा भी नाटक करता है, विभिन्न रूपो

[illegible] धारण करता है। चार गति मे परिभ्रमण करता है।

मुनि पुन: बोले—गजराज तू अत्यधिक खेद न कर। पशु योनि मे होने से तू दीक्षा अंगीकार नही [illegible] सकता, किन्तु पूर्वजन्म की तरह कषाय एवं विषय का परित्याग कर। समता रस मे निमग्न हो जा। [illegible] धर्म सहित सम्यक्त्व एवं श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर, नवकार मंत्र का निरंतर स्मरण कर, तेरा [illegible] होगा।

हाथी ने नत मस्तक हो व्रत ग्रहण करने की भावना प्रकट की। मुनि ने व्रत का सकल्प कराया। हाथी ने व्रत एव निर्मल सम्यक्त्व प्राप्त किया। मुनि को वन्दन कर पुन: लौट गया।

व्रत एव नियम हाथी के जीवन के अंग बन गए। पशु होते हुए भी उसके जीवन की यह विशिष्टता [illegible]। वह दृढता से व्रतो का पालन करने लगा। प्राणो की तरह वह व्रतों की रक्षा करने लगा। जीव दया [illegible] लगा। वेले तेले की तपस्या करने लगा। सूर्य के ताप से तप्त पानी अचित्त (फासु) पानी वह पारने [illegible] पीता था और सूखे हुए पत्तो का वह भोजन करता था। हथिनियों का संग भी उसने त्याग दिया, तप से [illegible] काया भी कृश हो गई, दुर्बल हो गई।

वह मन मे सोचता है, वे आत्माएं धन्य भागी है, जो मानव जन्म पाकर दीक्षा अंगीकार करती है। [illegible] भव मे दुर्लभ मानव जन्म पाकर भी मैने व्यर्थ गवा दिया किन्तु वर्तमान जीवन सार्थक करु। यह [illegible] वह सुख-दु:ख समता से भोगने लगा।

इधर मरूभूति की हत्या करने से कमठ का घोर अपमान हुआ। गुरु एवं उनके शिष्यो ने भी उसका [illegible] किया। वह सभी की घृणा का पात्र बन गया।

भयंकर क्रोधावस्था मे, दुर्दशा मे एवं अशुभ ध्यान मे वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। मर कर वह दुर्गति [illegible] भागी वना। वह जंगल मे भयंकर हिसक कुर्कट नामक साप वना। उसका दर्शन भी भयानक था। [illegible] तीक्ष्ण दृष्टिमात्र से गगन विहारी पक्षी गिर जाते।

हाथी निर्वल वन गया था। किन्तु वह बेले एवं तेले की तपस्या नियमित करता था। [illegible] उसने तप न छोडा।

[illegible] दिन हाथी सूर्य के ताप से तप्त जल अचित (फासु) पानी की खोज कर [illegible] था। [illegible] उसे अचित मालूम हुआ। जलपान करने वह भीतर गया। पानी पीते [illegible] गया, धस गया।

[illegible] ज्यो-ज्यो बाहर निकलने का प्रयास करता है और भी भीतर [illegible]

[illegible] साप ने हाथी को जलाशय के भीतर दयनीद स्थिति मे [illegible] भावना जागृत हुई।

[illegible] के लिये [illegible] सिर पर चढ [illegible]

डंक की असह्य वेदना को समता से सहन करता है। हाथी मरणकाल निकट जानकर पंचपरमेष्ठि एवं प्रभु के ध्यान में लीन हो जाता है।

हाथी ने उस पर रोष नहीं किया, क्रोध नहीं किया, बल्कि सांप को उपकारी मानता है।

मौत की अंतिम घड़ी में हाथी ने चतुर्विध आहार का परित्याग कर दिया।

भवोभव देव-गुरु प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है। अरिहंत, सिद्ध, गुरु एवं धर्म की शरण स्वीकार करता है।

सम्यक्त्व को वह याद करने लगा—

॥ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणों गुरुणों।
जिणपन्नतं धम्मं तत्तं इअ समत्तं मए गहियं ॥

अरिहंत प्रभु, परमसाधक गुरु एवं केवली भगवान द्वारा कथित धर्म को श्रद्धा से अंगीकार करता है। तीन तत्व रूप सम्यक्त्व मै स्वीकार करता हूं। यह संकल्प मन में करता है।

इत्यादि शुभ भावों में वह बहने लगा। स्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म फल स्वयं को ही भोगना होता है, दूसरा तो निमित्त मात्र है।

धन का मोह

मरूभूति की आत्मा जो आठवां देवलोक में थी। वहां की आयु परिपूर्ण कर वैताढ्य पर्वत के तिलक नगर में विद्युत गति नामक विद्याधर राजा की रानी तिलकावती के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

जन्म होने पर उसका नाम किरणवेग रखा गया। युवावस्था में पद्मावती नामक राजकन्या से उसकी शादी की गई।

उसका पिता विद्युतगति एक बार नगर से बाहर उद्यान में घूमने के लिए जाता है। उस उद्यान में राजा को श्रुतसागर नामक आचार्य भगवन्त के दर्शन हुए।

आचार्यश्री के दर्शन एवं वाणी श्रवण के लिए नगरजन भी आए। आचार्यश्री ने मानव जीवन का सार और संसार की असारता का प्रतिपादन किया।

उन्होंने कहा—गृहस्थ के लिए संसार में चार प्रकार के पुरुषार्थ है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गृहस्थ के लिए अर्थ पुरुषार्थ, धनार्जन लक्ष्य जरूरी है। किन्तु अर्थ पुरूषार्थ साध्य नही है। अर्थ एवं काम का पुरूषार्थ करते हुए, सांसारिक कर्म करते हुए, गृहस्थ का लक्ष्य धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ की ओर होना चाहिए। क्योकि अर्थ और काम पुरुषार्थ साधन है, साध्य नहीं। धर्म और मोक्ष ये दो ही पुरूषार्थ साध्य है। अर्थ और काम मे लिप्त आत्मा लक्ष्य से पतित हो जाती है और दुर्गति को प्राप्त होती है। भरत महाराजा आदि संसार के बीच रहते हुए, सांसारिक भोगो में लिप्त न हुए। लक्ष्य को चूके नहीं तो आत्म विकास कर गए, अन्त में मुक्ति को पा गए।

आचार्यश्री ने प्रेरक प्रवचन की धारा बहाई। तत्पश्चात् विद्युतगति विद्याधर ने आचार्य भगवन्त से
[illegible]—हे गुरुदेव ! आपके मुख कमल की दिव्य आभा एवं तेजोमय देह आपकी महानता की परिचायक

किन्तु मेरे मन में एक जिज्ञासा है गुरूदेव कि आपने संयम मार्ग कैसे ग्रहण किया। आपके जीवन
[illegible]क्या निमित्त बना, कृपा कर यह समाधान भी कीजिए। गुरू भगवन्त ने कहा—संसार के दुःख का मूल
[illegible] एवं वियोग आधि-व्याधि और उपाधि जन्म-मरण है।

जहां संयोग वहां वियोग है। जहां जन्म वहां मृत्यु भी निश्चित है। ये ही मेरे निमित्त कारण है। ये
[illegible] जीवन परिवर्तन में निमित्त रूप है। किन्तु राजा को इस प्रत्युत्तर से संतुष्ट नही हुई। मन का समाधान न
[illegible]। राजा ने पुनः विनती की।

गुरुदेव ! आप विस्तार से अपना जीवन प्रसंग कहिये। तब आचार्य भगवन्त ने कहा कि राजन् !
[illegible] दीक्षा के संबंध मे मेरे नौ भव का सम्बन्ध है और जिसका मूल कारण भी पापमय लक्ष्मी है। उन नौ
[illegible] सम्बन्ध यह है, वह तू सुन। आचार्य महाराज ने कहना प्रारम्भ किया—

हे राजा। प्रथम भव में कौसंबी नगरी मे मैं एक विजय धर्म नामक व्यापारी था। मेरा एक छोटा
[illegible] था जिसका नाम था धनधर्म। हम समृद्धिशाली थे। धन सम्पन्न थे, किसी बात की कमी न थी।
[illegible]न किसी पापकर्म के उदय से हम निर्धन हो गए। लक्ष्मी हमें छोड गई। दुःखी होकर हमने गांव का
[illegible] किया। व्यापार के लिए हम दोनों भाई विदेश गये। वहां आजीविका योग्य धन अर्जन किया।
[illegible] गाव मे किराये का एक पुराना मकान लेकर हम वहां रहने लगे।

कुछ दिनो के बाद कुछ चोर बड़ी चोरी कर भागे हुए वहां आए। पुलिस सिपाही उनके पीछे पड़े
[illegible] चोर हमारे घर के समीप आए। उनकी दृष्टि हम पर न पड़ी। उन्हे यह स्थान सुरक्षित लगा। उन चोरों
[illegible] हुई मूल्यवान रत्नो की पेटी हमारे घर के एक कौने मे छिपा दी।

चोर फिर भोजन के लिए एक बुढिया के घर गए। चोर भोजन कर रहे थे कि पुलिस [illegible]
चोर बचाव के लिए आहार भी छोड़ कर भागने लगे। भागते हुए चोर पुलिस द्वारा मारे गए। पुलिस
[illegible] ली किन्तु उन्हे चोरों से कुछ न मिला। वे निराश होकर लौट गए।

हमारी नजर उन रत्नो की पेटी पर पडी। हमने खोलकर देखा तो उसमें महामूल्यवान [illegible]
[illegible] दोनो भाइयो ने सोचा अब पुन. भाग्योदय हुआ है। अचानक अपार धन की प्राप्ति [illegible]
[illegible] की ओर चले। अपने घर चले।

[illegible] दोनों भाइयो ने गांव की ओर प्रस्थान किया। पापमय लक्ष्मी को लेकर [illegible]
[illegible] जंगल में पहुंचे। उस जगल मे चोर लुटेरे रहते थे।

[illegible] देखकर ही हमने सारा धन एक पेड के नीचे गाड दिया। लुटेरों ने [illegible]

डंक की असह्य वेदना को समता से सहन करता है। हाथी मरणकाल निकट जानकर पंचपरमेष्ठि एवं प्रभु के ध्यान में लीन हो जाता है।

हाथी ने उस पर रोष नही किया, क्रोध नहीं किया, बल्कि सांप को उपकारी मानता है।

मौत की अंतिम घड़ी में हाथी ने चतुर्विध आहार का परित्याग कर दिया।

भवोभव देव-गुरु प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है। अरिहंत, सिद्ध, गुरु एवं धर्म की शरण स्वीकार करता है।

सम्यक्त्व को वह याद करने लगा—

॥ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणों गुरुणों।
जिणपन्नतं धम्मं तत्तं इअ समत्तं मए गहियं ॥

अरिहंत प्रभु, परमसाधक गुरु एवं केवली भगवान द्वारा कथित धर्म को श्रद्धा से अंगीकार करता है। तीन तत्व रूप सम्यक्त्व मैं स्वीकार करता हूं। यह संकल्प मन में करता है।

इत्यादि शुभ भावों में वह बहने लगा। स्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म फल स्वयं को ही भोगना होता है, दूसरा तो निमित्त मात्र है।

धन का मोह

मरूभूति की आत्मा जो आठवां देवलोक में थी। वहां की आयु परिपूर्ण कर वैताढ्य पर्वत के तिलक नगर में विद्युत गति नामक विद्याधर राजा की रानी तिलकावती के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

जन्म होने पर उसका नाम किरणवेग रखा गया। युवावस्था में पद्मावती नामक राजकन्या से उसकी शादी की गई।

उसका पिता विद्युतगति एक बार नगर से बाहर उद्यान में घूमने के लिए जाता है। उस उद्यान में राजा को श्रुतसागर नामक आचार्य भगवन्त के दर्शन हुए।

आचार्यश्री के दर्शन एवं वाणी श्रवण के लिए नगरजन भी आए। आचार्यश्री ने मानव जीवन का सार और संसार की असारता का प्रतिपादन किया।

उन्होंने कहा—गृहस्थ के लिए संसार में चार प्रकार के पुरुषार्थ है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गृहस्थ के लिए अर्थ पुरुषार्थ, धनार्जन लक्ष्य जरूरी है। किन्तु अर्थ पुरूषार्थ साध्य नही है। अर्थ एवं काम का पुरूषार्थ करते हुए, सांसारिक कर्म करते हुए, गृहस्थ का लक्ष्य धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ की ओर होना चाहिए। क्योंकि अर्थ और काम पुरुषार्थ साधन है, साध्य नही। धर्म और मोक्ष ये दो ही पुरूषार्थ साध्य है। अर्थ और काम मे लिप्त आत्मा लक्ष्य से पतित हो जाती है और दुर्गति को प्राप्त होती है। भरत महाराजा आदि संसार के बीच रहते हुए, सांसारिक भोगो मे लिप्त न हुए। लक्ष्य को चूके नहीं तो आत्म विकास कर गए, अन्त में मुक्ति को पा गए।

आचार्यश्री ने प्रेरक प्रवचन की धारा बहाई। तत्पश्चात् विद्युतगति विद्याधर ने आचार्य भगवन्त से पूछा–हे गुरूदेव ! आपके मुख कमल की दिव्य आभा एवं तेजोमय देह आपकी महानता की परिचायक है।

किन्तु मेरे मन में एक जिज्ञासा है गुरूदेव कि आपने संयम मार्ग कैसे ग्रहण किया। आपके जीवन में क्या निमित्त बना, कृपा कर यह समाधान भी कीजिए। गुरू भगवन्त ने कहा—संसार के दुःख का मूल संयोग एवं वियोग आधि-व्याधि और उपाधि जन्म-मरण है।

जहां संयोग वहां वियोग है। जहां जन्म वहां मृत्यु भी निश्चित है। ये ही मेरे निमित्त कारण है। ये मेरे जीवन परिवर्तन में निमित्त रूप है। किन्तु राजा को इस प्रत्युत्तर से संतुष्ट नही हुई। मन का समाधान न हुआ। राजा ने पुनः विनती की।

गुरूदेव ! आप विस्तार से अपना जीवन प्रसंग कहिये। तब आचार्य भगवन्त ने कहा कि राजन् ! मेरी दीक्षा के सबंध में मेरे नौ भव का सम्बन्ध है और जिसका मूल कारण भी पापमय लक्ष्मी है। उन नौ भव का सम्बन्ध यह है, वह तू सुन। आचार्य महाराज ने कहना प्रारम्भ किया—

हे राजा। प्रथम भव में कौसंबी नगरी में मै एक विजय धर्म नामक व्यापारी था। मेरा एक छोटा भाई था जिसका नाम था धनधर्म। हम समृद्धिशाली थे। धन सम्पन्न थे, किसी बात की कमी न थी। किन्तु किसी पापकर्म के उदय से हम निर्धन हो गए। लक्ष्मी हमें छोड़ गई। दुःखी होकर हमने गांव का परित्याग किया। व्यापार के लिए हम दोनो भाई विदेश गये। वहां आजीविका योग्य धन अर्जन किया। किसी गांव मे किराये का एक पुराना मकान लेकर हम वहां रहने लगे।

कुछ दिनों के बाद कुछ चोर बड़ी चोरी कर भागे हुए वहां आए। पुलिस सिपाही उनके पीछे पडे थे। चोर हमारे घर के समीप आए। उनकी दृष्टि हम पर न पड़ी। उन्हें यह स्थान सुरक्षित लगा। उन चोरो ने चुराई हुई मूल्यवान रत्नों की पेटी हमारे घर के एक कौने में छिपा दी।

चोर फिर भोजन के लिए एक बुढिया के घर गए। चोर भोजन कर रहे थे कि पुलिस वहां पहुच गई। चोर बचाव के लिए आहार भी छोड़ कर भागने लगे। भागते हुए चोर पुलिस द्वारा मारे गए। पुलिस ने तलाशी ली किन्तु उन्हे चोरों से कुछ न मिला। वे निराश होकर लौट गए।

हमारी नजर उन रत्नों की पेटी पर पड़ी। हमने खोलकर देखा तो उसमे महामूल्यवान रत्न दृष्टिगोचर हुए। हम दोनों भाइयों ने सोचा अब पुनः भाग्योदय हुआ है। अचानक अपार धन की प्राप्ति हुई है। अब अपने वतन की ओर चले। अपने घर चलें।

हम दोनो भाइयों ने गांव की ओर प्रस्थान किया। पापमय लक्ष्मी को लेकर हम दोनो चलते हुए भटकर जगल में पहुंचे। उस जंगल मे चोर लुटेरे रहते थे।

उन्हे दूर से देखकर ही हमने सारा धन एक पेड के नीचे गाड दिया। लुटेरो ने जैसे ही देखा वे दौड़ते

हुए हमारे पास आए। उन्होंने हमें पकड़ा। हमारे पास जो कुछ था उन्होंने लूट लिया और हम दोनों को बंधन में डाल दिया। उन्होंने हमे खूब मारा। पापमय लक्ष्मी के मोह में मार सहते-सहते हमने दम तोड़ दिया। हम मृत्यु को प्राप्त हुए।

लक्ष्मी की ममता, धन की आसक्ति आत्मा का विनास करती है। परिवार एवं लक्ष्मी भवांतर में साथ नहीं आती, यह जानते हुए भी जीवात्मा आसक्ति का परित्याग नहीं करता फलतः वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

ममता-मारती है। समता तारती है। ममता, समता मे, आसक्ति अनासक्ति में परिणत हो जाए तो आत्मोत्थान सहज हो सकता है।

लक्ष्मी की आसक्ति में मृत्यु पाकर दोनों भाई तिर्यचयोनि मे, पशु गति में उत्पन्न हुए। वे दोनो उसी पेड़ के नीचे चूहे के रूप में जन्मे। उस पेड़ के नीचे लक्ष्मी को, धन को देख ममता हुई। हम दोनो धन के लिए लडने लगे। भयंकर रूप से लड़े, अन्ततः मरण की शरण प्राप्त हुए।

वहां से मरकर तीसरे भव में मै शेर के रूप मे एक जंगल में उत्पन्न हुआ। मेरा छोटा भाई किसी सेठ के यहां जन्मा। वह व्यापार के लिए उसी जंगल में से गुजर रहा था। संयोग से मैने उसे देख लिया पूर्व के बैर से मैने उसे पंजों से चीर फाड़ा। मेरे द्वारा वह मारा गया।

आचार्यश्री राजा को और आगे भवों का वर्णन कर रहे है। वे कह रहे है।

शेर के भव में मरकर मैं एक सेठ के यहां पुत्र रूप मे जन्मा। मेरा छोटा भाई बन्दर के रूप मे जन्मता है। उसी पेड़ पर वह रहता है। एक बार व्यापार के लिए मै वहां से गुजर रहा था। उस समय बन्दर ने मुझे देखा। वह मुझे काटने के लिए दौड़ा हुआ आता है।

वैर की परम्परा

राजा विद्युतगति के पूछने पर आचार्य श्री श्रुतसागरजी ने अपने चार भवों का वर्णन सुनाया। अब पांचवें भव का वर्णन सुना रहे हैं। वन्दर ने मुझे काटा, मैं घायल हुआ फिर भी साहस करके मैंने उस पर कुल्हाड़ी का वार किया, वह मर गया। कुछ देर के बाद मेरा भी श्वास बन्द हो गया।

पांचवें भव में मैं जंगली सुअर बना और मेरा भाई उसी जंगल में हिरण बना। एक दिन उसी स्थान पर हम दोनों मिल गए और हमारे बीच लड़ाई हुई और मैंने अपने तीक्ष्ण दांतों से हिरन को मार दिया। मै वही रहता था। एक दिन वहां शेर आया और उसने मुझे अपना शिकार बना लिया।

छठे भव में हम दोनों एक गरीब ब्राह्मण के घर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। पूर्व जन्म के द्वेष के कारण हम दोनो भाई अक्सर झगड़ते रहते थे। हमारे प्रतिदिन के झगड़ों से तंग आकर हमारे माता-पिता ने हमें घर से निकाल दिया। हम दोनों घर से निकल पड़े। एक नगर में पहुंचे और एक सेठ के वहां आजीविका कमाने लगे।

एक बार उस सेठ ने हमें व्यापार का माल लेने के लिए बाहर भेजा। हम चलते हुए उसी पेड़ के नीचे से गुजरने लगे। उस स्थान पर पहुंचते ही हम दोनों को एक दूसरे की हत्या करने के विचार आने लगे।

हम दोनों के बीच झगड़ा हुआ, इस झगड़े में मैने उसे मार दिया और उसने मुझे मार दिया।

सातवें भव में रत्नपुर नगर में कुबेरदत्त सेठ के वहां हम दोनों जुड़वां भाई के रूप मे उत्पन्न हुए। कमाने योग्य होने पर हम दोनो व्यापार के लिए परदेश पहुंचे। वहां हमने बहुत सम्पति एकत्र की। उस सम्पति को लेकर हम अपने नगर में लौट रहे थे। रास्ते में वह स्थान आया जहां हमने चोरी का माल दवाया था। वहां पहुंचते ही हमारे बीच झगड़ा हो गया। इस बीच वहां एक चारण मुनि आ पहुंचे। उन्होंने हम दोनों को शान्त किया। उन्होंने हमारे बीच होने वाले झगड़े का कारण वताया। धर्म का उपदेश दिया। हम दोनों उनसे प्रभावित हुए, बारह व्रत अंगीकार किए। मुनि के कहने पर हमने उस पाप मूल लक्ष्मी का उपयोग भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बनवाने मे किया। हम दान, भक्ति, जप-तप करने लगे। हम धर्मध्यान में लगे रहते थे, यह हमारी स्त्रियों को पसंद नही था। उन्होने हम दोनो को जहर दे दिया। अत्यन्त कष्टपूर्वक हमारा प्राणान्त जहर से हो गया।

दुर्ध्यान मे हमारी मृत्यु होने से हम दोनों भाई उसी स्थान पर मोर के रूप मे उत्पन्न हुए। वहां हमें एक चारण मुनि के दर्शन हुए। हमारी स्मृति प्रवल हुई और हमे जाति स्मरण ज्ञान हुआ। हमने मुनि को नमस्कार किया। मुनि को हमारी स्थिति का पता चला। उन्होने हमे अनशन कराया। पंच परमेष्ठी का

स्मरण करते हुए हमारी मृत्यु हुई। वहां से हम गगन वल्लभ नाम के नगर में सुवेग नाम के विद्याधर के वहां उसके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। हम युवा हुए।

इस बीच हमें उसी चारण मुनि के दर्शन हुए। उनके दर्शन होने के साथ ही हमे जाति स्मरण ज्ञान हुआ। हमें अपने पूर्व भव के दुःखद इतिहास का पता चला। मुझे वैराग्य हो गया और मैने तत्काल दीक्षा ग्रहण कर ली। वह दीक्षित मुनि मैं स्वयं हूं।

अपना दीक्षित होने का कारण बताकर राजा विद्युतगति को उपदेश देते हुए आचार्य देव ने कहा—हे राजन्। अर्थ ही अनर्थ की जड़ है। वह जीव को दुर्गति में ले जाने का सबसे बड़ा कारण है। आचार्य श्री के इस प्रकार के उपदेश से राजा विद्युतगति को वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र जिसका नाम किरणवेग था, राज्य भार सौंपकर दीक्षा अंगीकार कर ली।

किरणवेग सुखपूर्वक राज्य कर रहा था। उसकी रानी पद्मावती को एक पुत्र हुआ। जिसका नाम उन्होंने किरणतेज रखा।

इस बीच किरणवेग के राज्य में एक ऐसी करुण घटना घटित हुई जिसने किरणवेग को ससार से विरक्त कर दिया।

किरणवेग अपनी सभा भरकर बैठा हुआ था। इतने में एक राज कर्मचारी एक आदमी को पकड़कर राजा के सामने लाया। और कहा—राजन् यह व्यक्ति एक पेड़ पर चढ़कर आत्महत्या कर रहा था। हमने उसकी आत्महत्या का कारण पूछा पर यह कोई उत्तर नहीं देता। अब आप ही कुछ उपाय करें। राजा ने उससे अत्यन्त स्नेहपूर्वक आत्महत्या का कारण पूछा—उस आदमी ने निश्वास छोड़ते हुए कहा—दयालु राजन्! मैं यहीं पास ही के कदलीपुर गांव का एक सामान्य व्यापारी हूं। मेरा नाम कृष्ण है। मेरा परिवार विशाल है।

कुछ महीनों पहले मेरे पिता की मृत्यु हुई है मै अपने पितृशोक से अभी मुक्त भी नही हुआ था, इतने में मेरी माता जो बड़ी अवस्था लिए हुए है दुराचार के पथ पर चल पड़ी। वह एक गरीब ब्राह्मण प्रेमी के घर पर जाकर बैठ गई। लोगों में मेरी माता की और मेरे परिवार की निन्दा होने लगी। मेरा एक छोटा भाई है। उसकी स्त्री रूपवती है, फिर भी वह वेश्याओं के पास जाने लगा। इसलिए उसकी स्त्री उसे अपने वश में रखने के लिए जादू और मंत्र तंत्र का प्रयोग करने लगी।

इसके प्रभाव से मेरा भाई पागल हो गया। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। अन्त में उसकी मृत्यु हो गई। लोगों को पता चला कि मेरे भाई की मृत्यु का कारण उसकी स्त्री है। तो लोगो मे निन्दा होने लगी। उसका तिरस्कार करने लगे। इन सब से दुःखी होकर उसने कुएं में गिरकर आत्महत्या कर ली। मेरी एक छोटी बहन है वह मेरे घर के नौकर से अनुचित संबंध रखती है। मैने उसे बहुत समझाया पर

वह सही राह पर नही आई ।

एक दिन रात के समय मेरे सारे रुपये, आभूषण आदि कीमती चीजें लेकर वह और नौकर भाग गए। मेरे एक मात्र पुत्र को पता चला तो उसने उनका पीछा किया। उसने उन्हें पकड़ लिया। उसके और नौकर के बीच लडाई हुई। मेरे पुत्र ने उसे नीचे पटक दिया और छाती पर बैठ गया, इतने में मेरी बहन ने आकर मेरे पुत्र की पीठ में छुरी घोंप दी। जिससे वह वही मर गया। मेरे दुःख की सीमा नही थी। इन दु खो से मुक्त होने के लिए मैने अपने कुलदेवता को प्रसन्न करने हेतु आराधना की। दस व्रत तक किए, पर कुलदेवता भी प्रसन्न नहीं हुए। हे राजन् ! इस प्रकार के दुःखों के सागर में घिर जाने पर मै अव आत्महत्या न करूं तो क्या करूं ?

उसकी इस प्रकार की व्यथा भरी कथा सुनकर राजा का हृदय भी द्रविभूत हो गया। उसने कहा—भाई। यह संसार दावानल की तरह है। कुटुम्ब परिवार भी एक तरह की माया ही है। जीवन नदी की तरह अस्थिर है और अनित्य है। इसलिए आत्महत्या से इन दुःखों से मुक्ति तुम्हे कदापि नही मिल सकती। प्रत्येक कर्म को समभाव पूर्वक सहना और नये कर्म बंधन न हो, इसका ध्यान रखना आत्मा का धर्म है।

इस बीच उद्यान पालक ने आकर राजा को शुभ समाचार दिया कि नगर के बाहर उद्यान में सुरगुरु नामक आचार्य पधारे है। राजा उसके दर्शन और उपदेश सुनने के लिए चल पड़े। आचार्य श्री का उपदेश और उस व्यक्ति की दुःखद कहानी संसार का स्वरूप समझकर राजा किरणवेग ने अपने पुत्र को राज्य सौपा और दीक्षित हो गए। वे उग्र तपस्या करने लगे। गीतार्थ हुए। आकाशगामिनी विद्या उन्होंने प्राप्त की। इस विद्या के बल पर उन्होंने शाश्वती प्रतिमाओं के दर्शन किए और गुरु की आज्ञा लेकर हिमगिरि पर्वत की तलहटी में प्रतिमा धारणकर काउसग्ग ध्यान करने लगे।

कमठ का जीव कुर्कट सांप जो मरकर पांचवी नरक मे गया था उसने वहां अनंत यातनाएं सही। वहा की आयुपूर्ण कर उसने कई छोटे छोटे भव किये। उसके बाद अब एक योजन लम्बा सांप बना हुआ है। वह सांप घूमते हुए जहां किरणवेग मुनि ध्यानस्थ खड़े थे वहां पहुंचा। मुनि को देखते ही उसके मन मे क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उनके शरीर के कई भागो में डंक मारने लगा।

किरणवेग मुनि को सांप पर तनिक भी क्रोध नही आया। वे समभाव के सागर मे डूब गए। पंच परमेष्ठि का स्मरण करते हुए वे कालधर्म को प्राप्त हुए। वे देवलोक मे देव हुए। वह सांप हिंसात्मक परिणामो के कारण मरकर छठी नरक मे गया।

कर्म तेरी गति न्यारी

छट्ठा भवः

इसी जम्बूद्वीप में महाविदेह क्षेत्र में शुभंकरा नाम की नगरी में वज्रवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसकी लक्ष्मीवती नाम की रानी थी। किरणवेग विद्याधर की आत्मा बारहवें देवलोक की आयु पूर्ण कर लक्ष्मीवती की कुक्षी में पुत्र रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम रखा गया वज्रनाभ।

बचपन में वह सर्व विद्या में पारंगत बना। जब वह युवास्था को प्राप्त हुआ, एक दिन घोड़े पर बैठकर वह घूमने के लिए बाहर निकला।

नगर के बाहर एक वृद्ध पुरुष को ताडपत्र पर कुछ पढ़ते हुए देखा। कुमार ने उसे पूछा—आप क्या पढ़ रहे है। उसने कहा मैं बंगदेश के राजा चन्द्रकान्त की घटना पढ़ रहा हूं।

बंगदेश में एक राजा है। जिसका नाम है, चन्द्रकान्त। उसकी सौभाग्य सुन्दरी नामक रानी है। उसे विजया नामक सुयोग्य सुपुत्री है। उसको विश्वकर्मा नामक पंडित ने सुन्दर अध्ययन कराया। वह सर्व विद्या एवं कला मे पारंगत हो गई। राजा ने पंडित को उपहार दिये। पंडित अपने बंगदेश की ओर लौट गया।

चन्द्रकान्त राजा की सभा में एक ज्योतिषी आया। राजा ने उससे पूछा कि मेरी पुत्री का पति कौन होगा? तब भविष्यवेत्ता ने कहा—कि शुभंकरा नगरी के राजा वज्रवीर्य का पुत्र वज्रनाभ उसका पति होगा। राजा ने उसे ईनाम देकर विदा किया।

विश्वकर्मा जैसे ही बंगदेश में पहुंचा, राजा ने उसे पूछा—इतने समय तक कहां रहे? विश्वकर्मा ने राजकुमारी विजया को अध्ययन कराने की बात कही, उसकी अत्यन्त प्रशंसा की। बंगदेश का राजा उस कुमारी पर मोहित हुआ। किन्तु उसने सोचा चन्द्रकान्त राजा अन्यन्त बलवान है। अतः राजकुमारी विजया को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह जानकर उसने विद्याधर मित्रदेव के द्वारा विजया कुमारी का अपहरण कराया। उसको अपने महल में रखकर समझाया, किन्तु उसने राजा की बात न मानी।

इधर चन्द्रकान्त को अपनी पुत्री के गुम होने के समाचार मिले। वह क्रोधायमान हो गया, चारो ओर खोज करने पर भी पता न चला। एक दिन राजा ने राज सभा में राजकुमारी की जानकारी देनेवाले को बड़ा ईनाम देने की घोषणा की।

महामंत्री के पुत्र ने कहा—महाराज हमारे गुरु भृगुजी विद्या-सिद्ध पुरुष है, वे राजकुमारी का पता बता सकते है। राजा उनके पास गया। उनसे नम्र निवेदन किया गुरुजी ने राजा पर कृपा की और बताया कि तुम्हारी पुत्री बंगदेश के राजा के महल में है। उसने पुनः प्रार्थना की कि आप मुझे पुत्री समक्ष उसी

महल मे ले जाये। मंत्र विद्या बल से उसी समय राजा को बंगदेश मे पुत्री के महल में छोड़ा। चन्द्रकान्त ने उस राजा के साथ संघर्ष किया। उसे पराजित कर अपनी पुत्री के साथ वह अपने राज्य में लौट आया।

वृद्ध पुरुष कहता है कुमार ! चन्द्रकान्त राजा ने मुझे अपनी पुत्री का सम्बन्ध जोड़ने के लिए यहां भेजा है। फिर वह वृद्ध पुरुष वज्रवीर्य की राजसभा में आता है। राजकुमारी विजया के विवाह के सम्बन्ध के लिए चन्द्रकान्त राजा की मनोकामना प्रगट की।

राजा वज्रवीर्य ने सहर्ष मांग स्वीकार की। अनुमति प्रदान की। वह पुनः बगदेश गया और चन्द्रकान्त राजा को शुभ समाचार दिए। विवाह का सम्पूर्ण आयोजन किया गया। शुभ मुहूर्त मे राजकुमारी विजया का राजकुमार वज्रनाभ के साथ विवाह किया गया।

वज्रवीर्य राजा ने राजकुमार वज्रनाभ को राज सत्ता सौप दी और उन्होंने अनंतयश नाम के आचार्य महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की।

वज्रनाभ राजा को भी एक पुत्र की प्राप्ति हुई। जिसका नाम रखा गया चक्रायुध। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका भी एक राजकुमारी के साथ विवाह किया गया।

एक बार क्षेमंकर नामक तीर्थकर प्रभु पधारे। वज्रनाभ भी प्रवचन श्रवण करने गया। देशना श्रवण कर उसे वैराग्य हुआ। प्रभु से उन्होंने दीक्षा स्वीकार की। प्रभु की आज्ञा से एकाकी विचरण करने लगे।

उन्होने अनेक लब्धियां एवं आत्मशक्ति प्राप्ति की। एक बार वे आकाश मार्ग से सुकच्छ प्रान्त मे गये। एकान्त वन में वे ध्यानस्थ खड़े हो गये। आत्म समाधि में लीन हो गये।

इसी जंगल की बस्ती में कमठ का जीव भी भील जाति में पैदा हुआ। उसका नाम कुरंग रखा गया। वह अत्यन्त क्रूर व हिसक था। एक दिन वह धनुष बाण लेकर घूम रहा था। उसने मुनि को देखा। उसकी क्रोधाग्नि भडक उठी। बाणों से उसने मुनि का शरीर बीध दिया। समाधि में प्राण त्याग कर नवम देवलोक मे देव बने। वह कुरंग हत्या के फलस्वरूप मरकर सप्तम नरक मे उत्पन्न हुआ।

सहज समाधि

महान् आत्मा के लक्षण जन्म से परिलक्षित होते है। प्रभावशाली व्यक्तित्व के वे धनी होते हैं।

मध्यम ग्रैवेयक की आयु पूर्ण होने पर वज्रनाभ का जीव पूर्व विदेह में सुरपुर नगरी के राजा कुलिशवाहु की रानी सुदर्शना के गर्भ में अवतरित हुआ।

उस समय रानी ने चक्रवर्ती राजा के सूचक चौदह स्वप्न देखे।

गर्भकाल पूर्ण होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। नाम रखा गया स्वर्ण वाहु। धीरे-धीरे कुमार बड़ा हुआ।

पुत्र के योग्य होने पर राजा ने अपनी जिम्मेदारी उसे सौंप दी। राज्य का भार भी उस पर डाल कर

राजा ने दीक्षा ले ली।

स्वर्णबाहु न्यायनीति से प्रजा का पालन करने लगे। एक दिन किसी ने राजा को घोड़े भेट किए। घोडे बलवान और सुन्दर थे।

राजा एक बलशाली घोड़े पर सवार हो गया। घोड़ा विपरीत शिक्षा वाला था। लगाम खीचने से चलता और ढीली छोड़ने पर रुक जाता। यह रहस्य राजा को ज्ञात नही था। सवार के बैठते ही वह तीव्रगति से दौड़ने लगा। ज्यों-ज्यों राजा लगाम खीचता घोडे की गति बढती जाती। थोडी ही देर में राजा बहुत दूर निकल गया दोनों ही थककर चूर-चूर हो गये थे।

राजा ने निराश हो लगाम छोड़ दी। घोड़ा रुक गया। राजा ने चारों ओर देखा वृक्ष ही वृक्ष और भयानक जंगल दृष्टिगोचर हुआ। राजा को प्यास बडे जोरों से लगी थी। पास ही एक आश्रम दृष्टिगोचर हुआ। वह उसके निकट गया। कुलपति ने उसका भावभरा स्वागत किया। राजा का आतिथ्य किया गया। कुलपति के पास खड़ी एक कन्या ने भी राजा को नमस्कार किया। राजा ने उसका परिचय पूछा।

कुलपति ने बताया—यह रत्नपुर के राजा खेचरेन्द्र की पुत्री पद्मावती है। इसके जन्म के कुछ समय बाद पिता का निधन हो गया। शत्रुओं ने राज्य छीन लिया। पुत्री की रक्षा के लिए माता रत्नावती ने यहां आश्रय लिया है।

कुलपति ने कहा—राजन्! इस कन्या के भाग्योदय से आपका आगमन हुआ है।

इस कन्या के संबंध में किसी विशिष्ट ज्ञानी ने यह बताया था कि इसका स्वामी स्वयं आयेगा और उसे रानी बनाकर ले जायेगा। ज्ञानी भविष्य के दृष्टा होते है। उसका वचन मिथ्या नही होता। इनके वचन सत्य रूप में दृष्टिगोचर हो रहे है। आप इसके साथ विवाह अवश्य करें। राजा भी उसके प्रति आकर्षित हो चुका था। उसके साथ लग्न कर वह अपनी राजधानी लौटता है।

एक समय स्वर्णबाहु की आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। जिसके माध्यम से छ. खंड पर विजय प्राप्त की। वह चक्रवर्ती बना। सुखमय जीवन यापन करने लगा।

एक बार भुवनभानु नामक तीर्थंकर भगवान विहार करते हुए पधारे। यह समाचार मिलते ही उसे अपार आनन्द हुआ। स्वर्णबाहु वंदन और धर्मश्रवण के लिए प्रभु के चरणों मे पहुंचा।

प्रभु की वैराग्य वाणी से उसे संसार की असारता का बोध हुआ। भगवान की वाणी से प्रतिबुद्ध होकर राजा ने प्रभु के सान्निध्य मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। वे जप-तप करने लगे। उग्र साधना करने लगे।

एक दिन स्वर्णबाहु मुनि भयानक जंगल में सूर्य के सामने खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। उनके चेहरे पर शान्ति और सौम्यता टपक रही थी।

उसी जंगल में कमठ का जीव एक सिह के रूप में उत्पन्न हुआ था। मुनि को देखा तो उसके हृदय मे द्वेष की आग भडक उठी। वह मुनि पर झपटा। नखों से उनके शरीर को चीर दिया। खून की धारा वहने लगी। अपार वेदना होने पर भी वे समता में लीन रहे। शेर के प्रति तनिक भी क्रोध न आया। उन्होंने समाधि से मौत प्राप्त की। वे दसवें देवलोक में गये। शेर अपनी आयु पूर्ण कर नरक को प्राप्त हुआ।

पार्श्व कुमार का प्रभाव

काशी जनपद की प्रसिद्ध नगरी वाराणसी थी। यह राजधानी भी थी। अध्यात्म, कला-संस्कृति एवं उद्योग का यह प्रमुख केन्द्र थी। यह वैभव और समृद्धि के शिखर पर पहुंची हुई थी। उस नगरी के राजा थे अश्वसेन।

अश्वसेन की महारानी वामा ने एक रात चौदह महा स्वप्न देखे। इन दिव्य महास्वप्नो को देखकर रानी को परम प्रसन्नता हुई। रानी उसी समय महाराजा के समीप गई। वह नम्रता से कहने लगी। महाराज ! आज-रात्रि को मैने चौदह महास्वप्न देखे है।

रानी से दिव्य महास्वप्नों का वर्णन श्रवण कर राजा को अपार प्रसन्नता हुई। उसका रोम-रोम खिल गया। वह भावविभोर हो कहने लगा "देवानुप्रिय ! तुम महाभाग्यशालिनी हो। इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम्हारी कुक्षी से एक पुत्र रत्न का जन्म होगा। वह महान पराक्रमी महापुरुष होगा। मेरा यह विश्लेषण है, अनुमान है।"

नवमास परिपूर्ण होने पर रानी ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह अत्यन्त तेजस्वी एवं रूपवान था। नीलोत्पल कमल की भांति उसके शरीर की कांति कुछ नीली छवि लिए हुए थी। मार्गशीर्ष वदि १०वी की मध्य रात को प्रभु का जन्म हुआ। छप्पनदिक् कुमारियों ने आकर प्रभु का सूतिकर्म किया।

इन्द्रमहाराजा ने भी लाखों देव-देवियों के साथ प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया, वह प्रभु को मेरू पर्वत पर ले गए। वहां गगा आदि नदियो का पवित्र जल लाया गया। उसमे औषधि मिश्रित कर सुगंधित जल से प्रभु को अभिषेक करने की तैयारी की। तत्पश्चात् लाखो स्वर्ण एवं चांदी के कलशो से प्रभु का अभिषेक किया गया।

प्रभु की माता ने घोर अंधेरी रात मे अपने समीप से गुजरते हुए नाग को देखा, अत प्रभु का नाम पार्श्व रखा गया।

पार्श्व कुमार जब युवा हुए तो वह विवाह के वंधन से मुक्त रहना चाहते थे किन्तु एक घटना से उनके जीवन मे मोड आया। उन्हे विवाह का वंधन स्वीकार करना ही पडा। एक वार राजा अश्वसेन राज्यसभा मे वैठे थे। उसी समय एक दूत राजा के समीप आया।

राजा ने दीक्षा ले ली।

स्वर्णबाहु न्यायनीति से प्रजा का पालन करने लगे। एक दिन किसी ने राजा को घोड़े भेट किए। घोड़े बलवान और सुन्दर थे।

राजा एक बलशाली घोड़े पर सवार हो गया। घोडा विपरीत शिक्षा वाला था। लगाम खीचने से चलता और ढीली छोड़ने पर रुक जाता। यह रहस्य राजा को ज्ञात नही था। सवार के बैठते ही वह तीव्रगति से दौड़ने लगा। ज्यों-ज्यों राजा लगाम खीचता घोड़े की गति बढती जाती। थोडी ही देर मे राजा बहुत दूर निकल गया दोनों ही थककर चूर-चूर हो गये थे।

राजा ने निराश हो लगाम छोड़ दी। घोड़ा रुक गया। राजा ने चारों ओर देखा वृक्ष ही वृक्ष और भयानक जंगल दृष्टिगोचर हुआ। राजा को प्यास बडे जोरो से लगी थी। पास ही एक आश्रम दृष्टिगोचर हुआ। वह उसके निकट गया। कुलपति ने उसका भावभरा स्वागत किया। राजा का आतिथ्य किया गया। कुलपति के पास खड़ी एक कन्या ने भी राजा को नमस्कार किया। राजा ने उसका परिचय पूछा।

कुलपति ने बताया—यह रत्नपुर के राजा खेचरेन्द्र की पुत्री पद्मावती है। इसके जन्म के कुछ समय बाद पिता का निधन हो गया। शत्रुओ ने राज्य छीन लिया। पुत्री की रक्षा के लिए माता रत्नावती ने यहां आश्रय लिया है।

कुलपति ने कहा—राजन्! इस कन्या के भाग्योदय से आपका आगमन हुआ है।

इस कन्या के संबंध में किसी विशिष्ट ज्ञानी ने यह बताया था कि इसका स्वामी स्वयं आयेगा और उसे रानी बनाकर ले जायेगा। ज्ञानी भविष्य के दृष्टा होते है। उसका वचन मिथ्या नही होता। इनके वचन सत्य रूप में दृष्टिगोचर हो रहे है। आप इसके साथ विवाह अवश्य करें। राजा भी उसके प्रति आकर्षित हो चुका था। उसके साथ लग्न कर वह अपनी राजधानी लौटता है।

एक समय स्वर्णबाहु की आयुधशाला मे चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। जिसके माध्यम से छ. खड पर विजय प्राप्त की। वह चक्रवर्ती बना। सुखमय जीवन यापन करने लगा।

एक बार भुवनभानु नामक तीर्थकर भगवान विहार करते हुए पधारे। यह समाचार मिलते ही उसे अपार आनन्द हुआ। स्वर्णबाहु वंदन और धर्मश्रवण के लिए प्रभु के चरणों में पहुंचा।

प्रभु की वैराग्य वाणी से उसे संसार की असारता का बोध हुआ। भगवान की वाणी से प्रतिबुद्ध होकर राजा ने प्रभु के सान्निध्य मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। वे जप-तप करने लगे। उग्र साधना करने लगे।

एक दिन स्वर्णबाहु मुनि भयानक जंगल में सूर्य के सामने खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। उनके चेहरे पर शान्ति और सौम्यता टपक रही थी।

उसी जंगल में कमठ का जीव एक सिह के रूप में उत्पन्न हुआ था। मुनि को देखा तो उसके हृदय मे द्वेष की आग भड़क उठी। वह मुनि पर झपटा। नखों से उनके शरीर को चीर दिया। खून की धारा बहने लगी। अपार वेदना होने पर भी वे समता में लीन रहे। शेर के प्रति तनिक भी क्रोध न आया। उन्होने समाधि से मौत प्राप्त की। वे दसवें देवलोक में गये। शेर अपनी आयु पूर्ण कर नरक को प्राप्त हुआ।

पार्श्व कुमार का प्रभाव

काशी जनपद की प्रसिद्ध नगरी वाराणसी थी। यह राजधानी भी थी। अध्यात्म, कला-संस्कृति एवं उद्योग का यह प्रमुख केन्द्र थी। यह वैभव और समृद्धि के शिखर पर पहुंची हुई थी। उस नगरी के राजा थे अश्वसेन।

अश्वसेन की महारानी वामा ने एक रात चौदह महा स्वप्न देखे। इन दिव्य महास्वप्नों को देखकर रानी को परम प्रसन्नता हुई। रानी उसी समय महाराजा के समीप गई। वह नम्रता से कहने लगी। महाराज ! आज रात्रि को मैने चौदह महास्वप्न देखे है।

रानी से दिव्य महास्वप्नों का वर्णन श्रवण कर राजा को अपार प्रसन्नता हुई। उसका रोम-रोम खिल गया। वह भावविभोर हो कहने लगा "देवानुप्रिय ! तुम महाभाग्यशालिनी हो। इन स्वप्नों के प्रभाव से तुम्हारी कुक्षी से एक पुत्र रत्न का जन्म होगा। वह महान पराक्रमी महापुरुष होगा। मेरा यह विश्लेषण है, अनुमान है।"

नवमास परिपूर्ण होने पर रानी ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह अत्यन्त तेजस्वी एव रूपवान था। नीलोत्पल कमल की भांति उसके शरीर की कांति कुछ नीली छवि लिए हुए थी। मार्गशीर्ष वदि १०वी की मध्य रात को प्रभु का जन्म हुआ। छप्पनदिक् कुमारियों ने आकर प्रभु का सूतिकर्म किया।

इन्द्रमहाराजा ने भी लाखो देव-देवियो के साथ प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया, वह प्रभु को मेरू पर्वत पर ले गए। वहां गंगा आदि नदियों का पवित्र जल लाया गया। उसमे औषधि मिश्रित कर सुगंधित जल से प्रभु को अभिषेक करने की तैयारी की। तत्पश्चात् लाखो स्वर्ण एवं चांदी के कलशो से प्रभु का अभिषेक किया गया।

प्रभु की माता ने घोर अंधेरी रात मे अपने समीप से गुजरते हुए नाग को देखा, अतः प्रभु का नाम पार्श्व रखा गया।

पार्श्व कुमार जब युवा हुए तो वह विवाह के वंधन से मुक्त रहना चाहते थे किन्तु एक घटना ने उनके जीवन में मोड आया। उन्हे विवाह का वधन स्वीकार करना ही पडा। एक बार राजा अश्वसेन राजसभा मे बैठे थे। उसी समय एक दूत राजा के समीप आया।

अभिवादन कर उसने कहा- "महाराज ! मैं कुश स्थल नगर के राजा प्रसेनजित का दूत हूं। कुछ बात निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ हूं।"

राजा से अनुमति पाकर वह कहने लगा "राजा प्रसेनजीत को एक अत्यंत रूपवती प्रभावती नामक कन्या है। वह राजा को अतीव प्रिय है।"

"कलिंग के राजा यवन ने उसकी मांग की है। विधर्मी को कन्या देना मौत से अधिक दुख की बात है। कुमार की कीर्ति को सुनकर उसने उसे ही जीवन साथी के रूप में चुना है।"

"उधर राजा यवन हमारे महाराज को दबा रहा है या तो कन्या दो या युद्ध करो। अतः महाराज! आपसे विनम्र प्रार्थना है कि नगर एवं राजकुमारी की रक्षा करें।"

यह सुनते ही उन्होंने कहा—अन्याय का प्रतिकार करना हमारा धर्म है। दुष्ट को दण्ड देना भी धर्म है।

शीघ्र जाओ। अपने महाराजा को शुभ समाचार दो, हम आपकी रक्षा के लिए अपनी सेना के साथ शीघ्र ही आ रहे हैं। राजा ने तैयारी का आदेश दे दिया और स्वयं भी तैयार होने लगे।

पार्श्व कुमार ने कहा—पिताजी पुत्र के होते हुए आपका जाना अनुचित है। मेरे लिए यह शर्म की बात है। कृपया मुझे आज्ञा दीजिये मैं जाने को तैयार हूं।

पिता की आज्ञा से पार्श्वकुमार सेना के साथ आगे बढ़ने लगे। वे शांतिप्रिय और दयालू थे। किन्तु अन्याय का प्रतिकार भी जरूरी था। देश में शांति की स्थापना हेतु कदम उठाना आवश्यक था।

पार्श्वकुमार की विशाल सेना देखकर शत्रु राजा भयभीत हो गया। कुमार ने भी यवन राजा को सावधान कर दिया। उन्होंने कहा—यदि जीव की रक्षा चाहते हो, प्रजा का हित चाहते हो, तो क्षमा मांग लो, अन्यथा हम भी युद्ध को तैयार है।

यवन राजकुमार के चरणों में आ गया। शस्त्र झुका दिए और क्षमा मांग ली। बिना युद्ध किए दोनो राजाओं में कुमार ने समाधान करवा दिया। यह कुमार की चमत्कारिक शक्ति थी कि बिना रक्तपात के कार्य हो गया।

प्रसेनजित के आग्रह से अश्वसेन ने प्रभावती के विवाह की बात स्वीकार कर ली। वाराणसी मे धूमधाम से पार्श्वकुमार के साथ प्रभावती का लग्न हुआ। प्रभावती का अपूर्व लावण्य। मधुर स्नेह। समस्त सुख पाकर भी वह जीवन में रिक्तता अनुभव कर रहे थे। जो रिक्तता भौतिक सुखों से भरी नही जा सकती थी। उनके मन में आध्यात्मिक शांति की भावना थी। वे संसार में अनासक्त होकर रहने लगे।

एक दिन राजकुमार ने सैकड़ों लोगों को नगर के बाहर जाते हुए देखा। राजकुमार ने आश्चर्य से

[illegible]वक को पूछा—ये लोग कहां जा रहे है । उसने कहा—कुमार ! नगर के बाहर एक योगी आया हुआ है । [illegible]पने चारो ओर अग्नि जलाकर वह बैठा हुआ है । लोग उसके दर्शन के लिए जा रहे हैं । कुमार घोड़े पर [illegible]ठकर उस तपस्वी की ओर चल पड़े । दो चार सेवक भी साथ गये ।

थोड़े समय में ही राजकुमार सेवकों के साथ तपस्वी के पास पहुंच गये । चारों ओर जलती हुई अग्नि के बीच वह बैठा हुआ था । कुमार ने अवधिज्ञान से देखा कि एक लकड़ी में नाग जल रहा है । उन्होंने तपस्वी से कहा—"यह क्या कर रहे हो ?" यह तुम्हारा अज्ञान तप है । इस आग में प्राणियों की हत्या हो रही है । दया शून्य धर्म से कल्याण नहीं हो सकता ।"

कुमार की बातों से वह लाल-पीला हो गया । वह क्रोध में बोला—"राजकुमार तुम तो हाथी, घोड़ों पर चढ कर क्रीडा करना जानते हो, तुम्हें धर्म की बातों का क्या पता ?"

कुमार ने कहा—"धर्म की बातें हर कोई जान सकता है और आचरण कर सकता है, किन्तु धर्म के नाम पर हिंसा को कैसे सहा जा सकता है ।"

कुमार ने अधिक विवाद में पड़ना ठीक नहीं समझा और सांप को वचाने के लिए उन्होंने सेवक को आज्ञा दी—उस लकड़ी को बाहर निकालो । उसने वैसे ही किया, फिर सावधानी से उसे चीरने पर एक झुलसता हुआ नाग बाहर निकला । वह अंतिम सांस ले रहा था ।

कुमार ने नवकार मंत्र श्रवण करवाया । उसे सुंदर आराधना कराई । नवकार मंत्र के प्रभाव से वह धरणेन्द्र देव बना ।

लकडी में नाग को देखकर कमठ का मुख मलीन हो गया । लोग भी उसकी तर्जना करने लगे । तप करता है किन्तु मन मे दया का अंश भी नहीं है ।

इस अपमान से कमठ तिलमिला उठा । राजकुमार पार्श्व पर अत्यन्त क्रोधित हुआ । कष्ट मन [illegible] उसने नगर का परित्याग कर दिया । वह दूर जंगलों में चला गया । कठोर अज्ञान तप कर जीवन यापन किया । अशुभ एवं रौद्र भावों में मर कर वह मेघमाली नामक असुर देव बना ।

कमठ की दुष्टता, प्रभु की समता

संयम जीवन का सार है, उसके बिना जीवन का उद्धार नहीं है । संयममय जीवन ही जीवन है । ऐसा ही जीवन का परम पथ है ।

संसार के प्रति अनासक्त प्रभु ने संयम ग्रहण कर लिया । एकांत स्थानों में, वनों में, गुफाओं में प्रभु ध्यान करने लगे । एकाकी विहार करने लगे । कहीं उद्यान, कहीं श्मशान [illegible] । वे समतायोगी थे ।

एक बार विहार करते हए प्रभु तापस के आश्रम के पास में पधारे ध्यान में खडे प्रभु को मेघमाली ने देखा। देखते ही पुराना वैर जाग उठा। क्रोधावेश में वह उनके पास आया।

मन ही मन सोचने लगा- इस राजकुमार ने मेरी मिट्टी पलीत की थी। आज बदला लेने का अपूर्व अवसर है। अच्छा मौका है। आग बबूला हो कर मेघमाली पार्श्वनाथ प्रभु पर टूट पडा। हिसक सिह के रूप में प्रभु की देह को काटने लगा।

हाथी का रूप बना कर प्रभु को सूंड से पकड कर गेंद की तरह आकाश में उछालने लगा और भूमि पर पटकने लगा। किन्तु पार्श्व प्रभु ध्यान में विचलित नहीं हुए वे पुन: ध्यानस्थ खडे हो गये। बिच्छु और सांप के रूप बना कर प्रभु को डंक मारे। विभिन्न प्रकार की यातनाऐं दी। किन्तु प्रभु जरा भी विचलित न हुए।

प्रभु की प्रशांत मुख मुद्रा देख कर मेघमाली और भी भडक उठा। वह प्रभु पर पानी बरसाने लगा। चारो ओर काली घटाएं छा गई। भयंकर गर्जना होने लगी। तेज हवा के साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। देखते ही देखते चारों ओर पानी ही पानी हो गया।

बड़े बड़े पेड़, आश्रम पशु पक्षी भी पानी मे डूब गये। पानी बढ़ता हुआ प्रभु की नाक तक आ गया। प्रभु फिर भी ध्यान में स्थिर थे। मेघमाली अत्यन्त खुश हो नाचने लगा। सोचने लगा-आज इसे जलमग्न कर दूं। अपने आप ही इसकी जल समाधि हो जायेगी।

उस समय नागकुमारों के इन्द्र धरणेन्द्र ने प्रभु पर भयंकर उपसर्ग (उपद्रव) देखा, बिजली सी गति से वह प्रभु के पास पहुंचा। सांप का रूप बनाया और विराट सात फन फैला कर प्रभु के मस्तक पर छत्र बना दिया। कमलासन पर प्रभु को ऊपर उठा लिया। धरणेन्द्र को प्रभु की सेवा में देखकर उसकी इच्छा पर पानी फिर गया।

धरणेन्द्र ने कमठ को ललकारते हुए कहा- "पापी। तीन लोक पूज्य प्रभु की पूजा के बदले उन्हे परेशान कर रहा है। प्रभु पर उपद्रव कर स्वयं का पतन क्यों कर रहा है। यह शर्मनाक कृत्य का परित्याग कर अन्यथा इसका नतीजा अच्छा नही होगा। प्रभु जल में डूबने वाले नही है। तूं स्वयं ही भव जल में डूब जायगा।

धरणेन्द्र की फटकार से मेघमाली भयभीत होकर भाग खडा हुआ। प्रभु पर या उपसर्ग शान्त हो गया। उपद्रव दूर हो गया। धरणेन्द्र प्रभु की स्तुति करने लगा। प्रभु चरणों में वह बैठ गया। प्रभु की भक्ति करने लगा।

प्रभु ध्यान में लीन थे। धरणेन्द्र की सेवा और कमठ के उपद्रव से प्रभु समभाव मे रहे। दोनों घटनाओ से उनके मन मे धरणेन्द्र के प्रति प्रेम और कमठ के प्रति क्रोध नही आया। वे समताभाव से

साधना मे स्थिर रहे। यह थी साधना की पराकाष्ठा। साधना की चरम परिणति समता है। समतायोग है।

दीक्षा के पश्चात् प्रभु ने अनेक प्रकार के उपद्रव, उपसर्ग एवं कष्ट सहन किए। तिरासी दिन तक प्रभु ने कठोर साधना की। चौरासीवे दिन वाराणसी नगर के बाहर आश्रम पद उद्यान मे धातकी (आंवले) के पेड के निचे प्रभु कायोत्सर्ग करने लगे। ध्यान करने लगे। शुभध्यान से कर्मो का क्षय हो गया। चार घाती कर्म के टूटते ही चैत्रमास की कृष्णपक्ष की चुतर्थी के दिन चंद्र के विशाखा नक्षत्र में योग होने पर पूर्वान्हकाल मे पार्श्व प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

राजा अश्वसेन वामारानी और प्रभावती को प्रभु के केवलज्ञान की सूचना मिलते ही अपार आनन्द हुआ। नगर के हजारों नर-नारी प्रभु दर्शन को उमड़ पडे। प्रभु ने कषायो के उपशमन के लिए देशना दी। जनता ने शान्ति और क्षमा की साधना का संकल्प किया। राजा, रानी और प्रभावती ने दीक्षा ग्रहण की। प्रभु के आर्यदत्त आदि दश गणधर, मुख्य शिष्य हुए।

भारत मे अहिसा, सत्य, अपरिग्रह का प्रभु ने संदेश दिया। शांति का पाठ पढ़ाया हजारों लाखो लोगो को प्रतिबोध दिया। सत्पथ दिखाया। आत्मशुद्धि और कषाय त्यागने पर भी प्रभु ने बल दिया। अपना निर्वाण समय निकट जानकर सम्मेतशिखर पधारे। वहां प्रभु ने अनशन किया। सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर श्रावण मास की शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ जी ने निर्वाणपद प्राप्त किया। घाती और अघाती सर्वकर्मो से रहित हो गये।

सिद्ध बुद्ध और मुक्त बन गये। पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु की आज भी अपार महिमा है। प्रभु पार्श्व की उपासना करने वाला भक्त मनोवांछित फल पाता है। प्रभु भक्ति में अपार शक्ति है। प्रभु भक्ति से आपत्ति संपत्ति मे बदल जाती है। भय संकट एवं कष्ट टल जाते है।

श्री पार्श्वनाथ स्तवन

प्रभु पार्श्वनाथ मुझ पकरो हाथ,
प्रभु मै अनाथ मुझ करो सनाथ ॥अंचली ॥

तुम प्रभु गुण रतनों के दरिया,
मै हूं प्रभु अवगुण से भरिया।
करो कृपा गुण दान नाथ ॥१ ॥

धनवंतरी प्रभु साचो कहायो,
मैं रोगी तुम शरणे आयो।
करो निरोग देकर के क्वाथ ॥२ ॥

मोह माया ममता दुःखदाई,
इन से तू ने प्रीत लगाई।
त्याग न कर त्यज उनकी बाथ ॥३ ॥

तू चेतन है मेरे जैसा,
मैने कियो कर काम तू ऐसा।
भेद नहीं फिर अपने साथ ॥४ ॥

आतम लक्ष्मी हर्षे, हर्षे,
रूप अनुपम अपनो बरसे।
वल्लभ वल्लभ मिलियो हाथ ॥५ ॥

स्तुति

धूनी में धू-धू जलता था, आत्म ज्ञान से प्रभु ने जाना,
महामंत्र नवकार भुनाकर, स्वर्ग दिलाया पाप भगाकर,
धरणेन्द्र और पद्मावती, तेरी कृपा से हुए,
ऐसे प्रभु की वंदना से पाप सारे धुल गये।

प्रार्थना

पास जिनंदा वामानंदा, गर्भ में जब आवीया,
सपना देख अर्थ विशेष, सारा जगत गुण गाविया,
जिनवर जाया सुर हुलराया, हुआ रमणी प्रिये,
नेमि प्रभु के चित्र देखे, विलोकित व्रत लिए

परिचय

१ माता कानाम	वामारानी
२ पिता का नाम	अश्वसेन राजा
३ च्यवन कल्याणक	चैत्र कृष्णा-४ काशी बनारस
४ जन्म कल्याणक	पौष कृष्णा-१० काशी बनारस
५ दीक्षा कल्याणक	पौष कृष्ण-११ काशी बनारस
६ केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र कृष्णा-४ भोलुपुर काशी
७ निर्वाण कल्याणक	श्रावण शुक्ला-८ सम्मेत शिखर
८ गणधर	सख्या ८ प्रमुख शुभ
९ साधु	सख्या १६ हजार प्रमुख केशी गणधर
१० साध्वी	सख्या ३८ हजार प्रमुख पुष्प चूला
११ श्रावक	सख्या १ लाख ६४ हजार प्रमुख सुद्योत
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख २९ हजार प्रमुख सुनन्दा
१३ ज्ञानवृक्ष	घातकी
१४ यक्ष अधिष्ठायक देव	पार्श्व
१५ यक्षिणी अधिष्ठायिकादेवी	पद्मावती
१६ आयुष्य	१०० वर्ष
१७ लछन (चिन्ह-ई्व)	सर्प
१८ च्यवन किस देवलोक से	प्राणत (१०वा)
१९ तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन	आनद के भव मे
२० पर्वभव कितने ?	१०
२१ छद्मस्थावस्था	८३ दिन
२२ गृहस्थावस्था	३० वर्ष
२३ शरीर वर्ण (आभा)	नील
२४ दीक्षा दिन की शिबिका	विशाला
२५ नाम अर्थ	मा ने पास मे जाते हुए साप को देखा
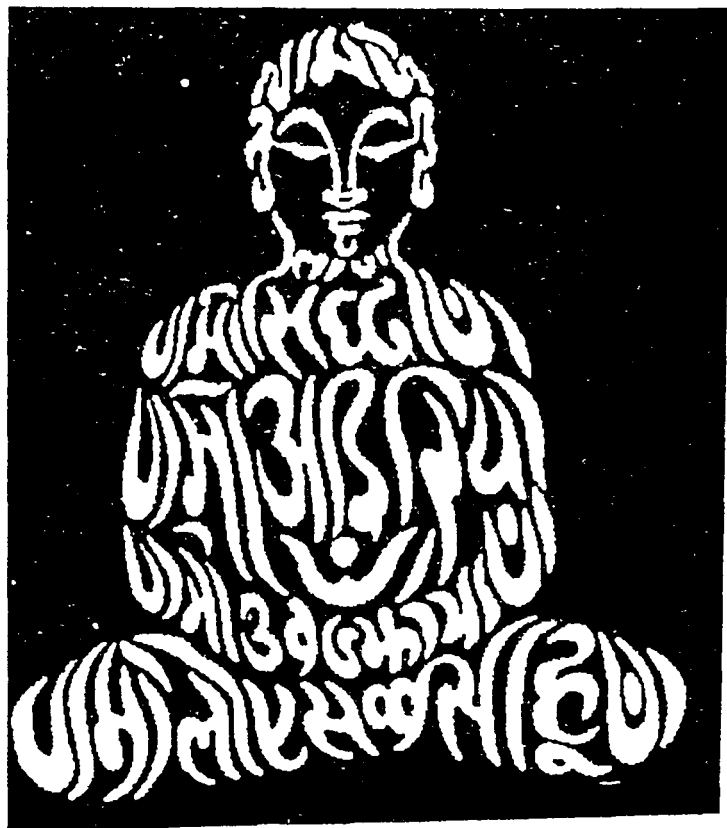
॥ श्री वर्द्धमानस्वामी ॥

SHRIMATEVIR NATHAYA SANATHAYAD BHUTSHRIYA
MAHANANDA SARORAJ MARALAYARHATE NAMAH

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद्भुतश्रिया ।
महानन्दसरोराज-मरालायार्हते नमः ॥२४॥

श्री वर्द्धमान जिन देववंदन
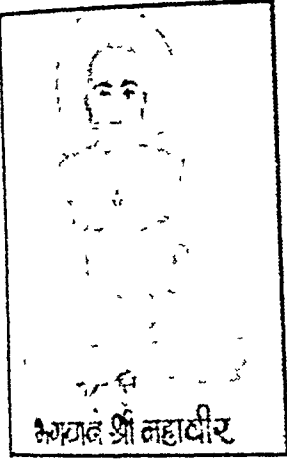
चैत्यवंदन—सिद्धारथ सुत वंदिये, त्रिशला नो जायो,
क्षत्रिय कुंडमा अवतर्यो, सुर नरपति गायो ॥१ ॥

मृगपति लंछल पाकुले, सात हाथनी काया,
बहोत्तर वरसनुं आउखुं, वीर जिनेश्वर राया ॥२ ॥

खिमाविजय जिनरायना अे, उत्तम गुण अवदात,
सात बोल थी वर्णव्यो, पद्मविजय विख्यात ॥३ ॥

श्री भगवान महावीर स्वामी

इस जबूद्विप के पश्चिम महाविदेह की महावप्र नामक विजय में जयंति नामक नगरी है उस नगरी में शत्रुदमन नामक राजा था। वहां पृथिवी प्रतिष्ठानपुर नामक प्रसिद्ध गांव था। जिसमें नयसार नामक एक मुखिया था। जंगल मे लकड़ियां लेने के लिए गया। वहां सार्थवाह से भटके हुए मुनियों का दर्शन हुआ। मध्यान्ह समय भोजन का समय हुआ। उस समय उसने मुनि को आहार-पानी बोहराया।

दुपहर मे वह मुनि को रास्ता दिखाने गया। जंगल के बाहर तक उसने रास्ता दिखाया। दूर गाव दिखने पर अपने गांव जाने की नयसार ने अनुमति मांगी।

मुनियो ने उसकी योग्यता को देखा। योग्य आत्मा जानकर मुनियों ने कहा तूने द्रव्यमार्ग बताया है हम मोक्ष का मार्ग बताते है।

मुनियो ने उसे मानव जीवन उत्थान का मार्ग बताया। धर्म का मर्म बताया। नवकार मंत्र सिखाया। नयसार मे श्रद्धा जगी। मुनि समागन से उन्होंने समकित की प्राप्ति की। धर्म की आराधना मे आयु पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देव हुए।

वहां से च्यवकर वह विनिता नामक नगरी में श्री ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्तीभरत का पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया मरीचि। उसने आदिनाथ प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की। एक बार ग्रीष्म ऋतु के ताप से उसे अत्यंत पीडा हुई। उस समय उसके मन की विचारधारा बदली।

उसने सोचा मैं व्रत पालने में असमर्थ हूं। एवं व्रत का त्याग करना भी लज्जानजक है, अत: मैं त्रिदंडी संन्यासी का वेश ग्रहण करता हूं। यहसोचकर उसने पांव में खडाऊं, शिर पर छत्र एवं पीत वस्त्र धारण किए। त्रिदंडी होकर भी वह प्रभु एवं उनके परिवार के साथ ही रहने लगा।

एक बार चक्रवर्ती भरत ने प्रभु आदिनाथ से पूछा- हे स्वामी ! इस पर्षदा मे भावी तीर्थकर की कोई आत्मा है ? प्रभु ने प्रत्युत्तर दिया हे भरत ! तेरा पुत्र मरीचि जो त्रिदंडी बन गया है, वह इस भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर मे श्री श्रेयांस तीर्थकर के तीर्थ मे प्रथम वासुदेव होगा। महाविदेह की मुका नगरी मे छः खंड का स्वामी प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। एवं इसी भरत क्षेत्र के क्षत्रियकुंड गाम नगर मे श्री वर्धमान नामक चौवीशवे तीर्थकर होगे।

तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती मरीचि के पास आए और प्रभु के वचन सुनाते हुए कहा- हे मरीचि तू इस भरत क्षेत्र में अन्तिम तीर्थकर होगा अत: मै तुझे वंदना करता हूं, किन्तु तेरे त्रिदडी वेश को मेरा वंदन नही है। यह कहकर चक्रवर्ती ने भक्ति से उन्हे तीन प्रदक्षिणा देकर वदना की। फिर पुन: प्रभु को वंदना कर भरत चक्री अपने नगर मे गए। भरत की बात सुनकर मरीचि अहंकार से बोले- मै यहां प्रथम वासुदेव बनुंगा। मुका नगरी मे चक्रवर्ती एवं अन्तिम तीर्थकर भी होऊंगा।

मेरे पितामह प्रथम तीर्थकर है। मेरे पिता सर्व चक्रवर्तीयो में प्रथम है एवं सर्व वासुदेवो मे मै प्रथम वासुदेव होने वाला हूं, अत: मै कितना महान हूं। अहो मेरा कुल कितना उत्तम है। इस प्रकार अहकार कर उन्होने नीच गोत्र कर्म का उपार्जन किया।

एक बार मरीचि अति बीमार हो गया। पीडित होने पर भी उसकी किसी ने सेवा नही की। उस समय उसने सोचा रोग मुक्त होने पर एक सेवाभावी शिष्य बनाऊंगा। जब वे निरोगी हुए उनके पास एक कपिल नामक कुल पुत्र आया। मरीची ने उसे प्रतिबोधित किया। तब उसने कहा-क्या आपके मत में भी धर्म है। उस समय मरीचि ने कहा- अरिहंत के पास भी धर्म है। मेरे पास भी धर्म है।

इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपणा से मरीचि ने कोटा कोटी सागरोपम प्रमाण भवभ्रमण बढा दिया। कपिल उनका शिष्य बना। उसके भी अनेक शिष्य हुए। मरीचि आयुष्य पूर्ण कर ब्रह्मलोक मे देव हुआ। कपिल भी मरकर ब्रह्मलोक मे पैदा हुआ।

मरीचि की आत्मा दशसागरोपम की आयु समाप्त होने पर ब्रह्मदेवलोक से च्यवकर कोल्लाक नामक गांव मे कौशिक नामक ब्राह्मण हुआ। अस्सी लाख पूर्व की आयु वाला वह त्रिदंडी बना और मरकर स्थुण नामक गाव मे पुष्पमित्र नामक ब्राह्मण हुआ। अन्त में त्रिदंडी हुआ और बहत्तर लाख पूर्व वर्ष की आयु पूर्ण कर सौधर्मदेवलोक मे मध्यम आयु वाला देव हुआ।

वहा से च्यवकर चैत्य नामक गांव में अग्निधोत नामक उत्तम ब्राह्मण हुआ। चौसठ लाख पूर्व की आयु थी। अन्त मे त्रिदंडी बने। आयु पूर्ण कर इशान देवलोक में मध्यम देवलोक में मध्यम आयु वाले देव हुए। वहां से च्यवकर मंदिर नामक गांव में छप्पन लाख पूर्व की आयु वाला अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ। अन्त में सन्यासी बना। मरकर वह सनत्कुमार देवलोक में मध्यम आयु वाला देव हुआ। वहां से च्यवकर वह श्वेतांबी नगरी में चवांलीश लाख पूर्व की आयु वाला भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ। अंत मे

संन्यासी हुआ, मरकर महेन्द्र नामक देवलोक में मध्यम आयु वाला देव हुआ।

वहां से च्यवकर भव भ्रमण कर राजगृह नगर में चौतीस लाख पूर्व की आयु वाला स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। अन्त में संन्यासी होकर मरा और ब्रह्मलोक देवलोक में मध्यम स्थिति वाला देव हुआ। वहा से च्यवकर अनेक भव किए।

तत्पश्चात् राजगृह नगर मे विश्वनंदी नामक राजा था। उसे प्रियंगु नामक पत्नी थी। विशाखानंदी नामक उन्हे पुत्र हुआ। इस राजा का छोटा भाई विशाखाभूति नामक युवराज था। उसकी पत्नी का नाम था धारिणी। मरीचि की आत्मा धारिणी के गर्भ में उत्पन्न हुई। जन्म होने पर उसका नाम रखा गया विश्वभूति। वह क्रम से युवावस्था को प्राप्त हुआ।

एक बार विश्वभूति पुष्पकरंड नामक उद्यान में स्त्रियों के साथ क्रीडा कर रहा था। विशाखानंदी भी क्रीड़ा करने की इच्छा से उस उद्यान में गया। भीतर विश्वभूति को जानकर वह बाहर ही खड़ा रहा।

विशाखानंदी की बात उसकी माता प्रियंगु को दासीयो ने बताई। पुत्र की स्थिति जानकर माता कोपायमान हुई। कोपायमान रानी की इच्छा जानकर राजा ने कपट से सभा मे कहाकि पुरुषसिंह नामक राजा अज्ञानता से हमारी बात नही मानता है अत: उसे जीतने के लिए हम जाते है। यह कहकर राजा ने युद्ध भेरी बजवाई। भेरी सुनकर विश्वभूति क्रीड़ावन से निकलकर राजा के पास आया, राजा को रोका और अनुमति लेकर स्वयं ने प्रयाण किया।

वहां जाने पर पुरुषसिह को आज्ञानुवर्ती जानकर वह पुन: लौट आया। उसकी दी हुई भेट राजा को प्रदान की। पश्चात् वह अपनी प्रियाओं के साथ पुष्पकरंड के उद्यान मे गया। विशाखानंदी भीतर है यह कहकर द्वारपालो ने उसे रोका। माया करके मुझे उद्यान से बाहर निकाला यह सोचकर उसने क्रोध से पास में रहे हुए कोठे के वृक्ष पर मुष्ठि का प्रहार किया। जिससे बहुत फल नीचे गिर गए। कुमार ने द्वारपाल को कहा इसी प्रकार मायावती लोगों के मस्तक का छेदन कर सकता हूं, किन्तु पितृजनो की भक्ति ही बाधक है। रागद्वेष एवं मायामय संसार से उनका मन उठ गया।

सभूति मुनि के पास जाकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उन्हें मनाने के लिए राजा छोटेभाई के साथ गया। उन्हे प्रार्थना की कि हे कुमार तूं राज्य ग्रहण कर। विश्वभूति ने इन्कार कर दिया। गुरु के साथ उन्होंने विहार किया। विश्वनंदी राजा दु:खी होकर घर गया। विश्वभूति मुनि गीतार्थ होने पर गुरु की अनुमति से एकाकी विहार करते हुए मथुरा नगरी मे गए। तप से उनकी काया भी सुख गई थी।

उस समय वहां के राजा की कन्या के साथ विवाह करने के लिए विशाखानंदी भी मथुरा आया था। मासक्षमण के पारने के लिए उन्होंने नगर मे प्रवेश किया। रास्ते मे विशाखानंदी ने उन्हे देखा [illegible] एक गाय ने उन्हे धक्का मारा और गिरा दिया।

उनकी हंसी उडाते हुए विशाखानंदी ने कहा- कोठों के फलों को गिराने की तुम्हारी शक्ति कहा गई। हंसी से रूष्टमान मुनि ने गाय को दो सीगो से पकडक़र आकाश मे उछाला और कहा निर्बल शेर शियार से पराजित नही होता है। तू मेरी हंसी करता है, तो मै नियाणा करता हूं आगामी भव में मै अति बलवान बनु और तेरा विनाश करूं। यह नियाणा कर उन्होने अन्यत्र विहार कर दिया। कोटी वर्ष की आयु पूर्ण कर शुक्र नामक देवलोक मे वे उत्पन्न हुए।

इस भरतक्षेत्र में पोतनपुर नगर में रिपुप्रतिशत्रु नामक राजा था। उसे भद्रा नामक रानी थी। पूर्व महाविदेह की पुंडरीकीणी नगरी में सुबल नामक राजा था। वैराग्य होने पर उसने दीक्षा ग्रहण की। वह मरकर अनुत्तर विमान मे देव हुआ। वहां से च्यवकर हाथी, चन्द्र ऋषभ एवं सरोवर इन चार स्वपनों से सूचित भद्रारानी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया अचल। यह अचल बलभद्र हुआ।

रानी ने एक पुत्री को भी जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया मृगावती। युवा होने पर रानी ने उसे राजा के पास भेजा। विवाह योग्य जानकर राजा ने नगरजनों से पूछा-पृथ्वी के रत्न का अधिकारी कौन होता है, उन्होंने अधिकार राजा का बताया। नगरजनो की राय के आधार पर राजा ने उससे विवाह किया। प्रजा (पुत्री) का पति होने से प्रजापति नाम से वह प्रसिद्ध हुआ।

इस कार्य से लज्जित बनी हुई भद्रा रानी पुत्र सहित दक्षिण देश मे चली गई। वहां अचल बलभद्र ने माहेश्वरी नामक नगरी बसाई। माता को वहां रखकर वह पिता के पास गया। विश्वभूति की आत्मा भी महाशुक्र से च्यवकर प्रजापति राजा की रानी मृगावती की कुक्षी में पैदा हुआ।

वासुदेव के सूचक शेर, अभिषेक, कुंभ, समुद्र, सूर्य, अग्नि एवं रत्न राशि से सात स्वप्न माता ने देखे। उसकी पीठ में तीन बांस का आकार था। अत: उनका नाम त्रिपृष्ठ रखा। अचल के साथ खेलता हुआ त्रिपृष्ठ प्रथम वासुदेव युवा वस्था को प्राप्त हुआ। विशाखानंदी की आत्मा भी भवभ्रमणकर तुग नामक पर्वत पर शेर के रूप मे पैदा हुई। वह पास के शंखपुर नगर में उपद्रव करने लगा।

उस समय रत्नपुर नगर में प्रतिवासुदेव हयग्रीव नामक राजा था। उसने एक बार ज्योतिषी से पूछा- मेरी मौत किससे होगी। तब उसने कहा- चंडवेग नामक तुम्हारे दूत का तिरस्कार करेगा। एवं शंखपुर के पास के पर्वत पर रहने वाले शेर को मारेगा, वह व्यक्ति तुम्हे मारने वाला होगा।

यह सुनकर राजा ने जानने का उपाय किया। तुंग पर्वत के पास शंखपुर में उसने चावल का धान बोया। उसकी रक्षा के लिए वह क्रम से राजाओ को आज्ञा देने लगा।

प्रजापति राजा के दोनों कुमारों को बलवान जानकर शंकालु राजा ने किसी कारण से चंडवेग दूत को वहां भेजा।

चंडवेग दूत जैसे ही वहा पहुंचा। उस समय प्रजापति राजा परिवार के साथ मधुर संगीत का आनद

ले रहा था। चंडवेग दूत को देखकर राजा खड़ा हो गया। जिससे रंग में भंग हुआ। त्रिपृष्ठ और अचल ने मंत्रियो से पूछा यह कौन है ? मंत्रियों ने कहा- हमारे स्वामी अश्व ग्रीव राजा का यह मुख्य दूत है।

दूसरे राजा ने सम्मान के साथ दूत को विदा किया। महाबली त्रिपृष्ठ ने बड़े भाई के साथ रास्ते मे दूत का पीछा किया। रंग में भंग करने के कारण बीच रास्ते में दूत को रोका और सिपाहियो से पिटवाया। अश्व ग्रीव राजा को दिया गया उपहार भी त्रिपृष्ठ ने ले लिया।

प्रजापति को ज्ञात हुआ कि पुत्र ने दूत का अपमान किया है, तो उसने दूत को पुन: बुलवाया और उसका सम्मान किया। राजा ने निवेदन किया कि यह घटना आप स्वामी को न कहे।

चंडवेग के दूत के जाने के पूर्व ही अश्वग्रीव राजा को दूत के तिरस्कार का पता लग गया, अत: भय के कारण चंडवेग ने सत्यबात प्रकट कर दी। क्रोधायमान राजा अश्वग्रीव ने प्रजापति राजा को खेतो मे उपद्रव करने वाले शेर को मारने के लिए जाने की आज्ञा की।

प्रजापति राजा ने जाने की तैयारी की। उस समय त्रिपृष्ठ और अचल जाने के लिए तैयार हुए। पिता की अनुमति से वे शेर के पास गए। गुफा के पास जाकर उसने शेर को ललकारा शेर गुर्राता हुआ बाहर निकला और त्रिपृष्ठ वासुदेव पर झपटा। त्रिपृष्ठ ने अपने उपर गिरने से पूर्व ही शेर के दोनो जवडे पकड लिए और चीर डाले।

उस समय शेर कांपने लगा। तब वासुदेव के सारथी ने कहा तूं लज्जित मत हो, क्योकि तू जगल का राजा है तो ये भी प्रजा के राजा है। तेरा पराजय सामान्य मानव से नही हुआ है। यह सुनने के वाद शेर की मौत हो गई।

शेर को मारने का एवं चावल का भोजन सुख से करो यह समाचार त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव को भेजा।

अश्वग्रीव समझ गया कि यह मेरा शत्रु है। अब उसे विश्वास हो गया कि त्रिपृष्ठ वासुदेव ही मेरी मृत्यु का कारण वनेगा। वह किसी तरह से उसे मारने का उपाय सोचने लगा। एक वार किसी वात को लेकर अश्वग्रीव के आदेश की त्रिपृष्ठ ने अवहेलना की। अश्वग्रीव ने त्रिपृष्ठ पर आक्रमण कर दिया। दोनो के वीच भयंकर युद्ध हुआ। त्रिपृष्ठ की सेना के सामने अश्वग्रीव की सेना भाग खडी हुई।

अश्वग्रीव ने मारने के लिए चक्र छोडा। त्रिपृष्ठ के भाग्यवल से चक्र उनके पास आकर खड़ा हो [illegible]। उसी चक्र से त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव का मस्तक छेद डाला। पिता प्रजापति एव अन्य राजा आदि ने [illegible] वासुदेव के रूप मे अभिषेक किया। वे प्रथम वासुदेव हुए। अचल प्रथम बलदेव बने।

एक वार त्रिपृष्ठ वासुदेव अपने महल में आनंद से बैठे हुए थे. संध्याकालीन समय था। उस समय [illegible] मधुर गायक आए। उनका मधुर संगीत एव मनोहर गीतो को सुनकर वासुदेव अत्यन्त आनंदित [illegible]

संभी संगीत के स्वरों को सुन झूमने लगे। त्रिपृष्ठ ने शैय्यापालक को आज्ञा दी, जब मुझे निद्रा आ जाए तब गायन बन्द करा देना। आज्ञा प्रदान करने के बाद गायन सुनते-सुनते वासुदेव को नींद आ गई। किन्तु संगीत में आसक्त शैय्यापालको ने संगीत बंद नही कराया।

जब वासुदेव की निद्रा खुली तो उन्हें संगीत सुनाई दिया। आज्ञा की अवहेलना करने वाले शैय्यापालक पर वे रूष्टमान हो गए। उन्होंने राज सेवकों को बुलाया और कहा- शैय्यापालक ने मेरी आज्ञा का पालन नही किया अत: उन्हें भयंकर सजा दी जाए। मेरे आदेश से भी संगीत उन्हें अधिक प्रिय है। अत: इसके कान में गर्म-गर्म तांबा एवं शीशा का रस डाला जाए।

वासुदेव की आज्ञा से शैय्यापालक के कान मे आग में गर्म कर तांबा एवं शीशा का रस डाला गया, जिसकी अत्यंत वेदना से शैय्यापालक की मौत हो गई।

वासुदेव ने भयंकर अशातावेदनीय पापकर्म का बंध किया। हिसा आदि से भी उग्रकर्म का बध किया। त्रिपृष्ठ ने चौरसी लाख वर्ष की आयु पूर्ण की और मरकर सातमी नरक की पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में पैदा हुआ। यह प्रभु का उनीसवा भव था। उनके वियोग मे दु:खी अचल ने दीक्षा ली और मोक्ष पद प्राप्त किया।

त्रिपृष्ठ की आत्मा नरक से निकलकर २० वेभव में शेर के रूप मे पैदा हुई। हिसक शेर के भव मे मर कर चौथी नरक में पैदा हुआ। नरक से निकलकर तिर्यच एवं मनुष्य के अनेक भव किए। किसी मनुष्य जन्म में उन्होंने पूण्योपार्जन किया।

तत्पश्चात् पश्चिम महाविदेह की मूका नगरी में धनजय नामक राजा था। धारिणी नामक उसकी रानी थी। उसकी कुक्षी में वह पैदा हुआ। माता ने चौदह स्वप्न देखे। पुत्र रूप मे उनका जन्म हुआ। उनका नाम रखा गया प्रियमित्र। युवा होने पर वह छ खंड का राजा चक्रवर्ती बना।

एक बार उसने पोट्टिलाचार्य की वाणी सुनी। वैराग्य होने पर उन्होंने उनके पास दीक्षा ग्रहण की। करोड़ों वर्ष तक संयम एवं तप की आराधना की। चौरासी लाख पूर्व वर्ष की आयु पूर्ण कर, अनशन से समाधि मरण प्राप्त कर वे सर्वार्थ नामक विमान मे देव हुए। देवभव की आयु पूर्ण कर २४ वे भव मे इस भरत क्षेत्र की छत्रा नामक नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा नामक रानी के गर्भ मे पुत्र रूप में पैदा हुए। जन्म के पश्चात् नाम रखा गया नंदन कुमार।

नंदन राज कुमार के युवा होने पर पिता ने उन्हें राज्य सौप दिया और उन्होने दीक्षा ग्रहण की। चौबीस लाख वर्ष तक नंदन राजा ने राज्य का पालन किया। पश्चात् पोट्टिलाचार्य के पास उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उग्र तपसाधना करते हुए उन्होंने ग्यारह लाख छ सौ पच्चीस मास क्षमण किए।

एक लाख वर्ष तक उन्होने संयम का पालन किया। वीश स्थानक की आराधना से तीर्थंकर नाम

...त्र का उपार्जन किया। अन्त में साठ दिन का अनशन किया। पच्चीस लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर ...ण्तत नामक देवलोक में पुष्पोत्तर नामक विमान में वीश सागरोपम की आयु वाले देव हुए।

जंबूद्वीप के इस भरतक्षेत्र में ब्राह्मणकुंड नामक नगर है। वहां कोडालवंश का ऋषभदत्त नामका ...ह्मण था। उसे जालंधर गोत्र मे पैदा हुई देवानंदा नामक पत्नी थी।

आषाढ मास की शुक्ला षष्टी के दिन नंदन की आत्मा देवानदा ब्राह्मणी के गर्भ मे पैदा हुई। उस ...मय देवानंदा ने चौदह महास्वप्न देखे। प्रातःकाल उसने अपने पति को स्वप्न बताए। उसने महान पुत्र ...प्राप्ति की वात की।

वहा गर्भ में प्रभु को ब्याशीदिन व्यतीत हुए तब सौधमेन्द्र का सिहासन कंपायमान हुआ। ...अवधिज्ञान से देवानंदा की कुक्षी मे प्रभु को जानकर इन्द्र ने सिहासन का त्याग किया। प्रभु को नमस्कार ...कर वे सोचने लगे कि जगतपूज्य तीर्थकर भिक्षावृति कुल में, निर्धन कुल मे, तुच्छकुल में कभी पैदा नही ...होते है। किन्तु समुद्र मे रत्न की तरह इक्ष्वाकु आदि उत्तम क्षत्रिय कुलों मे ही पैदा होते है। पूर्वोपार्जित कर्म ...तीर्थकरो को भी भोगना ही पडता है। मरीचि के भव में प्रभु ने जो नीच गोत्रकर्म का बंद किया था, वह ...उदय मे आया है। कर्मवश नीच कुल मे उत्पन्न हुए तीर्थकरो को उच्चकुल मे रखने का हमारा अधिकार है।

अत: अपने कर्तव्य के अनुसार क्षत्रियकुंड ग्राम नगर का राजा सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशाला की ...कुक्षी मे प्रभु महावीर को रखना चाहिए और जो त्रिशला रानी का पुत्री रूप गर्भ है उसे लेकर जालधर ...क्षत्रिया देवानद के गर्भ मे रखना चाहिए।

यह सोचकर इन्द्र ने हरिणगमेषी नामक अपने सेनापति को गर्भ परिवर्तन करने का आदेश दिया।

इन्द्र के आदेश अनुसार ही उसने भी कार्य संपन्न किया। आसो मास की कृष्णा त्रयोदशी के दिन ...उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के चन्द्र योग मे ब्याशी दिन के वाद प्रभु गर्भ में स्थापित हुए।

उस समय त्रिशाला माता ने अपने मुख में प्रवेश करते हुए चौदह महास्वप्न देखे।

एक दिन प्रभु ने गर्भ मे यह विचार किया कि मेरे हलन-चलन से माता को कष्ट नही होना चाहिए। ...सोचकर गर्भ में स्थिर हो गए।

उस समय त्रिशला माता के मन में इस प्रकार की शंका हुई कि क्या मेरे गर्भ का किसी देवादि ने ...हरण कर लिया है। गर्भहरण के संकल्प-विकल्पो से माता शोक के सागर मे डूब गई।

त्रिशलारानी को शोकमग्न देखकर सिद्धार्थ राजा भी अति दुःखी हो गए।

तीन ज्ञान संयुक्त प्रभु ने माता-पिता के दुःख को जाना। उनके दुःख को दूर करने के लिए, प्रभु ने ... एक अंगुली हिलाई।

गर्भ को विद्यमान जानकर माता-पिता प्रसन्न हो गए। जन्म से पूर्व ही माता-पिता के मोह व देखकर, प्रभु ने विचार किया कि माता-पिता की विद्यमानता में दीक्षा लूंगा तो उन्हें कितना दुःख हो अतः माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं दीक्षा नहीं लूंगा, ऐसा प्रभु ने गर्भ में ही अभिग्रह किया।

तत्पश्चात् चैत्रमास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे कन्याराशि के चन्द्रयोग त्रिशला माता ने स्वर्णमय कांतिवाले सिंह लंछन युक्त तीर्थकर को जन्म दिया।

देवियों एवं देवों ने प्रभु का जन्म महोत्सव किया। जन्माभिषेक के समय इन्द्र के मन में संदेह हुअ कि प्रभु इतने कलशों का जल कैसे सहन करेंगे ?

इन्द्र की शंका को दूर करने केलिए प्रभु ने बाएं पांव का अंगूठा थोड़ा सा हिलाया जिससे मेरू पर्व कंपायमान हो गया। इससे पृथ्वी कांपने लगी, समुद्र भी क्षोभायमान हो गया। ब्रह्मांड को फोड डाले ऐ शब्द होने पर इन्द्र भी क्रुद्ध हो गए। इन्द्र ने अवधि ज्ञान से अपार शक्ति को जानकर प्रभु से क्षमा मांगी।

प्रभु जब गर्भ में थे तब देश, नगर एवं अपने राजमहल में धन-धान्य की वृद्धि हुई अतः पिता ने प्र का नाम वर्धमान रखा। साधनाकाल में प्रभु देव दानव एवं मानवों से भी चलायमान नही हुए अतः इन्द्र उनका नाम महावीर रखा।

कुछ कम आठ वर्ष की उम्र में प्रभु समान उमर वाले राजकुमारों के साथ आमलकी क्रीडा कर लगे। सभी राजकुमार वृक्ष पर क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय सौधर्मेन्द्र देवसभा में प्रभु के धैर्य एव वीरत आदि गुणों की प्रशंसा कर रहा था। इन्द्र ने कहा—हे देवो ! वर्तमान काल में मानवलोक में श्री वर्धमा कुमार बालक होते हुए भी महापराक्रमी है। इन्द्रादि देव भी उन्हें भयभीत करने में असमर्थ है।

यह सुनकर एक मिथ्यादृष्टि देव ने विचार किया कि अरे ! यह इन्द्र बिना विचार कैसी गप्प मारत है। कहां देव का सामर्थ्य और कहां मानव। मै अभी जाकर उन्हें डराकर इन्द्र के वचन को झूठा कर देत हूं। यह सोचकर वह मानवलोक में आया और दो जीभयुक्त भयंकर विशाल फण युक्त काले नाग क रूप बनाया। पश्चात् जिस वृक्ष पर चढ उतर कर लड़के खेल रहे थे, उसने चारों ओर से लपेट लिया।

भयंकर सांप को देखकर सभी राजकुमार भयभीत होकर दूर भाग गए। वर्धमान कुमार वहां से भागे नही और निर्भीक होकर उसे हाथ से पकड़ कर दूर फैक दिया। तत्पश्चात् सभी राजकुमार वर्धमान कुमार के साथ गेंद का खेल खेलने लगे। उस खेल में शर्त यह थी कि जो कुमार हार जाय, वह जीतने वाले कुमार को पीठ पर बिठावे।

अब वह देव जानबूझ कर वर्धमान कुमार से हार गया। शर्त के अनुसार वर्धमान कुमार को अपनी पीठ पर बिठाया और देव ने सात तालवृक्ष जितना शरीर ऊंचा बना लिया। भगवान उसे ज्ञान से देखकर ...क पीठ पर वज्र के समान मुष्टि का प्रहार किया।

मुष्टि प्रहार की वेदना से देव ने मच्छर के समान शरीर संकुचित बना लिया। इन्द्र का वचन सत्य मानकर अपना स्वरूप प्रकट किया। प्रभु से अपने अपराध की बारंबार क्षमा मांगी। देव अपने स्थान पर चला गया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर प्रभु का नाम वीर रखा।

आठ वर्ष की उम्र में पिता प्रभु को पढाने केलिए पंडित के पास ले गए। उस समय इन्द्र ने आकर प्रभु को सिहासन पर बिराजमान किए और पंडित के मन में जो संदेह था, इन्द्र ने उसी विषय में प्रश्न पूछे। सब लोगों को आश्चर्य में डालते हुए श्री वीर प्रभु ने समस्त गूढ प्रश्नों का प्रत्युतर दिया। उस समय से जैनेन्द्र व्याकरण की रचना हुई।

यह घटना देखकर पंडित भी आश्चर्य चकित हो गया। इन्द्र ने पंडित से कहा—यह बालक कोई साधारण मानव नही है। किन्तु तीन लोक के नाथ, सर्वशास्त्रों के पारगामी अन्तिम तीर्थकर ये श्री महावीर प्रभु है। भगवान की स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर चला गया। प्रभु परिवार के साथ घर पर आ गए।

सात हाथ की काया वाले प्रभु युवावस्था को प्राप्त हुए, तब माता-पिता ने शुभ मुहूर्त मे राजा समरवीर की यशोदा नाम की पुत्री का पाणिग्रहण कराया। उसके साथ सुख भोगते हुए प्रभु को एक पुत्री हुई। जिसका नाम रखा गया प्रियदर्शना। प्रियदर्शना को जमाली नामक राजकुमार जो उनका भानजा था उसके साथ विवाह कर दिया। उसको भी एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा शेषवती।

श्रमण भगवान महावीर प्रभु के पिता काश्यप गोत्रीय थे। उनके तीन नाम थे सिद्धार्थ श्रेयांस और यशस्वी। प्रभु की माता के तीन नाम थे—त्रिशला, विदेहदिन्ना और प्रीतिकारिणी। प्रभु के चाचा नाम सुपार्श्व, बड़े भाई का नंदीवर्धन बहिन का सुदर्शना और स्त्री का नाम यशोदा था।

प्रभु के अट्ठाईस साल के बाद प्रभु के माता-पिता अनशन कर, अच्युत नामक देवलोक मे गए। सिद्धार्थ और त्रिशला के जीव महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति में जाएंगे। विनति करने पर भी प्रभु ने राज्य पद स्वीकार नही किया। अतः नंदीवर्धन राजा हुए।

माता-पिता जब तक जीवित होंगे तब तक दीक्षा ग्रहण नही करूंगा, यह अभिग्रह पूर्ण होने पर, प्रभु ने ज्येष्ठ भ्राता नंदीवर्धन से कहाकि—हे राजन्! मेरा अभिग्रह पूर्ण हुआ है, अतः मैं अब दीक्षा ग्रहण करूंगा। माता-पिता के स्वर्गवास से दुःखी नंदिवर्धन के आग्रह से प्रभु संसार मे दो वर्ष तक अधिक [illegible]

लोकांतिक देवो ने भी दीक्षा का समय समीप जानकर प्रभु से प्रार्थना की कि प्रभो! [illegible] धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो। पश्चात् प्रभु ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया। प्रभु प्रतिदिन एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राओ का दान देते है। एक वर्ष मे तीन सौ अट्ठासी क्रोड और अस्सी लाख [illegible] का प्रभु ने दान दिया।

वर्षीदान के पश्चात् भगवान ने नंदीवर्धन से फिर कहा—अब मेरा समय पूर्ण [illegible]

दीक्षा ग्रहण करूंगा। यह सुनकर नन्दीवर्धन ने भी ध्वजा तोरणादि से क्षत्रिय कुंडपुर को सजाया।

चन्द्रप्रभा नामक शिबिका में बैठकर देवों और मानवों के साथ प्रभु ज्ञातखंडवन नामक उद्यान मे पधारे। तीस वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष वदि दशमी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के चन्द्रयोग में बेले की तपस्या करके प्रभु ने अकेले ही दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के पश्चात् प्रभु ने विहार कर दिया। जब तक प्रभु दृष्टिगोचर हुए, नन्दीवर्धन एवं अन्य परिजन भगवान को अनिमेष नजर से देखते रहे। दृष्टि से ओझल होने पर आंख मे आंसू लिए अपने-अपने स्थान में लौट गए।

ज्ञातखंडवन से आगे बढ़ने पर रास्ते मे सोम नामक दरिद्र ब्राह्मण ने प्रभु से याचना की। प्रभु ने देवदूष्य का आधा भाग फाड़कर उसे दे दिया।

दीक्षा महोत्सव के समय देवों ने सुगंधि द्रव्यों का लेप किया था। जिससे अनेक भौरे आकर प्रभु को डक मारने लगे। कई लोग भगवान से सुगंधि द्रव्यों की मांग करते थे, प्रभु के मौन रहने पर वे गुस्से से प्रभु को उपद्रव करते थे। अनुकूल एवं प्रतिकूल उपसर्गो को सहन करते हुए प्रभु संध्या समय कुमारग्राम पहुंचे। भगवान आत्मध्यान में स्थिर हुए। उस समय एक गोपाल ने प्रभु को उपसर्ग किया। शकेन्द्र ने उपसर्ग दूर किया।

इन्द्र ने उस समय कहा—हे प्रभो ! बारह वर्ष तक आपको उपसर्ग होंगे। यदि आपकी आज्ञा हो तो मै आपकी सेवा मे रहूं। भगवान ने कहा—हे इन्द्र न कभी ऐसा हुआ है और न कभी होगा। तीर्थंकर किसी की सहायता से केवलज्ञान उपार्जन नही करते।

प्रभु के इन्कार करने पर भी इन्द्र ने भक्तिवश प्रभु की मासी के पुत्र सिद्धार्थ नामक व्यंतर देव को भगवान की रक्षा का आदेश दिया और वे अपने स्थान पर गए। दूसरे दिन प्रभु ने कौल्लाक नामक गाव मे बहुल नामक ब्राह्मण के घर बेले के तप का खीर से पारना किया। शुलपानी यक्ष, चडकौशीकनाग त्रिपृष्ठ के भव मे मारा हुआ शेर जो मरकर नागकुमार देव हुआ उसने भी प्रभु को उपसर्ग किए।

शिष्यरूप गौशालक एवं त्रिपृष्ठ के भव में प्रभु की पत्नी विजयवती जो ईर्ष्या से मर कर कटपूतना नामक व्यतरी हुई थी। उसने तापसी रूप धारण कर महा महिने की भयंकर ठंडी में सारी रात जटा एवं वस्त्रों से डंडा पानी फैका और इस प्रकार शीत उपसर्ग किया। इन्द्र की स्तुति से अभिमान व ईर्ष्या से संगम देव ने भगवान को एक रात्रि मे भयंकर वीश उपसर्ग किए एवं कालचक्र भी छोडा। उसने महा उपसर्ग किए।

त्रिपृष्ठ के भव मे शैय्यापालक के कानो मे प्रभु ने तपा हुआ सीसा डलवाकर कर्म उपार्जन किया था। वह कर्म अब उदय में आया। शैय्यापालक मरकर षणमास नामक गोपालक हुआ था। उसने प्रभु के

कानों में बास की शलाकाएं जोरों से ठोंक दी। जो अन्दर एक-दूसरी से मिल गई। इस प्रकार से अन्य अनेक उपसर्ग भी प्रभु ने समता से सहन किए। महामहिने की रात्रि में कटपूतना व्यंतरी ने जो उपसर्ग किया, वह जघन्य उपसर्गों में बड़ा उपसर्ग था। संगम देव ने जो कालचक्र छोड़ा वह मध्यम उपसर्गों मे बड़ा उपसर्ग था। कान की शलाकाओं का बाहर निकालना उत्कृष्ट उपसर्गों में बड़ा उपसर्ग था।

परमात्मा की तपस्या इस प्रकार है—

छ मासिक तप एक, अभिग्रह के साथ पांच दिन काम छ मासिक तप, चार मासिक तप, नव बार, त्रिमासिक तप दो बार, ढाई मासिक तप दो बार, द्विमासिक तप छ बार, दोढ मासिक तप-दो बार, एक मासिक तप बारह बार, पाक्षिक तप बहत्तर बार, भद्र प्रतिमा दो दिन, महाभद्र प्रतिमा चार दिन, सर्वतोभद्र प्रतिमा १० दिन, दो सौ उनत्तीस छठ्ठ एवं बारह अठ्ठम। ये सभी तप प्रभु ने पानी रहित किए थे। नित्यप्रति भोजन प्रभु ने नही किया। तीन सौ उनचास दिन पारना के दिन थे। बारह वर्ष, छ मास, पन्द्रह दिन कुल मिलाकर प्रभु की तपस्या के दिन थे।

भगवान की दीक्षा का तेरहवां वर्ष चल रहा था। तब ग्रीष्मकाल के दूसरे महीने के चौथे पक्ष मे वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन पिछली पोरस के समय। सुव्रत नामक दिन मे, विजय नामक मुहूर्त मे जृंभिक नामक गांव के बाहर, ऋजु बालु का नामक नदी के किनारे, अव्यक्त व्यंतर के मंदिर के पास श्यामक नामक कौटुम्बिक के खेत में, साल नामक वृक्ष के नीचे, गोदुहासन में आतापना लेते हुए।

जल रहित छठ्ठ की तपस्या में, चन्द्र के साथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में शुक्लध्यान में प्रभु को आवरण रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उस समय विरति के योग्य कोई भी आत्मा नही थी, किन्तु आचार अनुसार प्रभु ने समवसरण मे देशना दी, जो निष्फल हुई।

हाथी का वाहनवाला, श्यामकांतिवाला मातंग नाम का यक्ष प्रभु के शासन में था। हाथी के वाहन वाली नीलवर्ण वाली सिद्धायिका नामक प्रभु की शासनदेवी थी। तत्पश्चात् विहार करते हुए अपापा नगरी के बाहर महासेनवन नामक उद्यान मे देव रचित समवसरण मे प्रभु पधारे। उस नगरी मे सोमिल नामक ब्राह्मण के घर यज्ञ करने केलिए बहुत से ब्राह्मण एकत्रित हुए थे।

उनमे मगधदेश के गोबर नामके निवासी वसुभूति के पुत्र इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नामक तीनो भाई भी आए हुए थे। वे चौदह विधाओं में पारंगत थे। कोल्लाग गांव मे व्यक्त और सुधर्मा नामक दो विद्वान ब्राह्मण आए।

कोल्लाग गांव से ही मंडीक और मौर्यपुत्र यज्ञ में आए थे। मिथिला नगरी से अकंपित नामक पंडित भी आया था। कौशल नगरी से अचलभ्राता, वत्सदेश से मेतार्य नामक पंडित भी आया था, राजगृही नगरी मे प्रभास नामक विद्वान भी आया था।

इन ग्यारह ब्राह्मणों के मन में आत्मा आदि विषय में संदेह था। परमात्मा ने उनके संदेह को दूर किया। सभी ने भगवान के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। पहले पांचों ने पांच सौ-पांच सौ शिष्यों के साथ एवं अन्य ने तीन सौ-तीन सौ शिष्यों के साथ दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार इन्द्रभूति आदि प्रभु के ग्यारह गणधर हुए। चंदनबाला भगवान की प्रथम साध्वी बनी। अनेक राजकुमारियों के साथ उसने दीक्षा ग्रहण की।

अनेक स्त्री-पुरुषों ने श्रावक धर्म एवं श्राविका धर्म स्वीकार किया। प्रभु ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। त्रिपदी के द्वारा गणधरों ने द्वादशांगी की रचना की। भगवान के शासन मे इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधु हुए। चंदनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियां हुई। शख शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावक और सुलसा एवं रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएं थी। तीन सौ चौदहपूर्वी, तेरह सौ अवधीज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी एवं सात सौ वैक्रियलब्धिवाले मुनि थे।

पांच सौ विपुलमति और चार सौ वादी थे। सात सौ शिष्यों ने मोक्ष पद प्राप्त किया। चौदह सौ साध्वियों ने मुक्ति पद पाया। आठ सौ मुनि अनुत्तर विमान में पैदा हुए। इस प्रकार प्रभु का सर्व परिवार था।

श्री महावीर प्रभु अपना अंतिम समय जानकर हस्तिपाल राजा की दानशाला में पधारे।

गौतम गणधर के पूछने पर प्रभु ने पांचवे-छट्ठे आरे का स्वरूप एवं भावी तीर्थकरो के जीव आदि का वर्णन किया। सोलह प्रहर तक प्रभु ने देशना दी। पचपन पून्य विपाक फल एवं पचपन पापविपाकफल के अध्ययन की प्रभु ने प्ररूपणा की।

कार्तिक मास की अमावस्या की रात्रि के अंतिम निर्वाण समय मे इन्द्र ने प्रभु से प्रार्थना की कि—हे प्रभो ! आपके जन्म नक्षत्र मे भस्म नामक क्रूर ग्रह संक्रमित हुआ है। आप एक क्षणवार आयु बढ़ा लें। जिससे आपके प्रभाव से शासन अखंडित रहेगा।

तब प्रभु ने कहा—हे इन्द्र ! न कभी हुआ है, न कभी होगा। तीर्थकर भी क्षणमात्र अपनी आयु को बढ़ाने में असमर्थ है। तीर्थ को होने वाली बाधा भी होकर रहेगी।

तत्पश्चात् कार्तिक मास की अमावस्या की रात्रि मे प्रभु ने कुल बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर निर्वाण पद पाया। पद्मासन मे (छट्ठ) बेले की तपस्या मे अकेले ही प्रभु ने मुक्ति पद पाया।

जिस समय प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए। उस समय नव मल्लकी जाति के काशी देश के राजा तथा नव लिच्छवी जाति के कौशल देश के राजाओं का किसी कारण सम्मिलन था। उन्होंने अमावस्या के दिन पौषधव्रत किया था।

संसार से भाव उद्योत चला गया, अतः अब द्रव्य उद्योत करेंगे इस विचार से उन्होंने, मानवो ने दीपक जलाए। उस दिन से जगत में दीपावली का पर्व प्रारंभ हुआ।

प्रभु तीस वर्ष तक गृहवास में रहे, बारह वर्ष से अधिक छद्मस्थ अवस्था में, बियालीस वर्ष तक चारित्र पर्याय मे रहे, इस प्रकार प्रभु की संपूर्ण आयु बहत्तर वर्ष की थी।

श्री महावीर स्वामी स्तवन

आवो वीर प्यारे नैया डूब रही है,
नैया डूब रही है।

सिद्धार्थ के हो तुम प्यारे,
त्रिशला रानी के हो दुलारे।
वीर कहाने वाले, नैया डूब...

जन्म महोत्सव इन्द्र करावे,
क्षीर सागर से कलश मंगावे।
मेरू हिलाने वाले, नैया डूब...

लागी लगन लेने दीक्षा,
ज्येष्ठ भ्रात की मानी शिक्षा।
विनय बताने वाले, नैया डूब...

चण्डकोशी ने आकर काटा,
निकली श्वेत दूध की धारा।
स्वर्ग पहुंचाने वाले, नैया डूब...

परों पे प्रभु खीर रंधाएं,
कानों में कीले गड़वाए।
रहम बताने वाले, नैया डूब...

गहरी गहरी नदिया नाव पुरानी,
बडे बडे भंवरे गहरा पानी।
हो गई मोरी हानी, नैया डूब...

जसे चन्दन वाला तारी,

गौतम को दी दीक्षा प्यारी ।
तारो नाव हमारी, नैया डूब...

आतम राम तेरे गुण गावे,
वल्लभ तेरे शरणे आवे ।
पार लगाने वाले, नैया डूब...

स्तुति

महावीर प्रभुजी, कंचन कोमल काय,
सिद्धार्थ घर जाये, त्रिशला जिनकी माय,
मै मुक्त बनूं ऐसा दो प्रभु आशीष
अर्पण करता हूँ, श्रद्धा भाव से शीष

प्रार्थना

महावीर जिनंदा, राय सिद्धार्थ नंदा,
लंछन मृगेंदा, जास पाये सोहंदा,
टाले भवफंदा, सुख देते अमंदा
सुर नर वर देवा, नित्य सेवा करंदा ।

परिचय

१ माता का नाम	त्रिशला रानी
२ पिता का नाम	सिद्धार्थ राजा
३ च्यवन कल्याणक	अषाढ शुक्ला-६ ब्राह्मण कुड
४ जन्म कल्याणक	चैत्र शुक्ला-१३ क्षत्रिय कुड
५ दीक्षा कल्याणक	मार्गशीर्ष कृष्णा-१० क्षत्रिय कुड
६ केवलज्ञान कल्याणक	वैशाख शुक्ला-१० ऋजुवालिका नदी तट
७ निर्वाण कल्याणक	कार्तिक कृष्णा ०)) पावापुरी
८ गणधर	सख्या ११ प्रमुख इन्द्रभूति
९ साधु	सख्या ३६ हजार प्रमुख चदनबाला
११ श्रावक	सख्या १ लाख ५९ हजार प्रमुख आनद, कामदेव
१२ श्राविका	सख्या ३ लाख १८ हजार प्रमुख सुलसा देवी
१३ ज्ञानवृक्ष	साल
१४ यक्ष अधिष्ठायक देव	मातग
१५ यक्षिणि अधिष्ठायिका देवी	सिद्धायिका
१६ आयुष्य	७२ वर्ष
१७ लछन (चिन्ह-Mark)	सिह
१८ च्यवन किस देवलोक से	प्राणत १०वा
१९ तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन राजर्षि	नदन के भव मे
२० पूर्वभव कितने	२९ भव
२१ छद्मास्थावस्था	१२ वर्ष ६ महिना १५ दिन
२२ गृहस्थ अवस्था	३० वर्ष
२३ शरीर वर्ण	स्वर्णमय
२४ दीक्षा दिन की शिविका का नाम	चंद्रप्रभा
२५ नामअर्थ	धनधान्य सुख समृद्धि बढने के कारण

परिशिष्ट-१

जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र की तीन चौबीसी

भूतकाल	वर्तमान	भविष्य
१. केवलज्ञानी	ऋषभदेव	पद्मनाभ
२. निर्वाणी	अजित	सूरदेव
३. सागर	संभव	सुपार्श्व
४. महायश	अभिनंदन	स्वयंप्रभु
५. विमल	सुमति	सर्वानुभूति
६. सर्वानुभूति	पद्मप्रभु	देवश्रुत
७. श्रीधर	सुपार्श्व	उदयप्रभु
८. दत्त	चन्द्रप्रभु	पेढाल
९. दामोदर	सुविधि	पोट्टिल
१०. सुतेज	शीतल	शतकीर्ति
११. स्वामीनाथ	श्रेयांस	सुव्रत
१२. मुनिसुव्रत	वासुपूज्य	अमम
१३. सुमति	विमल	निष्कषाय
१४. शिवगति	अनंत	निष्पुलाक
१५. अस्त्याग	धर्म	निर्मम
१६. नमीश्वर	शांति	चित्रगुप्त
१७. अनिल	कुंथु	समाधि
१८. यशोधर	अर	संवर
१९. कृतार्थ	मल्लि	यशोधर
२०. जिनेश्वर	मुनिसुव्रत	विजय
२१. शुद्धमति	नमि	मल्ल

२२. शिवंकर	अरिष्टनेमि	देवजिन
२३ स्यन्दन	पार्श्व	अनंतवीर्य
२४. सम्प्रति	महावीर	भद्रंकर (भद्रकृत)

परिशिष्ट-२

दो तीर्थंकर के बीच की समय अवधि

१ ऋषभदेव	तीसरे आरे के नवासी पक्ष अर्थात् तीन वर्ष और साढ़े आठ महिना
२ अजितनाथ	पचास लाख करोड सागर
३ सभवनाथ	तीस लाख करोड़ सागर
४ अभिनंदन	दस लाख करोड़ सागर
५ सुमतिनाथ	नव लाख करोड़ सागर
६ पद्मप्रभु	नब्बे हजार करोड सागर
७ सुपार्श्वनाथ	नव हजार करोड़ सागर
८ चंद्रप्रभु	नव सो करोड सागर
९ सुविधिनाथ	नब्बे करोड़ सागर
१० शीतलनाथ	नव करोड सागर
११ श्रेयासनाथ	छासठ लाख छब्बीस हजार एक सौ सागर कम एक करोड सागर
१२ वासुपूज्य	चोप्पन सागर
१३ विमलनाथ	तीस सागर
१४ अनन्तनाथ	नव सागर
१५ [illegible]नाथ	चार सागर
१६ [illegible]नाथ	पौन पल्योपम कम तीन सागर
[illegible]	अर्धपल्य
[illegible]	एक हजार करोड वर्ष कम पाव पल्य

१९. मल्लिनाथ	एक हजार करोड़
२०. मुनिसुव्रत	चौप्पन लाख वर्ष
२१. नमिनाथ	छ लाख वर्ष
२२. अरिष्टनेमि	पांच लाख वर्ष
२३. पार्श्वनाथ	त्यासी हजार सात सौ पचास वर्ष
२४. महावीर	दो सौ पचास वर्ष

परिशिष्ट-३

तीर्थंकरों की प्रथम देशना का विषय

तीर्थंकर	प्रथम देशना का विषय
१. ऋषभदेव	यति धर्म और श्रावक धर्म
२. अजित	धर्मध्यान के चार प्रकार
३. संभव	अनित्य भावना
४. अभिनंदन	अशरण भावना
५. सुमति	एकत्व भावना
६. पद्मप्रभु	संसार भावना
७. सुपार्श्व	अन्यत्व भावना
८. चंद्रप्रभु	अशुचि भावना
९. सुविधि	आश्रव भावना
१०. शीतल	संवर भावना
११. श्रेयांस	निर्जरा भावना
१२. वासुपूज्य	धर्म भावना
१३. विमल	बोधि दुर्बल भावना
१४. अनंत	लोक भावना और नव तत्वो का स्वरूप

१५. धर्म	मोक्ष का उपाय और कषाय का स्वरूप
१६. शांति	इंद्रिय विजय
१७. कुंथु	मनशुद्धि
१८. अर	राग-द्वेष और मोह पर विजय
१९. मल्लि	सामायिक
२०. मुनिसुव्रत	यति धर्म और श्रावक धर्म
२१. नमि	श्रावक क्रिया
२२. अरिष्टनेमि	चार महाविगई, रात्रि भोजन तथा अभक्ष्य का त्याग
२३. पार्श्व	बार व्रतों का निरूपण
२४. महावीर	यति धर्म और श्रावक धर्म

परिशिष्ट-४

अवसर्पिणीकाल के चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासदेव और उनका समय

चक्रवर्ती	तीर्थकर काल
१. भरत	प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के समय में
२. सगर	द्वितीय तीर्थकर अजितनाथ के समय में
३. मधवा	पंद्रह मे तीर्थकर धर्मनाथजी और सोलह में तीर्थकर शांतिनाथ जी के बीच के समय की अवधि दरम्यान
४ सनत्कुमार	पंद्रह में तीर्थकर धर्मनाथजी और सोलह में तीर्थकर शांतिनाथजी बीच में समय की अवधि दरम्यान
५ शांतिनाथ	सोलह वें तीर्थकर
६ कुंथुनाथ	सत्रह वें तीर्थकर
७ अरनाथ	अट्ठारह वें तीर्थकर
८ सुभूम	अट्ठारह वें तीर्थकर, सातवे चक्रवर्ती अरनाथ और उन्नीस मे तीर्थकर मल्लिनाथ के बीच के समय की अवधि दरम्यान

९. पद्म	बीस में तीर्थकर मुनिसुव्रत के समय में
१०. हरिषेण	इक्कीस में तीर्थकर नेमिनात के समय में
११. जयसेन	नमिनाथ और अरिष्टनेमि के समय बीच की अवधि दरम्यान

बलदेर, वासुदेव और प्रतिवासु देव

बलदेव	वासुदेव	प्रतिवासुदेव	तीर्थकर काल
१. विजय	त्रिपृष्ठ	अश्वग्रीव	भ. श्रेयांसनाथ के तीर्थ
२. अचल	द्विपृष्ठ	तारक	भ. वासुपूज्य के तीर्थ काल में
३. सुधर्म	स्वयम्भू	मेरक	भ. विमलनाथ के तीर्थ काल मे
४. सुप्रभु	पुरुषोत्तम	मधुकैटभ	भ. अनंतनाथ के तीर्थ काल मे
५. सुदर्शन	पुरुषसिह	निशुम्भ	भ. धर्मनाथ के तीर्थ काल मे
६. नन्दी	पुरुष पुण्डरीक	बलि	भ. अरनाथ और मल्लिनाथ के ब के समय की अवधि दरम्यान
७. नन्दिमित्र	दत्त	प्रह्लाद	भ. अरनाथ और मल्लिनाथ के ब के समय की अवधि दरम्यान
८. राम	नारायण (लक्ष्मण)	रावण	भ. मुनिसुव्रत और भ. नमिनाथ समय बीच की अवधी दरम्यान
९. पद्म (बलभद्र बलराम)	कृष्ण	जरासंघ	भ. नेमिनाथ के शासन काल मे

परिशिष्ट-५

कौन से महिने, कौन से तीर्थंकर और कौन से कल्याणक

चैत्र

च्यवन कल्याणक	चंद्रप्रभु, पार्श्व
जन्म कल्याणक	ऋषभ, महावीर
दीक्षा कल्याणक	ऋषभ
केवलज्ञान कल्याणक	सुमति, पद्मप्रभु, कुंथु, पार्श्व
निर्वाण कल्याणक	अजित, संभव, सुमति, अनंत

वैशाख

च्यवन कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
जन्म कल्याणक	सुमति, अनंत, कुंथु
दीक्षा कल्याण	सुमति, अनंत, कुंथु
केवलज्ञान कल्याणक	अनंत, महावीर
निर्वाण कल्याणक	अभिनंदन, शीतल, कुंथु, नमि

जेठ

च्यवन कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
जन्म कल्याणक	सुपार्श्व, शांति, मुनिसुव्रत
दीक्षा कल्याणक	सुपार्श्व, शांति
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	धर्म, शांति, मुनिसुव्रत

अषाढ़

च्यवन कल्याणक	ऋषभ, महावीर
जन्म कल्याणक	—
दीक्षा कल्याणक	नमि

९. पद्म	बीस में तीर्थकर मुनिसुव्रत के समय में
१०. हरिषेण	इक्कीस में तीर्थकर नेमिनात के समय में
११. जयसेन	नमिनाथ और अरिष्टनेमि के समय बीच की अवधि दरम्यान

बलदेर, वासुदेव और प्रतिवासु देव

बलदेव	वासुदेव	प्रतिवासुदेव	तीर्थकर काल
१. विजय	त्रिपृष्ठ	अश्वग्रीव	भ. श्रेयांसनाथ के तीर्थ
२. अचल	द्विपृष्ठ	तारक	भ. वासुपूज्य के तीर्थ काल में
३. सुधर्म	स्वयम्भू	मेरक	भ. विमलनाथ के तीर्थ काल मे
४. सुप्रभु	पुरुषोत्तम	मधुकैटभ	भ. अनंतनाथ के तीर्थ काल मे
५. सुदर्शन	पुरुषसिह	निशुम्भ	भ. धर्मनाथ के तीर्थ काल मे
६. नन्दी	पुरुष पुण्डरीक	बलि	भ. अरनाथ और मल्लिनाथ के बीच के समय की अवधि दरम्यान
७. नन्दिमित्र	दत्त	प्रह्लाद	भ. अरनाथ और मल्लिनाथ के बीच के समय की अवधि दरम्यान
८. राम	नारायण (लक्ष्मण)	रावण	भ. मुनिसुव्रत और भ. नमिनाथ के समय बीच की अवधी दरम्यान
९. पद्म (बलभद्र बलराम)	कृष्ण	जरासंघ	भ. नेमिनाथ के शासन काल मे

परिशिष्ट-५

कौन से महिने, कौन से तीर्थकर और कौन से कल्याणक

चैत्र

च्यवन कल्याणक	चंद्रप्रभु, पार्श्व
जन्म कल्याणक	ऋषभ, महावीर
दीक्षा कल्याणक	ऋषभ
केवलज्ञान कल्याणक	सुमति, पद्मप्रभु, कुंथु, पार्श्व
निर्वाण कल्याणक	अजित, संभव, सुमति, अनत

वैशाख

च्यवन कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
जन्म कल्याणक	सुमति, अनंत, कुंथु
दीक्षा कल्याण	सुमति, अनंत, कुंथु
केवलज्ञान कल्याणक	अनंत, महावीर
निर्वाण कल्याणक	अभिनंदन, शीतल, कुंथु, नमि

जेठ

च्यवन कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
जन्म कल्याणक	सुपार्श्व, शांति, मुनिसुव्रत
दीक्षा कल्याणक	सुपार्श्व, शान्ति
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	धर्म, शांति, मुनिसुव्रत

आषाढ

[illegible]	[illegible]
[illegible]	—
[illegible]	[illegible]

केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	वासुपूज्य, विमल, अरिष्टनेमि

श्रावण

च्यवन कल्याणक	सुमति, अनंत, कुंथु, मुनिसुव्रत
जन्म कल्याणक	नमि, अरिष्ठ नेमि
दीक्षा कल्याणक	अरिष्टनेमि
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	श्रेयांस, पार्श्व

आभदरवो

च्यवन कल्याणक	सुपार्श्व, शांति
जन्म कल्याणक	—
दीक्षा कल्याणक	—
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	चंद्रप्रभु, सुविधि

आसो

च्यवन कल्याणक	नमि
जन्म कल्याणक	—
दीक्षा कल्याणक	—
केवलज्ञान कल्याणक	अरिष्टनेमि
निर्वाण कल्याणक	—

कारतक

च्यवन कल्याणक	अरिष्टनेमि
जन्म कल्याणक	पद्मप्रभु
दीक्षा कल्याणक	पद्मप्रभु
केवलज्ञान कल्याणक	संभव, सुविधि, अर

निर्वाण कल्याणक	महावीर

भागसर

च्यवन कल्याणक	—
जन्म कल्याणक	संभव, सुविधि, अर, मल्लि
दीक्षा कल्याणक	सभव, सुविधि, अर, मल्लि, महावीर
केवलज्ञान कल्याणक	मल्लि, नेमि
निर्वाण कल्याण	पद्मप्रभु, अर

पोष

च्यवन कल्याणक	—
जन्म कल्याणक	चद्रप्रभु, पार्श्व
दीक्षा कल्याणक	चंद्रप्रभु, पार्श्व
केवलज्ञान कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म शांति
निर्वाण कल्याणक	—

महा

च्यवन कल्याणक	पद्मप्रभु
जन्म कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
दीक्षा कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
केवलज्ञान कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
निर्वाण कल्याणक	ऋषभ

फाल्गुन

च्यवन कल्याणक	संभव, सुविधि, अर, मल्लि
जन्म कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
दीक्षा कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य, [illegible]
केवलज्ञान कल्याणक	ऋषभ, सुपार्श्व, [illegible]
निर्वाण कल्याणक	सुपार्श्व, [illegible]

केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	वासुपूज्य, विमल, अरिष्टनेमि
श्रावण	
च्यवन कल्याणक	सुमति, अनंत, कुंथु, मुनिसुव्रत
जन्म कल्याणक	नमि, अरिष्ठ नेमि
दीक्षा कल्याणक	अरिष्टनेमि
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	श्रेयांस, पार्श्व
आभदरवो	
च्यवन कल्याणक	सुपार्श्व, शांति
जन्म कल्याणक	—
दीक्षा कल्याणक	—
केवलज्ञान कल्याणक	—
निर्वाण कल्याणक	चंद्रप्रभु, सुविधि
आसो	
च्यवन कल्याणक	नमि
जन्म कल्याणक	—
दीक्षा कल्याणक	—
केवलज्ञान कल्याणक	अरिष्टनेमि
निर्वाण कल्याणक	—
कारतक	
च्यवन कल्याणक	अरिष्टनेमि
जन्म कल्याणक	पद्मप्रभु
दीक्षा कल्याणक	पद्मप्रभु
केवलज्ञान कल्याणक	संभव, सुविधि, अर

निर्वाण कल्याणक	महावीर

भागसर

च्यवन कल्याणक	—
जन्म कल्याणक	संभव, सुविधि, अर, मल्लि
दीक्षा कल्याणक	संभव, सुविधि, अर, मल्लि, महावीर
केवलज्ञान कल्याणक	मल्लि, नेमि
निर्वाण कल्याण	पद्मप्रभु, अर

पोष

च्यवन कल्याणक	—
जन्म कल्याणक	चंद्रप्रभु, पार्श्व
दीक्षा कल्याणक	चंद्रप्रभु, पार्श्व
केवलज्ञान कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म शांति
निर्वाण कल्याणक	—

महा

च्यवन कल्याणक	पद्मप्रभु
जन्म कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
दीक्षा कल्याणक	अजित, अभिनंदन, शीतल, विमल, धर्म
केवलज्ञान कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
निर्वाण कल्याणक	ऋषभ

फाल्गुन

च्यवन कल्याणक	संभव, सुविधि, अर, मल्लि
जन्म कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य
दीक्षा कल्याणक	श्रेयांस, वासुपूज्य, मुनिसुव्रत
केवलज्ञान कल्याण	ऋषभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभु, मुनिसुव्रत
निर्वाण कल्याणक	सुपार्श्व, मल्लि

परिशिष्ट-६

आगामी चौवीसी के तीर्थंकर - परिचय

तीर्थंकर	कौन बनेंगे	अब कहाॅ है
१. पद्मनाभ	राजा श्रेणिक	प्रथम नरक
२. सूरदेव	श्रावक सुपार्श्व	तीसरा देवलोक
३. सुपार्श्व	कोणिक पुत्र उदाई	तीसरा देवलोक
४. स्वयंप्रभु	श्रावक पोटिल	चौथा देवलोक
५. सर्वानुभूति	श्रावक प्रढायु	दूसरा देवलोक
६. देवश्रुत	शेठ कार्तिक	प्रथम देवलोक
७. उदयप्रभु	श्रावक शंख	बारवां देवलोक
८. पेढाल	मुनि आनंद	प्रथम देवलोक
९. पोट्टिल	सुनंद	पांचवां देवलोक
१०. शतकीर्ति	श्रावक शतक	तीसरा नरक
११. सुव्रत	देवकी	आठवां देवलोक
१२. अमम	वासुदेव श्रीकृष्ण	तीसरा नरक
१३. निष्कषाय	सत्य की महादेव	पांचवां देवलोक
१४. निष्पुलाक	बलभद्र	छठा देवलोक
१५. निर्मम	श्राविका सुलसा	पांचवा देवलोक
१६. चित्रगुप्त	रोहिणी	दूसरा देवलोक
१७. समाधि	श्राविका रेवती	बारहवा देवलोक
१८. संवर	सुनाली	बारहवां देवलोक
१९. यशोधर	ऋषिद्वीपायन	अग्नि कुमार देव
२०. विजय	कर्ण	बारहवां देवलोक
२१. मल्ल	आठवां नारद	पांचवां देवलोक

२२. देवजिन	परिव्राजक अंबड	बारहवां देवलोक
२३. अनंत वीर्य	अमरकुमार	नवा ग्रैवेय
२४. भंद्रकर	स्वाति बुद्ध	सर्वार्थसिद्ध

प्रथम देवलोक के इन्द्र की आयु दो सागरोपम है। उनके बीच अंतर कम है। अतः कार्तिक शेठ की आत्मा प्रथम देवलोक में इन्द्र है, उन्हें नही समझना। यह कार्तिक शेठ दूसरा है। अन्य भी अनेक भावि तीर्थकरो के वर्तमान जन्मकाय व तीर्थकर होने के समय मे अन्तर है।

परिशिष्ट-७

बीस विहरमान तीर्थकर

तीर्थकर	द्वीप	क्षेत्र	विषय	नगरी
१. सीमंधर	जंबू	पर्व महाविदेह	पुष्कलवती	पुंडरीकिणी
२. युगमदीर	जंबू	पश्चिम महाविदेह	वप्रा	विजया
३. बाहु	जंबू	पूर्व महाविदेह	वत्सा-वच्छ	सुसीमा
४. सुबाहु	जंबू	पश्चिम महाविदेह	नलीनावती	वतीशोका
५ सुजात	धातकीखंड	पूर्व महाविदेह	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी
६. स्वयंप्रभु	धातकीखंड	पूर्व महाविदेह	वप्रा	विजया
७. ऋषभानन	धातकीखंड	पूर्व महाविदेह	वत्सा-वच्छ	सुसीमा
८. अनंतवीर्य	धातकीखंड	पूर्व महाविदेह	नलीनावती	वतीशोका
९. सूरप्रभु	धाकतीखंड	पश्चिम महाविदेह	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी
१०. विशालधर	धाकतीखंड	पश्चिम महाविदेह	वप्रा	विजया
११. व्रजधर	धाकतीखड	पश्चिम महाविदेह	वत्सा-वच्छा	सुसीमा
१२. चन्द्रानन	धाकतीखंड	पश्चिम महाविदेह	नलीनावती	वीतशोका
१३. चद्रवाहु	अर्धपुष्कर	पूर्व महाविदेह	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी
१४ ईश्वर	अर्धपुष्कर	पूर्व महाविदेह	वप्रा	विजया

१५. भुजंग	अर्धपुष्कर	पूर्व महाविदेह	वत्सा-वच्छा	सुसीमा
१६. नेमप्रभु	अर्धपुष्कर	पूर्व महाविदेह	नलीनावती	वतीशोका
१७. वीरसेन	अर्धपुष्कर	पश्चिम महाविदेह	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी
१८. महाभद्र	अर्धपुष्कर	पश्चिम महाविदेह	वप्रा	विजया
१९. देवसेन	अर्धपुष्कर	पश्चिम महाविदेह	वत्सा-वच्छा	सुसीमा
२०. अजितवीर्य	अर्धपुष्कर	पश्चिम महाविदेह	नलीनावती	वतीशोका

परिशिष्ट-८

तीर्थकर	चिह्न	पत्नी
१. सीमंधर	वृषभ	रुक्मणि
२. युगमंदिर	हाथी	प्रियमंगला
३. बाहु	हरण	मोहिनी
४. सुबाहु	वानर	किपुरिषा
५. सुजात	सूर्य	जयसेना
६. स्वयप्रभु	चंद्र	प्रियसेना
७. ऋषभानन	सिह	जयावती
८. अनंतवीर्य	हाथी	विजयावती
९. सूरप्रभु	चंद्र	नंदसेना
१०. विशालधर	सूर्य	विमलादेवी
११. वज्रधर	वृषभ	विजयावती
१२. चद्रानन	वृषभ	लीलावती
१३. चंद्रबाहु	पद्मकमल	सुगंधादेवी
१४. ईश्वर	पद्मकमल	गंधसेना
१५. भुजग	चंद्र	भद्रावती

१६. नेमप्रभु	सूर्य	मोहिनी
१७. वीरसेन	वृषभ	राजसेना
१८. महाभद्र	हाथी	सूरिकाता
१९. देवसेन	चंद्र	पद्मावती
२०. अजितवीर्य	स्वस्तिक	रत्नावती

परिशिष्ट-९

सभी विद्यमान बीस तीर्थकरों के एक समान क्रम हैं।

च्यवन कल्याणक	अषाढ वद-५
जन्म कल्याणक	चैत्र वद-१०
दीक्षा कल्याणक	फागण सुद-३
केवलज्ञान कल्याणक	चैत्र सुद-१३
निर्वाण	श्रावण सुद-३
जन्म नक्षत्र	उत्तराषाढा
जन्म राशि	धनु
शरीर नी ऊंचाई	५०० धनुष्य
वर्ण	कंचन (स्वर्ण)
दीक्षा वृक्ष	अशोक
गणधर	८४
गृहवास	८३ लाख पूर्व
छद्मस्थ पर्याय	१००० वर्ष
चारित्र पर्याय	१ लाख पूर्व
सर्वायु	८४ लाख पूर्व

तीर्थकर	कौन बनेगा	अभी कहाँ है ?
१.	राजा श्रेणिक	पहली नरक
२. सूरदेव	श्रावक सुपार्श्व	तीसरा देवलोक
३. सुपार्श्व	कोणिक पुत्र उदाइ	तीसरा देवलोक
४. स्वयंप्रभ	श्रावक पोटिल	चौथा देवलोक
५. सर्वानुभूति	श्रावक द्रढापु	दूसरा देवलोक
६. देवश्रुत	शेठ कार्तिक	पहला देवलोक
७. उदयप्रभ	श्रावकशंख	बारहा देवलोक
८. पेढाल	मुनि आनंद	पहला देवलोक
९. पोट्टिल	सुनंद	पॉचवा देवलोक
१०. शतकिर्ती	श्रावक शतक	तीसरी नरक
११. सुव्रत	देवकी	आठवा देवलोक
१२. अमम	वासुदेव श्री कृष्ण	तीसरी नरक
१३. निष्कषाय	सत्यकी महादेव	पॉचवा देवलोक
१४. निष्पुलाक	बलथद्र	छठा देवलोक
१५. निर्मम	श्रविका सुलसा	पॉचवा देवलोक
१६. चित्रगुप्त	रोहिणी	दूसरा देवलोक
१७. समाधि	श्राविका रेवती	बारह देवलोक
१८. सवर	सुताली	बारह देवलोक
१९. यशोधर	क्रृषि द्वीपापन	अग्निकुमार देव
२०. विजय	कर्ण	बारह देवलोक
२१. मल्ल	आठमा नारद	पॉचवा देवलोक
२२. देवजिन	परिव्राजकअंबड	बारह देवलोक
२३. अनंतवीर्य	अमरकुमार	नवमो ग्रैवेयक
२४. भद्रंकर	स्वातिबुद्ध	सर्वार्थसिद्ध

श्री हस्तिनापुर तीर्थ के गुण गर्भित २१ खमासमन

हस्तिनापुर समरो सदा,
श्वासमाहे सो बार ।
आदि शांति कुंथु अर,
वन्दन बार हजार ।

यह प्रथम दोहा हर खमासमन मे बोलने का है ।

आदि राजा आदि जिन
आदि धर्म अवतार
इक्षु वंश कुल दीपक
आदि तीर्थ कर्ता ॥हस्तिनापुर-१

हस्तिनापुर तीर्थ मे,
प्रथम जिन आदिनाथ
वर्षी तप पारना किया,
श्रेयांस कुमार के हाथ ॥

धन्य हुई यह भूमि,
धन्य श्रेयांस कुमार,
सर्वोत्तम सुदान से,
संसार किया पार ॥हस्तिनापुर-२ ॥

शांति कुंथु अर प्रभु,
जन्म हस्तिनापुर होय ।
मन वच काय वंदिए,
आत्म निर्मल होय ॥हस्तिनापुर-३ ॥

तिन तीर्थकर जिनके,
हुए कल्याणक चार,
च्यवन जन्म दीक्षा लीनी,
और केवल ज्ञान धार ॥हस्तिनापुर-४ ॥

गजपुर प्राचीन नाम है,
कण कण जस पावन ।

तीर्थंकर मुनि चरण से,
धरती महिमा वन ॥हस्तिनापुर-५ ॥

हस्तिनापुर तीर्थ में,
सोहे शांतिनाथ ।
वांछित पुरे दुःख हरे
प्रभु दीनो के नाथ, ॥

शांतिनाथ शांति दाता,
देखो जन्म प्रभाव ।
महामारी दूर हुई
दुःख का पूर्ण अभाव ॥हस्तिनापुर-६ ॥

विश्वसेन के रत्न हो
अचिरा देवी के नन्द
विनती है चरणों में
काटो चोरासी फंद ॥हस्तिनापुर-७ ॥

मल्लि मुनिसुव्रत प्रभु,
पारस वीर यह चार ।
आवागमन इस तीर्थ में,
मल्लि की पर्षदा बार ॥हस्तिनापुर-८ ॥

शांति कुंथु अर जिन,
पद महान दो पाय ।
सनत कुमार महापदम,
सुभूम चक्री छः थाय ॥हस्तिनापुर-९ ॥

चक्रवर्ती पांचों सभी,
सुभूम बिना मुक्ति पाय ।
महिमा यह महाभूमि की,
हजारों शास्त्रों बताय ॥हस्तिनापुर-१० ॥

तीसरे भव नेमि प्रभु,
शंख राजा यहां थाय ।
वीश स्थानक पद ध्यान से,
तीर्थकर पद पाय ॥हस्तिनापुर-११ ॥

चक्रवर्ती सनत कुमार,
पाया छः खण्ड राज ।
राजपाट सब त्याग के,
लीना मुक्ति राज ॥हस्तिनापुर-१२ ॥

धीर वीरा पांडव पांचों,
पंच क्रोड़ परिवार,
सिद्ध हुए सिद्धा चले ।
जन्म हस्तिनापुर धार ॥हस्तिनापुर-१३ ॥

राजर्षि दमदत्त मुनि,
महिमा जास अपार ।
कौरवो ने दुःख दीना,
मन मे समता धार ॥
दमदत्त काउसग्ग ध्यान मे,
पांडव उपसर्ग निवार ।
केवलज्ञान ध्यान मे पाया,
हस्तिनापुर मोझार ॥हस्तिनापुर-१४ ॥

महापदम भी महाबली,
चक्रवर्ती पद पाय ।
सब कुछ त्यागा अन्त मे,
चारित्र से मुक्ति जाय ॥हस्तिनापुर-१५ ॥

श्रावक श्रेष्ठि कार्तिक,
धर्म श्रद्धालु अपार ।
एक हजार ने आठ सह,
दीक्षा ली परिवार ॥हस्तिनापुर-१६ ॥

सात क्रोड़ स्वर्ण महोरों के
गंगदत्त लक्ष्मीवान ।
बीसवें प्रभु के पास में,
हुआ चारित्रवान ॥हस्तिनापुर-१७ ॥

हस्तिनापुर तीर्थ की,
महिमा कहि न जाय ।
दर्शन स्पर्शन मात्र से,
भवोभव पाप खपाय ॥हस्तिनापुर-१८ ॥

चालीस हजार कोस है,
प्राचीन नगर विस्तार ।
अनेक शास्त्रे गुण गाया,
कहता न आवे पार ॥हस्तिनापुर-१९ ॥

तीर्थ यात्रा नवाणुं से
आतम पावन थाय ।
तीर्थ आराधना कीजिए,
पाप कर्म मिट जाय ॥हस्तिनापुर-२० ॥

दो हजार चौवालीसे,
हस्तनापुर चौमास ।
जगच्चन्द्र भी साथ है,
सुमति निर्मल उल्लास ॥
तपगच्छे विजयानन्द सुरि,
पट्टे वल्लभ सूरि राय ।
तस पट्टे समुद्र सूरि,
गुरु इन्द्रदिन्न सूरिपसाय ॥
महिमा हस्तिनापुर कह्यो,
नामी तीर्थ विख्यात ।
गणि वीरेन्द्र विजय कहे,
नमो मंगल प्रभात ॥हस्तिनापुर-२१ ॥